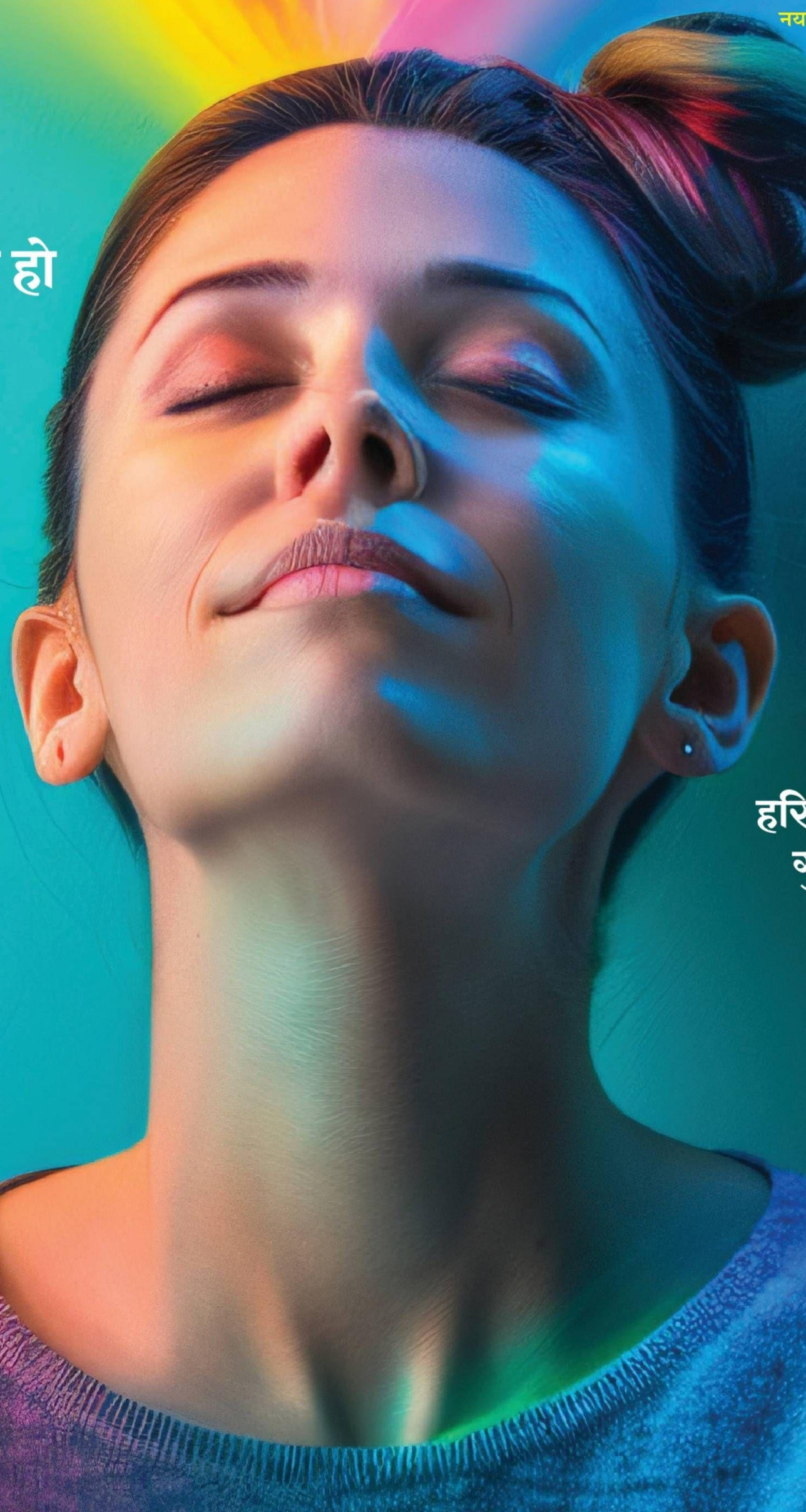
दैनिक भास्कर समूह की प्रस्तुति

अहा! ज़िंदगी

जुलाई 2024 • मूल्य ₹ 50

नया युग • नया विश्वास • नई ज़िंदगी



अहा! अतिथि
समीर अनजान
नाम कमाकर हो गए अनजान

जंगल कथा
जंगल में वर्षा मंगल

अहा! विशेष
दिमाग़ वाली बात
बुद्धिमत्ता का इंद्रधनुष

हास्यम्
मज़ाक़ नहीं हैं चुटकुले

ज़िंदगी की किताब
ज़ौहरा सहगल
ज़िंदादिल ज़ोहरा

शब्दहार
वृक्ष बिना नर न्यून

पर्व प्रसंग
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर

ताना-बाना
बीमारी से बड़ा उसका 'बी'

DB Corp Ltd
Magazine Division

Aha! Zindagi
The Only New Age Positive Life Monthly
RNI No. RAJHIN/2004/13288

सम्पादक
रचना समंदर

सहायक सम्पादक
विवेक गुप्ता

उप संपादक
दीक्षिता मेहता

चित्रांकन
गौतम चक्रबर्ती

कला निर्देशन
मनीष समंदर

अहा! ज़िंदगी

अहा! ज़िंदगी
सकारात्मक जीवन की सर्वप्रिय पत्रिका

अहा! ज़िंदगी अनिमंत्रित सामग्री को लौटाने के लिए जिम्मेदार नहीं है।
© सर्वाधिकार सुरक्षित।
e-mail : ahazindagi@dbcorp.in

रचनाएं आमंत्रित...

अहा ज़िंदगी के नियमित स्तंभों और अन्य पृष्ठों के लिए पाठकों और लेखकों से रचनाएं आमंत्रित हैं। रचनाओं का मूल स्वर सकारात्मक हो। जिसे पढ़कर अच्छा लगे, आशा जगे, प्रेरणा मिले और ज्ञानवर्धन हो।

कहानियां 2000 शब्दों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विभिन्न विषयों पर लेखों की शब्द सीमा भी 2000 शब्द है। कला-संस्कृति से संबंधित लेख के साथ तस्वीरें भी भेज सकें तो उत्तम। लघुकथाएं, संस्मरण, यात्रावृत्तांत, प्रबंधन और सेल्फ़ हेल्प संबंधी लेख भी भेजे जा सकते हैं।

हमारा पता है –
अहा! ज़िंदगी,
दैनिक भास्कर, द्वारका सदन,
6-प्रेस कॉम्प्लेक्स, एम.पी. नगर,
भोपाल- 462011, मध्यप्रदेश
या मेल करें –
ahazindagi@dbcorp.in



हर छोटा बच्चा आज़ाद है, क्योंकि वह जो चाहे कर सकता है। वह पूरी तरह से अपने आपमें सहज होता है। जब भी हम किसी दो साल के बच्चे को देखते हैं तब उसके चेहरे पर हमेशा एक खिली हुई मुस्कान पाते हैं। वह हर क्षण का आनंद लेते हुए और मौज-मस्ती करके जीवन जी रहा होता है। बच्चा हर दिन नित-नए प्रयोग करते रहता है। डर क्या होता है, उसे यह पता ही नहीं होता। जब बच्चे को भूख लगती है, खेलते समय चोट लगती है या फिर उसे कुछ चाहिए होता है तभी वह रोकर अपनी भावना ज़ाहिर करता है।

लेकिन खाना खाने के बाद या फिर मनचाही वस्तु मिलने के बाद वह तुरंत ख़ुश भी हो जाता है। बच्चे कभी भी अतीत की बातों का दुःख नहीं मनाते और न ही भविष्य की चिंता करने में समय गंवाते हैं। वे संपूर्ण रूप से वर्तमान में ही जीवन जीते हैं।

छोटे बच्चे अक्सर अपने मन की बात कहने से नहीं झिझकते। वे इतने प्यारे होते हैं कि प्यार पाते ही मोम की तरह पिघल जाते हैं। उन्हें प्रेम से भय नहीं होता। वे हमेशा अपना प्रेम ज़ाहिर करते हैं और दूसरों को प्रेम देते भी हैं। लेकिन जब हम एक परिपक्व इंसान बनते हैं तब हमें ऐसा क्या हो जाता है, हम इतना अलग क्यों आचरण करते हैं? हम बिना किसी डर के जीवन क्यों नहीं जी पाते? हम स्वतंत्र नहीं हैं क्योंकि हमारी धारणाएं, भीतर का जज और दोष देने की आदत हमें अपने वास्तविक रूप में जीवन जीने नहीं देतीं।

अपने भीतर के इन तीन बंधनों पर विचार कीजिए और इनसे मुक्त होइए।

-डॉन मिग्युअल रूइज़, 'द फोर एग्रीमेंट, आज़ादी पाने के चार समझौते' में

अहा! ज़िंदगी
वर्ष : 20 • अंक : 5 • जुलाई 2024

•अहा! रचनाएं

18 **जलप्रपात जहां हीरे मिलते हैं**
यायावरी : मुकेश पांडेय 'चंदन'

22 **नवकी बहुरिया का सिनेमा**
यादगली : अतुल कुमार राय

24 **हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे...**
पर्व प्रसंग : डॉ. विवेक चौरसिया

26 **वृक्ष बिना नर न्यून**
शब्दहार : पद्मनाभ

28 **जंगल में वर्षा मंगल**
जंगल कथा : डॉ. सुरेश वाघमारे

30 **जीवनपथ**
शब्दराग : संकलित

32 **देना-पावना के बीच जीना**
प्रेरणा : सीताराम गुप्ता

36 **मज़ाक़ नहीं हैं चुटकुले**
हास्यम् : लोकेंद्रसिंह कोट

37 **जब निर्माता से लड़ गया लेखक**
अनकहा क़िस्सा : अजय कुमार शर्मा

38 **उसी से ठंडा, उसी से गर्म**
आगामी अतीत : या. ई. पेरेलमान

40 **बीमारी से बड़ा उसका 'बी'**
ताना-बाना : डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

42 **डाकघर में डालिए पैसा**
गुल्लक : कौशल वर्मा

44 **बिछ गई है बिसात**
क्रीड़ांगन : ज्योत्स्ना पंत श्रीवास्तव

46 **लेखाकार का लेखा-जोखा**
युवमन : मुकेश राजपूत

48 **जीवन-दृष्टि है विवेक**
बोधरस : सत्यम सम्राट आचार्य

54 **हर एक की रज़ा में राज़ी होना...**
जीवन सूत्र : सोरिना लालुका बबाऊ

55 **हम ब्रह्मांडीय खेल के साक्षी मात्र हैं**
ज्ञानकोश

56 **शिखर है सीकर**
शहरनामा : नीलू शेखावत

••अहा! विशेष...

दिमाग़ वाली बात

10. दिमाग़ी दायरा : डॉ. विनय कुमार
बुद्धिमत्ता का इंद्रधनुष

12. अक़्लमंदी : डॉ. चीनू अग्रवाल
मंद नहीं होगी अक़्ल

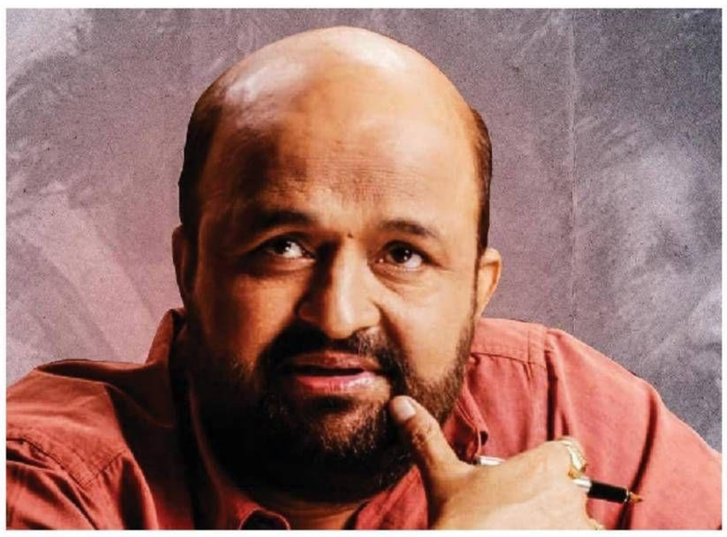
14. बुद्धि-भोग : डॉ. अमिता सिंह
दिमाग़ की खुराक

15. बुद्धि-योग : आचार्य रजनीकांत शास्त्री
योग युति से प्रबल बुद्धि



06 अहा! अतिथि
समीर अनजान

50 ज़िंदगी की किताब
ज़ोहरा सहगल



नाम कमाकर हो गए...

– सुधा उपाध्याय



ज़िंदादिल ज़ोहरा

– अजय कुमार शर्मा

•••अहा! स्तम्भ

04 । **नमस्कार** – रचना समंदर
05 । **आशाजनक** – सोम बाठला
16 । **लघुकथाएं**
17 । **अंतस आनंद** – अमृत साधना
20 । **कहानी** – संगीता माथुर
34 । **कथा विरासत** – सुदर्शन



58 । **आखर अनंत**
60 । **खेतों के वैज्ञानिक**
61 । **चित्र पहेली 185 : परिणाम 184**
62 । **आनंदम्** – संकलित
63 । **अहा! विरासत**
64 । **विचारमणि** – गुरुदयाल मलिक

नमस्कार...



रचना समंदर

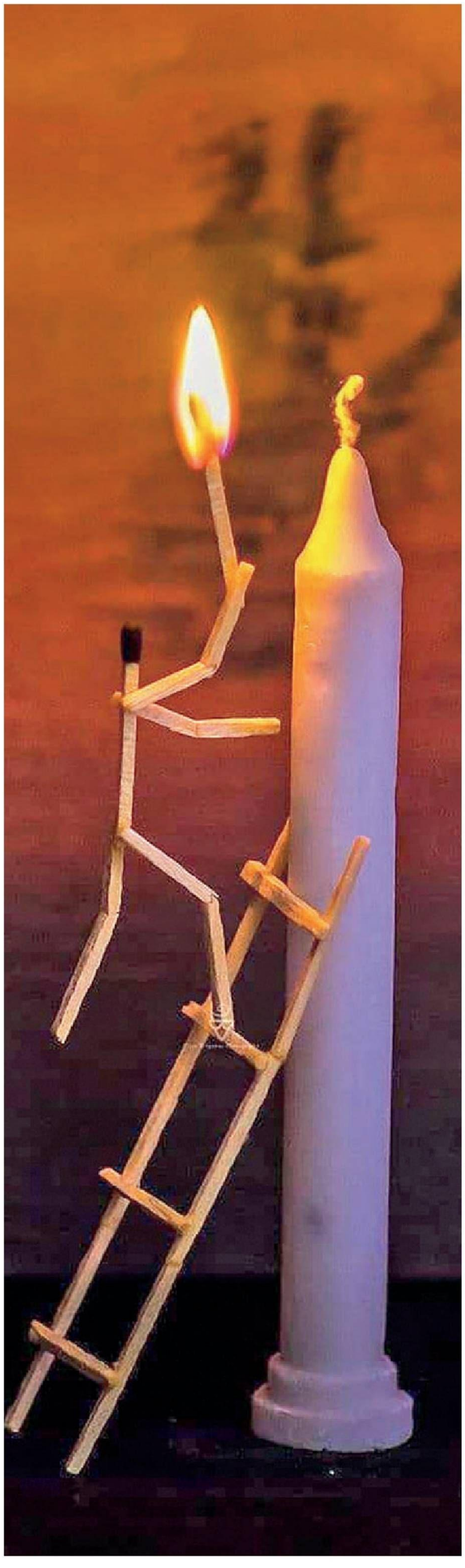
स्व-परिचय चौंकाने वाला हो सकता है।
अपने होने का कारण जानना उलझाऊ लग सकता है, लेकिन अपने आपको समझना ख़ुद के ही नहीं, दूसरों के जीवनपथ को भी निष्कंटक कर सकता है।

यह यात्रा सदियों पुरानी है, आप चलती है, अपने आप तक...



ख़ुद चलकर आएं ख़ुद तक





ख़ुद की मदद करने में मदद करने वाली यानी सेल्फ़ हेल्प की किताबों का बाज़ार सबसे बड़ा बनता जा रहा है। हज़ारों-हज़ार किताबें रोज़ छपकर हम इंसानों को सिखाने आती हैं कि कैसे हम ख़ुद को जानकर, अपनी मदद ख़ुद ही कर सकते हैं।

सवाल है...

मदद क्यों और किस मामले में चाहिए?

हम उलझे हुए हैं। हमारे रिश्ते, हमारा जीवन, सबकुछ परेशानियों से घिरा है। क्योंकि हम अपने ही तौर-तरीक़ों, जीने के ढंग और सोच के चलते उलझनों को न्योता देते हैं। इसकी ज़द में आ जाते हैं हम ख़ुद और फिर हमारे रिश्ते, फलस्वरूप सारा जीवन नियंत्रण से बाहर चला जाता है।

इसी उलझन या इन्हीं परेशानियों के सिरे ढूंढने में मददगार होती हैं ये सेल्फ़ हेल्प की किताबें। जिसे जिस किताब में अपनी उलझन का सिरा मिल जाता है, वो उसी को थामकर राहत की तलाश में पन्ने पलटने लगता है।

ये उलझनें हमारी अपनी बुलाई हुई हैं। लेकिन सब परिस्थितियों, देश-समाज के चलन, यहां तक कि समय की चाल, ग्रह-नक्षत्र, वास्तु विज्ञान, दूसरों के आचार-व्यवहार, नैतिक आचरण के दोष गिना देते हैं और ख़ुद को साफ़ बचा ले जाते हैं।

जिन विद्याओं के सिर हम इन मुश्किलों का दोष मढ़ रहे हैं, उनके ज्ञाता ही नहीं, निर्माता भी हम ही हैं। इनकी खोज हमने की, व्याख्या, परिभाषा, विस्तार और शोध सब हमारा है। यूं भी लगता है कि इनके सिरजन में अपने लिए बचाव का रास्ता खोजने की मंशा ही अधिक रही है।

वेद, उपनिषद्, हमारे पुराण, ज्ञान के अन्य स्रोत तो बड़ी सादी-सी राह बताते हैं- ख़ुद को जान लो, ख़ुद में उस ब्रह्म के वास को समझ लो। यही सबमें मौजूद है। यानी आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है। यह उपदेश नहीं, सामान्य समझ है। मन कांच-सा है। जब बाहर बहुत कुछ देखता है, तो ख़ुद को खो देता है। जैसे ही भीतर प्रकाश होता है, केवल अपना आप दिखाई देता है, अपनी तमाम ख़ूबियों और कमियों के साथ। रेल के शीशे वाले यात्री डिब्बे में रात्रि के समय बाहर कुछ नहीं दिख सकता। जब कोशिश करें, ख़ुद की छवि दिखती है। बाहर देखने की कोशिश में भीतर अंधेरा करना होगा।

ख़ुद को जान लेने और अपनी कमियों से परिचित हो जाने के बाद, दूसरों के व्यवहार, आचरण या किसी समय-काल को दोष देने की प्रवृत्ति बाक़ी नहीं रहती। हज़ारों सालों से मौजूद ज्ञान बताता रहा है कि हम मानव रूप में जन्मे हैं, तो अन्य प्राणियों से इतर जीवन जीने के लिए। जैसे-तैसे भोजन खोजकर, अपने प्राणों की रक्षा कर, जीवन तो असंख्य प्राणी जी लेते हैं। हमारे बीच अंतर क्या है?

हमारे पास निखार का गुण है। ज्ञानपिपासा है। जीव-निर्जीव सब सृजित कर सकते हैं। असंख्य शिलालेखों, पत्रकों, पुस्तकों में समाए ज्ञान और सुंदर शाब्दिक वर्णनों का सुख हमने ही तो उनमें भरा है। क्या, क्यों, कब आया - हमने जाना है।

फिर अपने अस्तित्व का मोल क्यों नहीं जाना?

हिसाब सीखा, संतुलन क्यों नहीं समझा?

अणु की शक्ति तक को पहचान लिया, फिर अपने मन की शक्ति का भान क्यों नहीं होता। ख़ुद को जान लें, तो दूसरे को भी बूझ लेंगे। इस धरा पर हम मानव, इस अद्वितीय संसार के निर्माता के मंतव्य को जानने आए हैं।

वह सबकुछ जो उसने रचा है, उसके मंतव्य का हिस्सा है।

हमें क्यों रचा?

हमारी उपस्थिति के मायने उतने ही शांत और सरल होंगे जितने कि उसके अन्य सृजन। हज़ारों अंतर्वेषी लिख रहे हैं, खोज रहे हैं, बता रहे हैं, समझा रहे हैं।

ख़ुद की तलाश की यह अनोखी यात्रा है।

rachana@dbcorp.in

ठोकर की प्रतीक्षा मत कीजिए

ज़िंदगी जब कोई झटका देती है तब हम ठहरकर अपनी राह के बारे में विचार करते हैं कि उसे बदलने की ज़रूरत तो नहीं है! क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस बारे में नियमित रूप से ज़रा थमकर विचार किया जाए?

सोम बाठला



मान लीजिए, आप एक सड़क पर यात्रा कर रहे हैं। क्या आप रुकने और अपने कार्यकलाप को बदलने के बारे में सोचेंगे, जब तक कि आपको किसी प्रकार का अनुमान नहीं हो जाए कि आपने अनजाने में ग़लत रास्ता अपना लिया है? क्या आप तब तक एक और नक़्शा देखने की जहमत उठाएंगे, जब तक आप यह न जान लें कि आप ग़लत जा रहे हैं या आप एक छोटा या बेहतर रास्ता खोजने के इच्छुक हैं?

नहीं, आप ऐसा नहीं करेंगे, क्योंकि यदि आप अपने गंतव्य के लिए सर्वश्रेष्ठ रोडमैप के बारे में आश्वस्त हैं तो आप कभी भी जीपीएस को देखने की परेशानी नहीं उठाएंगे, बल्कि आप बस, कार चलाते रहेंगे।

यही सिद्धांत जीवन पर भी लागू होता है।

आप तब तक रुककर अपने जीवन की दिशा को जांचना नहीं चाहते हैं, जब तक कि आपको कोई आंतरिक टहोका (हल्का धक्का) या आपके दृष्टिकोण के बारे में कुछ ग़लत होने का अनुमान नहीं होता है। कोई भी परिवर्तन लाने के लिए पहला क़दम उस चीज़ के बारे में जागरूक होना है, जिसे परिवर्तन की आवश्यकता है।

हर विचार पर न करें विश्वास

आपने बुद्धिपूर्ण तरीक़े से बेहतर सोचने के बारे में एक पुस्तक पढ़ने का चुनाव किया। क्या इसका मतलब यह है कि आप अब तक समझदारी से नहीं सोच रहे थे? कृपया नाराज़ न हों। चूंकि मैं आपको व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता, इसलिए मैं पुस्तक को लेने के आपके उद्देश्य के बारे में कोई धारणा नहीं बना सकता। हो सकता है कि आप सिर्फ़ अवधारणाओं के अपने ज्ञान का परीक्षण करना चाहते हैं, ताकि आप समझ सकें कि आप पहले से ही बुद्धिमान हैं या आपको अभी भी अपनी तीक्ष्णता में सुधार करने की आवश्यकता हो सकती है, या शायद आप ख़ुद को एक जीनियस समझते हैं और आपने उत्सुकतावश पुस्तक ले ली, यह पता करने के लिए कि क्या इसमें आपके ज्ञान से परे कोई ऐसी चीज़ है जो यह पेश कर सकती है?

आप चाहे जीवन के किसी भी पड़ाव पर हों, जो बात मैं आपको समझाने की कोशिश कर रहा हूं, वह यह है कि आप केवल तभी बदल सकते हैं, जब आपको यह विश्वास हो जाए कि आपके वर्तमान दृष्टिकोण में कुछ गड़बड़ है या आपको लगता है कि कोई बेहतर तरीक़ा होना चाहिए।

जब तक आप यह नहीं समझ लेते कि आपके सोचने के तरीक़े में ख़ामियां हैं, क्या आप बदलना चाहेंगे? नहीं, आप नहीं चाहेंगे। आपके लिए विश्वास करना मुश्किल हो सकता है, लेकिन आप अपने विचारों से इतने क़रीब से जुड़े होते हैं कि आप हमेशा उन्हें सही मानते हैं और इसलिए उनका बचाव करते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि आप अभी तक दूसरे तरीक़े को नहीं समझते हैं, यानी सोचने के बेहतर तरीक़े को।

सीमित दृष्टिकोण को पहचानें

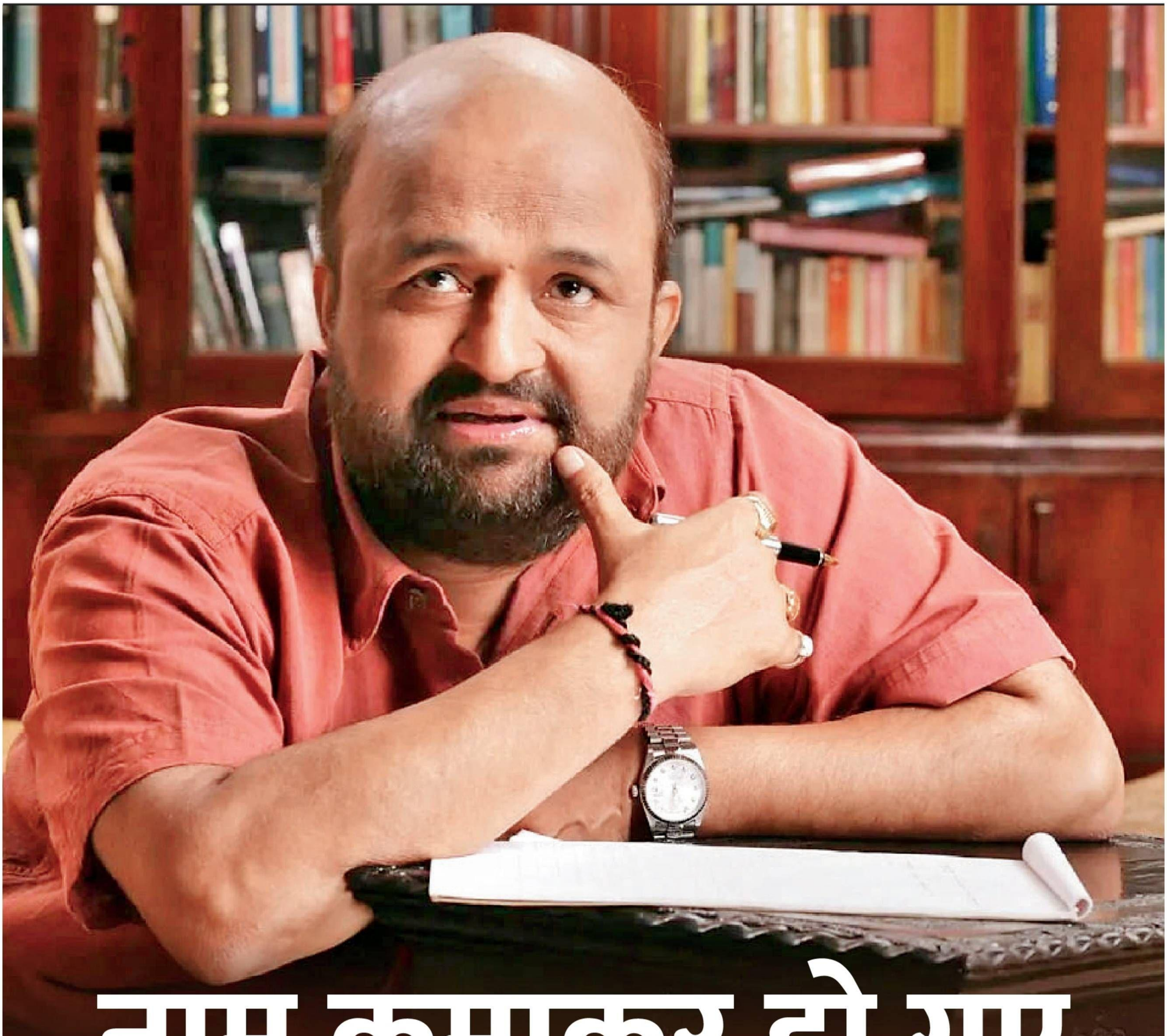
जब तक 16वीं शताब्दी के गणितज्ञ और खगोलविज्ञानी कॉपरनिकस ने यह सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किया कि सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र है और उसके चारों ओर ग्रह घूमते हैं, व्यापक रूप से यह माना जाता था कि पृथ्वी समतल है और सूर्य, चंद्रमा आदि इसके चारों ओर घूमते हैं। क्या आप उस दृष्टिकोण का सबसे बड़ा नुक़सान जानते हैं? कोई भी अन्य देशों की खोज करने की हिम्मत नहीं करता था, क्योंकि उनका मानना था कि पृथ्वी सपाट है और उन्हें लगता था कि यदि वे अन्य द्वीपों की तलाश में जहाज़ या नाव द्वारा समुद्र में बहुत दूर चले गए तो वे गिर सकते हैं। आज यह सोच इतनी हास्यास्पद लगती है, है न? लेकिन जब 16वीं शताब्दी के लोगों ने अपने विचार को सही किया कि पृथ्वी सपाट नहीं गोल है तो नए देशों की खोज होने लगी।

इसी तरह, जर्म थ्योरी की एक अवधारणा थी, जिसे 1860 और 1870 के दशकों में एक फ्रांसीसी सूक्ष्म जीवविज्ञानी लुई पाश्चर द्वारा प्रस्तावित किया गया था। जर्म थ्योरी की खोज और प्रकाशन से पहले इलाज कर रहे चिकित्सकों के कारण बड़ी संख्या में माताएं और नवजात शिशु प्रसव के दौरान जीवित नहीं बचते थे।

डॉक्टर मानते थे कि रक्त की गंध और अन्य कारक इस स्थिति का कारण बनते थे, इसलिए वे अपने सभी प्रयास गुलाब या अन्य ख़ुशबुएं लगाकर प्रसव के कमरे को बेहतर बनाने में लगाते थे। लेकिन सबकुछ बदल गया, जब पाश्चर ने उपस्थित चिकित्सकों में स्वच्छता की कमी और बिना रोगाणुमुक्त किए हुए उपकरणों के उपयोग पर, जो सूक्ष्मजीवों या कीटाणुओं के कारण संक्रमण फैलाते थे और बड़ी संख्या में मौतों के लिए जिम्मेदार होते थे, अपने विचार प्रस्तुत किए। इसलिए सामूहिक मृत्यु के लिए सोच का एक ग़लत तरीक़ा मुख्य रूप से ज़िम्मेदार था। लेकिन जैसे ही रोगाणुओं की उपस्थिति को समझा गया और डॉक्टरों ने रोगाणुओं के प्रसार को रोकने के लिए सावधानी बरतनी शुरू कर दी, समस्या को लेकर कार्रवाई की गई और इस प्रकार क़ीमती जीवनों का और नुक़सान रोक दिया गया।

हमारे दोनों उदाहरणों में सामान्य तथ्य यह है कि जब तक प्रचलित सोच को अस्वीकार नहीं किया गया था, तब तक लोग मानते थे कि जो कुछ भी वे परंपरागत रूप से सोचते हैं, वह सही है और इसलिए वे वांछित परिणाम प्राप्त नहीं करते थे। लेकिन जैसे ही उन्हें अपने सीमित दृष्टिकोण के बारे में पता चला, यह कुछ ऐसा था, जैसे उच्च बीम प्रकाश की एक लेज़र ने तुरंत उनकी सोच को स्पष्ट कर दिया और उन्हें खोजों के मामले में बड़ी उपलब्धियां मिलीं, चाहे वह नए देश ढूंढना हो या क़ीमती जीवन बचाना।

(लेखक की पुस्तक पावर ऑफ़ इंटेलीजेंट थिंकिंग से साभार। प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन)



नाम कमाकर हो गए अनजान

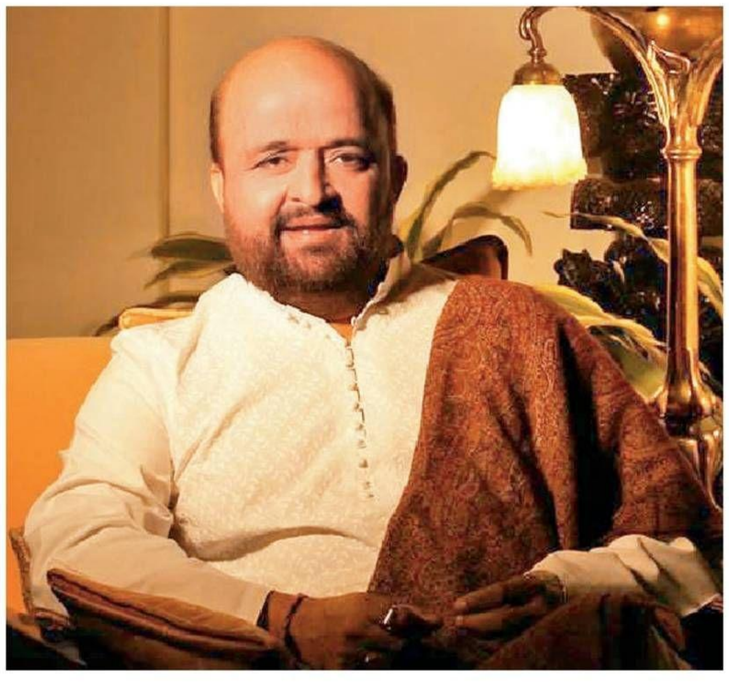
- सुधा उपाध्याय

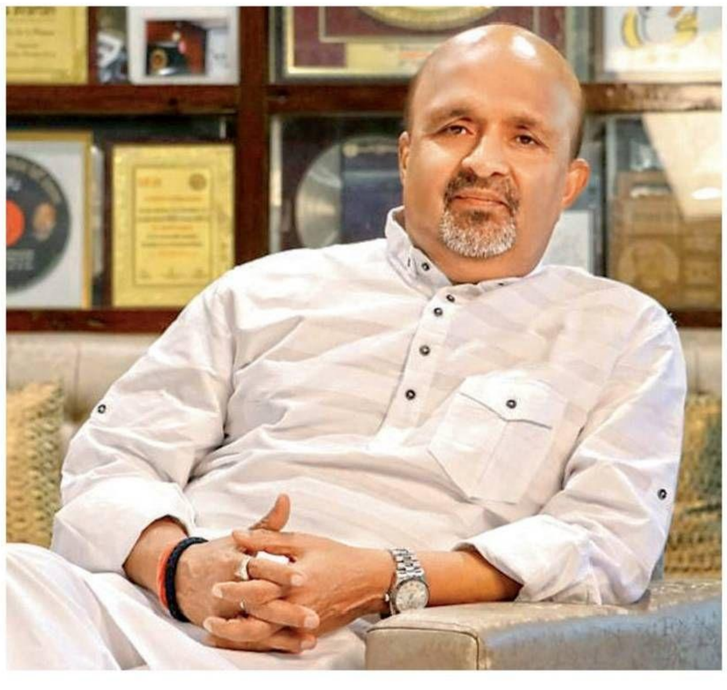
एक पिता ने संघर्ष किया, दुश्वारियां झेलीं। स्वाभाविक ही उनकी चाह थी कि पुत्र ढुलमुल राह पर न चले, ज़िंदगी में नौकरी की ठोस ज़मीन पर खड़ा हो। बावजूद इसके बेटे ने पिता का मार्ग ही चुना, लेकिन उन्हें भनक तक न लगने दी। अंतत: पिता ने परीक्षा लेने के बाद उसे अपना शागिर्द बनाया। और फिर हिंदी फिल्म उद्योग को मिली कर्णप्रिय गीतों की एक लंबी क़तार!

मशहूर गीतकार अनजान का पुत्र होने, नाम कमाने और फिर ख़ुद अनजान बन जाने की गीतकार समीर की यह कहानी सतत संघर्ष और स्वर्णिम सफलता, दोनों ही लिहाज़ से फिल्मी कथा की तरह नाटकीय है। सुना रहे हैं बतौर अहा! अतिथि स्वयं समीर अनजान...

बनारसी बाबू का बंबई कूच

बनारस के पास के गांव से निकलकर बंबई जाने का निर्णय ज़्यादा मुश्किल इसलिए था कि पिता इसके ख़िलाफ़ थे।







बनारस से 10 किलोमीटर दूर, ओदार गांव के एक मध्यमवर्गीय परिवार में मेरा जन्म हुआ। हमारा छोटा-सा कच्चा मकान था। बचपन खेत, खलिहान, पोखरा, तालाब, नदी, नहर, कुएं के इर्द-गिर्द गुज़रा। यह आज से 50-55 साल पहले की बात है। मैंने गांव में ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। फिर दादाजी शिवनाथ पांडे ने अपने पास बनारस स्थित चौक बुला लिया जहां वे सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया में काम करते थे। मेरी परास्नातक तक पढ़ाई बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी से हुई। यहां गांव और शहर के बीच का फ़र्क़ बड़े क़रीब से देखा।

अब तक पिता लालजी पांडे 'अनजान' मुंबई में संघर्षरत थे। उनके साथ किसी का रहना मुमकिन नहीं था, क्योंकि ख़ुद उनके रहने का ठिकाना नहीं था। भाड़े के कमरे में कभी यहां तो कभी वहां रहते थे। उन्होंने लिफ्ट के पास की जगह पर भी कई रातें गुज़ारीं। पिताजी बीच-बीच में बनारस आते थे। मेरा बचपन से लेकर जवानी तक का अधिकांश जीवन दादा-दादी के साथ गुज़रा। मां से ज़्यादा मैं दादी के क़रीब रहा हूं। दादाजी को ही पिताजी बोलता था।

पिता बिलकुल नहीं चाहते थे...

एक बार पिता मुंबई से गांव आए थे, तब उन्होंने बड़े साफ़ शब्दों में मुझसे कह दिया कि तुम्हें जीवन में जो करना है करो, मगर गीतकार बनने की कोशिश कभी मत करना। वे नहीं चाहते थे कि 17 साल के संघर्ष की जिस आग में वे जले, उसी में उनका बेटा भी जले। बॉलीवुड में गीतकार बनकर जी पाना और अपने को स्थापित कर लेना एक तरह से शीशे से पत्थर तोड़ने जैसा है। पिछले 100 साल का इतिहास देख लीजिए, मुश्किल से 30-40 गीतकार होंगे, जिन्होंने कुछ नाम और पैसा कमाया, जो अपनी ज़िंदगी ठीक से जी पाए। ज़्यादातर तो संघर्ष करते-करते ही चले गए। पिताजी की मंशा यही थी कि बेटा पढ़ने में अच्छा है, सो बेहतर है कि कहीं नौकरी करते हुए ज़िंदगी में जम जाए।

उनके कहे पर चलता रहा। बी.कॉम., एम.कॉम की डिग्री लेने के बाद सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया में नौकरी के लिए आवेदन कर दिया। सौभाग्य से मेरी नौकरी लग गई। पढ़ाई के दौरान कुछ और चीज़ें भी चल रही थीं। दिमाग़ में कहीं से कोई पंक्ति आ जाती थी तो उसे लिख लेता था। धीरे-धीरे अख़बारों में भेजने लगा। यह सब यूं ही चल रहा था, गीतकार या शायर बनने का तब तक कोई इरादा नहीं था। हां, लिखना अच्छा लगता था। मैंने इस शौक़ को जारी रखा। कुछ दोस्त हमख़याल मिल गए, उनके साथ कवि गोष्ठियां शुरू हो गईं। फिर कवि सम्मेलन और मुशायरे में जाने लगा, रेडियो तक गया। ये सारी चीज़ें साइड में ही चल रही थीं। मगर फिर अंदर से बार-बार आवाज़ आने लगी कि समीर! नौकरी तुम्हारा रास्ता नहीं है। मैंने हमेशा अपने दिल की बात सुनी। बहरहाल, सेंट्रल बैंक में मैंने केवल दो दिन नौकरी की। तीसरे दिन इस्तीफ़ा दे दिया, क्योंकि मेरा अंतर्मन नहीं मान रहा था।

...पर गीत तो ख़ून में घुले थे

मैं मां से 500 रुपये लेकर 5 अप्रैल, 1980 को काशी एक्सप्रेस से निकला और 6 अप्रैल को मुंबई पहुंच गया। चूंकि पिताजी गीतकार बनने के ख़िलाफ़ थे, इसलिए इसके बारे में उन्हें कोई सूचना ही नहीं दी। फूफा सकल नारायण दुबे जी के पास ठहरा। वे मालाड स्थित मालवणी की चाल में रहते थे। बुआजी-फूफाजी मुझे बहुत मानते थे।

एक दिन ख़याल आया कि रिश्तेदार के यहां रह तो रहा हूं, मगर आगे का क्या! खाने-पीने, ठहरने का काम कैसे होगा। फिर मैंने अपनी यात्रा शुरू की। बनारस में स्थानीय अख़बारों के लिए थोड़ी-बहुत पत्रकारिता की थी। लेख लिखता था या वहां आने वाली हस्तियों के इंटरव्यू लेता था। यह 1978-1979 की बात है। मुंबई में एक दिन सीधे बॉम्बे टाइम्स के ऑफिस पहुंच गया। उस ज़माने में वहां से माधुरी मैग़्ज़ीन निकलती थी जिसके संपादक विनोद तिवारी हुआ करते थे। मुझे पता था कि वे पिताजी के अच्छे दोस्त हैं। उन्होंने कहा कि हर 15 दिन में मैग़्ज़ीन आती है। मैं तुम्हें पांच-सात लोगों के नाम दूंगा, उनमें से जिसका इंटरव्यू तुम्हें मिल जाए, लेकर आओ, मैं छाप दूंगा। यहां से मुझे हर महीने तक़रीबन 500 रुपये मिलने लगे। इससे मेरा महीनेभर का ख़र्च निकल जाता था। फिर तो मैंने फूफाजी के पास ही भाड़े पर छोटी-सी जगह ले ली। मेरे अलग रहने पर बुआजी को बुरा भी लगा। वे कहने लगीं कि तुम बेटे की तरह हो, साथ में रहो। लेकिन मुझे लगा कि उन पर भार बनकर रहना अच्छी बात नहीं है, क्योंकि फूफाजी शिक्षक थे और उनके ख़ुद के तीन-तीन बच्चे थे। मैंने एक साल तक बड़ा बुरा जीवन जिया। नित्य क्रिया के लिए डिब्बे में पानी लेकर लाइन में खड़ा होना पड़ता था। फिर लोकल ट्रेन, बस, कई बार तो पैदल ही आना-जाना हुआ। शुरुआत में बड़ी तकलीफ़ हुई। पत्रकारिता के बाद मैंने सोचा कि और क्या करूं जिससे थोड़ा और पैसा मिले। मैं अर्थशास्त्र से एम.कॉम था, सो ट्यूशन पढ़ाने लगा।

भवन्स कॉलेज में पापा के एक दोस्त पढ़ाते थे जो शायर भी थे। मेरे अनुरोध पर उन्होंने एक ट्यूशन डीएन नगर, अंधेरी और दूसरी ट्यूशन भवन्स कॉलेज के परिसर में ही दिलवा दी। दोनों के 100 रुपये मिल जाते थे। इन पैसों से जीवन ठीक-ठाक चलने लगा। लेकिन अब सोचने लगा कि यह सब तो ठीक है, पर आगे अपने लक्ष्य की तरफ़ कैसे बढ़ूं!

भोजपुरी के बाद हिंदी में आग़ाज़

बहरहाल, फिल्म पत्रकारिता के दौरान पहला इंटरव्यू शक्ति कपूर का किया था। उसके बाद लीला मिश्र, रंजीता, शशि कपूर, वहीदा रहमान, मिथुन चक्रवर्ती आदि कई हस्तियों के साक्षात्कार किए। मैं जिसके पास जाता था, उससे एक बात ज़रूर बोलता था- मैं लिखता भी हूं। मुझे किसी म्यूज़िक डायरेक्टर, प्रोड्यूसर से मिलवा दीजिए। कभी-कभी लोग उत्सुक होकर कहते थे कि सुनाओ-सुनाओ, क्या लिखते हो? ऐसा करते-करते मुलाक़ातें शुरू हो गईं। इसी बीच एक प्रोड्यूसर भोजपुरी फिल्म 'बैरी सावन' बना रहे थे। उन्होंने कहा कि आप मेरी फिल्म के लिए एक गाना लिख दीजिए। मैंने सोचा कि चलो, कहीं से तो शुरुआत हो। मैंने गाना लिख दिया। मुझे आज भी उसके बोल याद हैं- 'मार के कटारी मर जइबै, अटरिया पे न चढ़बै राजा...'।

यहां से धीरे-धीरे कुछ और लोगों से पहचान हुई। एक लड़का था, उसने कहा- 'उषा खन्ना के यहां जा रहा हूं। चलो, उनसे मिलवाता हूं।' उषा जी ने जब सुना कि मैं अनजान का बेटा हूं तो उन्होंने कहा कि यह गर्व की बात है। उनको कुछ मुखड़े सुनाए जो उन्हें पसंद भी आए। उन्होंने कहा कि रुकिए, इसे रिकॉर्ड करती हूं। इस तरह पहला हिंदी गाना 'बेख़बर' फिल्म में आया। फिल्म के हीरो पंकज धीर और हीरोइन मधु कपूर थीं। मधु के पिता केदार कपूर फिल्म के डायरेक्टर थे। मेरा पहला गाना अलका याज्ञनिक ने गाया। इसके बोल थे- 'गोरी परेशान है, काली परेशान है। हर घरवाले से घरवाली परेशान है...'। ये हिंदी फिल्मों में आधिकारिक शुरुआत थी।

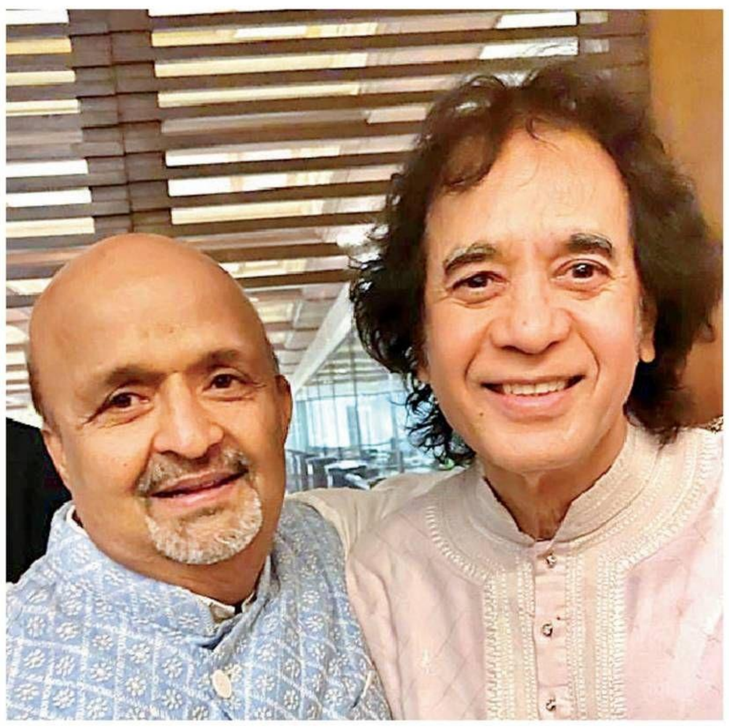
अहा! अतिथि...

अनजान नाम है पहचान

पिताजी जब तक जीवित रहे, मैंने अपने नाम के साथ अनजान नहीं जोड़ा, क्योंकि लोगों को लगता कि फिल्म में उनके भी गाने होंगे। जब वे गुज़र गए, तब मेरे मन में आया कि जब तक मैं ज़िंदा हूं, तब पिताजी का नाम मेरे नाम के साथ होना चाहिए। इस तरह मैं समीर अनजान हो गया। पिताजी ने अनजान उपनाम ख़ुद रखा था। उन्होंने बताया था कि 'अनजान' के दो अर्थ होते हैं। एक, जो कुछ नहीं जानता, दूसरा, जिसे कोई नहीं जानता। मैं पूरी ज़िंदगी यही कोशिश करता रहा कि कुछ लोग मुझे जानें और मैं कुछ समझूं, इसलिए मुझे लगा कि अनजान बेहतरीन नाम है।

‘तुमने किसी से प्यार किया है?’

पिता यह प्रश्न पूछे और पुत्र के जवाब से उसका कॅरियर तय हो, इससे अनोखा और क्या हो सकता है!







एक बार किसी परिचित के साथ चित्रगुप्त जी के यहां गया। वे भी खार रोड (मुंबई) रहते थे। चित्रगुप्त भोजपुरी फिल्मों के मसीहा थे। ‘गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो...’ से लेकर ‘बलम परदेसिया’, ‘लागी छूटे न’, ‘गंगा किनारे मोरा गांव’ आदि रच चुके थे। वे पिताजी के साथ काम कर चुके थे। उन्होंने कहा कि तुमको भाषा आती है, कुछ फिल्में तुम्हारे साथ करता हूं। उनके साथ बात ऐसी बनी कि भोजपुरी फिल्मों का एक लंबा सिलसिला बन गया। एक दिन उन्होंने कहा कि देखो बेटा! तुम्हारा लक्ष्य हिंदी फिल्में हैं और यहां बात बनेगी नहीं। मेरे बेटे आनंद और मिलिंद फिल्म संगीतकार बनना चाहते हैं। तुम उनके साथ जुड़कर काम करते रहो। यहां से आनंद-मिलिंद से जुड़ाव हुआ। दोनों मेरे हमउम्र थे, सो दोस्ती हो गई। आनंद-मिलिंद के साथ पहली फिल्म ‘अब आएगा मज़ा’ मिली। इसमें फारुख़ शेख़ और अनीता राज थे। पिक्चर 15 सप्ताह चली और ठीक-ठाक बिज़नेस कर लिया। इसमें मेरा पहला गाना लता मंगेशकर जी ने गाया था। वे चित्रगुप्त जी की मित्र थीं, मिलिंद का नाम उन्हीं ने रखा था। उस गाने के बोल थे- ‘राजा तेरे रास्ते से हट जाऊंगी, गाड़ी के नीचे जाके कट जाऊंगी’। इस पिक्चर के गाने थोड़े चल गए।

पिता से वह पहली मुलाक़ात...

इसी बीच मां जी ने पिताजी को ख़त लिख दिया कि मेरा बेटा एक साल से वहां पर है, आपने कभी उसकी खोज-ख़बर नहीं ली। उन्होंने जवाब में लिखा कि आपका बेटा मेरे सपने में नहीं आता। अभी आपने कहा है तो पता करता हूं। पिताजी ने फूफाजी को फोन किया। मैं तो नहीं जाना चाहता था, पर फूफाजी समझा-बुझाकर मुझे उनके पास ले गए। मुंबई में पिताजी से पहली मुलाक़ात बांद्रा स्थित पांपोश रेस्तरां में हुई। उस वक़्त मैं 23 साल का था। मेरे ख़याल से तब तक पिताजी से कुल जमा तीन या चार बार ही मिला रहा होऊंगा। घर पर भी वे मुझे अजनबी मेहमान की तरह लगते थे। उन्होंने कहा- ‘मेरे मना करने के बावजूद तुम यहां आ गए। तुम जवान हो। तुमको अपने फ़ैसले करने की आज़ादी है। मगर मैं तुमसे चंद सवालात करूंगा, अगर तुमने सही जवाब दिए, तभी अपने साथ आने की इजाज़त दूंगा।’

उनका पहला सवाल था- ‘क्या तुमने कभी किसी लड़की से प्यार किया है?’ मैंने सोचा कि यह बड़ा अजीब सवाल है। एक तरफ़ मैं संघर्ष की आग में जल रहा हूं और ये इस तरह के सवाल पूछ रहे हैं। ख़ैर, मैं यह सोचकर आया था कि पिताजी जो कुछ कहेंगे-पूछेंगे, उसका दो-टूक जवाब दूंगा। मैंने जवाब दिया कि हां, प्यार किया था। पिताजी बोले- ‘क्या सोचकर प्यार किया था?’ मैंने कहा कि पापा! कोई कुछ सोचकर प्यार नहीं करता। प्यार होता है, तब हो जाता है। वे बोले- ‘अब तुम पूछो कि तुमसे ये सवाल मैंने क्यों पूछे?’ मेरे अंदर यह अकुलाहट तो थी ही।

वे बोले- ‘मैं जानना चाहता था कि तुम सच्चे आशिक़ हो या भगोड़े, क्योंकि जो सच्चा आशिक़ होता है वह सोचकर प्यार नहीं करता। जहां प्यार में सोच आई, समझ लो बिज़नेस शुरू हो गया। इसका मतलब है कि तुम सच्चे आशिक़ हो।’ उन्होंने समझाया- ‘बेटा! यह इंडस्ट्री महबूबा की तरह है। यह बावफ़ा भी हो सकती है और बेवफ़ा भी। इसे छोड़कर तुम भागोगे नहीं, इस बात की गारंटी तुमने दे दी।’ मेरे पिताजी बहुत बड़े दार्शनिक थे। सोचिए कि सवाल क्या थे और उन्होंने निष्कर्ष क्या निकाल लिया!

‘बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता है’

उन्होंने पूछा- ‘क्या सोचकर तुम यहां आए हो, यही न कि तुम भी आनंद बख़्शी, मजरूह, साहिर और शैलेंद्र बन जाओगे, लोग तुम्हारे ऑटोग्राफ लेंगे, तुम्हारे गाने गली-गली में बजेंगे? तुमको लगता होगा कि यह दुनिया जन्नत है।’ मैंने हामी भरी। उन्होंने कहा- ‘लेकिन एक बात नहीं सोची होगी कि जन्नत पाने के लिए मरना पड़ता है। अगर यह सब हासिल करना चाहते हो तो तुम्हें मरने के लिए भी तैयार होना पड़ेगा।’ मैंने सोचा कि यह बात तो बहुत सच्ची है। मैंने कहा कि जीवन में बहुत बड़ा जोखिम लिया है। अब तो ज़िंदगी दांव पर लगानी ही है। इसके बाद चॉल छोड़कर पिताजी के साथ अपार्टमेंट में रहने चला गया।

पिताजी ने कहा, ‘तुम एक साल तक लिखोगे नहीं। मैं तुमको प्रशिक्षण दूंगा। पहले तुम समझो कि इस उद्योग में कवि और गीतकार होना कितना मुश्किल है। यहां पर केवल लिखना आना पर्याप्त नहीं है, बल्कि यहां की तकनीक समझना भी बहुत ज़रूरी है। यहां अपने लिए कोई कुछ लिखता नहीं है। एक कहानी और किरदार दिया जाता है, उसके हिसाब से गाने लिखने पड़ते हैं। अलग-अलग तरह की कहानियां और किरदार मिलेंगे। बहुरंगी गाने लिखने पड़ेंगे।’ मैं सीखता रहा। एक साल के बाद जब उनको लगा कि यह समझ गया है, तब उन्होंने कहा- ‘अब तुम आज़ाद हो। अब तुम लोगों से मिलो, उनको मुखड़े सुनाओ और काम मांगो।’

संगीत संग गीत की चली गाड़ी

मैं अब तक कई लोगों से संपर्क में था ही। आनंद-मिलिंद को भी कुछ काम मिलता रहा। उषा खन्ना जी के साथ भी एकाध फिल्में मिलीं। मैं लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, आरडी बर्मन, कल्याणजी-आनंदजी आदि के यहां जाने लगा। सिटिंग रूम के बाहर चार-चार घंटे बैठा रहता था। इस बीच आनंद-मिलिंद को एक फिल्म मिल गई- ‘दिल’। आमिर ख़ान की पहली फिल्म ‘क़यामत से क़यामत तक’ चल गई थी, सो वे स्टार हो गए थे। उन्होंने डायरेक्टर-प्रोड्यूसर से साफ़ तौर पर कह दिया कि हमको आनंद-मिलिंद ही चाहिए, क्योंकि ‘क़यामत से...’ में उन्होंने बहुत ज़बर्दस्त म्यूज़िक दिया है। आनंद-मिलिंद ने उन्हें बताया कि हमने कुछ गाने बनाकर रखे हैं। समीर जी हमारे राइटर हैं। आप चलिए गाने सुन लीजिए। पहले तो वे गाने सुनने के मूड में नहीं थे, क्योंकि उनको लगा कि म्यूज़िक डायरेक्टर नया है, तब गीतकार कोई बड़ा हो, जिससे बैलेंस हो जाए। लेकिन उन्हें दो-तीन गाने बहुत पसंद आए। इस तरह से मुझे ‘दिल’ फिल्म मिल गई। यह फिल्म क्या मिली कि मेरी तक़दीर ही बदल गई। ‘मुझे नींद न आए, मुझे चैन न आए...’, ‘खंभे जैसी खड़ी है...’, ‘हम प्यार करने वाले...’ सहित फिल्म के सारे गाने मैंने ही लिखे।

इसी बीच मेरी मुलाक़ात नदीम-श्रवण से हुई। उन दिनों उनके पास बहुत काम नहीं था। उन्होंने कहा- ‘यार! अनुराधा पौडवाल से आपकी पहचान है। उनसे मिलवा दीजिए।’ मैं उनके साथ एक फिल्म कर रहा था, जिसका नाम था- ‘इलाक़ा’। इधर गुलशन कुमार का बहुत बड़ा नाम हो गया था और टी-सीरीज़ बहुत बड़ी कंपनी बन गई थी। मैंने अनुराधा जी से आग्रह किया कि दीदी, पापाजी (गुलशन कुमार को हम लोग पापाजी कहते थे) से कहकर हमें कोई काम दिलवाइए। उन्होंने कहा- ‘आइए, मैं आपको मिलवाती हूं।’ हम मिले तो वे कहने लगे- ‘देखिए, हम पिक्चर तो बनाते नहीं हैं। हमारा तो म्यूज़िक कंपनी का काम है। मगर हम प्राइवेट एलबम बना रहे हैं।’

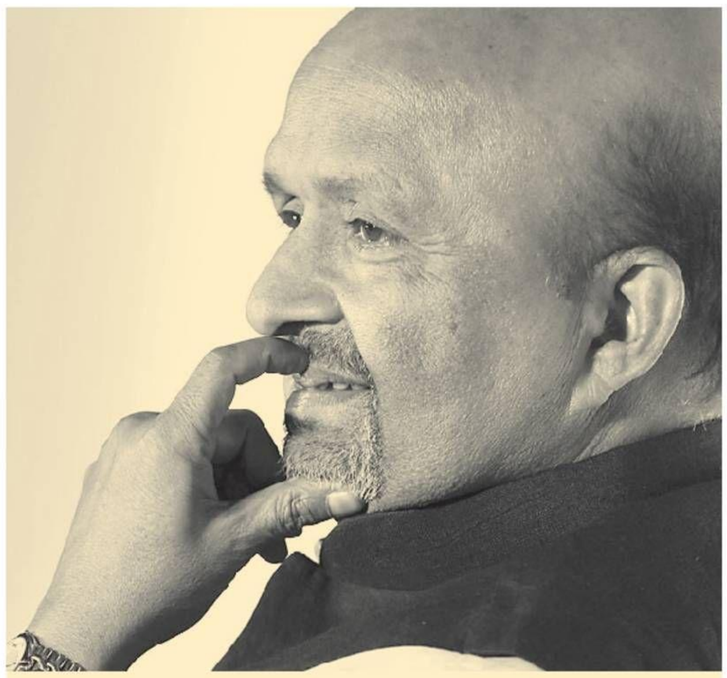
नदीम-श्रवण ने भी सोचा कि जो काम मिल रहा है, उसे शुरू तो करें। एलबम का नाम रखा गया- ‘चाहत’। पहला गाना रिकॉर्ड हुआ- ‘मैं दुनिया भुला दूंगा तेरी चाहत में...’। एलबम के तीन-चार गाने रिकॉर्ड हो गए। गुलशन जी ने उन्हें अपने म्यूज़िक बैंक में शामिल कर लिया। संयोग से, उस वक़्त उनके पास महेश भट्ट आए। उन्होंने गाने सुनकर कहा- ‘ये तो कमाल के गाने हैं। इनमें से तीन गाने मेरे लिए रख दीजिए। मैं इन गानों के ऊपर एक कहानी लिखता हूं।’ उन्होंने कहानी लिखी- ‘आशिक़ी’। अब ‘दिल’ के बाद ‘आशिक़ी’ रिलीज़ हो गई। ‘आशिक़ी’ ने वह कमाल किया कि संगीत का दौर ही बदल गया। ‘आशिक़ी’ की रिलीज़ के बाद मैंने और नदीम-श्रवण ने एक दर्जन से ज़्यादा फिल्में साइन कीं।

अहा! अतिथि...

जितना चाहा उससे ज़्यादा मिला

चालीस साल के अपने फिल्मी सफ़र से समीर पूरी तरह संतुष्ट हैं और अपनी सफलता को ईश्वर की देन मानते हैं।







इधर 'दिल' के बाद आनंद-मिलिंद का भी शिखर काल आ गया था। अब मेरी पेशेवर ज़िंदगी में दो कामयाब संगीतकार थे। उनके पास इतना काम आ रहा था कि मुझे भी सांस लेने की फ़ुर्सत नहीं रहती थी। सुबह से लेकर रात तक मैं काम करता रहता था। सफलता मिलने के बाद मैंने कभी पीछे मुड़कर देखा नहीं। इस बीच मेरी शादी हुई, बच्चे हुए। मुंबई में अपना घर ले लिया। यह करते-करते जीवन के सफ़र में 40 साल गुज़र गए। मैंने जितना सोचा था, इन चार दशकों में ईश्वर ने उससे भी हज़ार गुना दे दिया। तीन राज्यों से बड़े सम्मान मिले। उत्तर प्रदेश से यश भारती, महाराष्ट्र से महाराष्ट्र साहित्य अकादमी और मध्यप्रदेश से किशोर कुमार सम्मान। नज़र के सामने जिगर के पासपास...(आशिक़ी), तेरी उम्मीद तेरा इंतज़ार करते हैं... (दीवाना) और घूंघट की आड़ से दिलबर का दीदार अधूरा रहता है... (हम हैं राही प्यार के) के लिए तीन फिल्मफेयर अवॉर्ड मिले। स्क्रीन अवॉर्ड से लेकर छोटे-बड़े तमाम पुरस्कार-सम्मान मिलते चले गए। साल 2016 में सबसे ज़्यादा गाने लिखने के लिए गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में नामोल्लेख हुआ। अब तो चार हज़ार से ऊपर गाने और तक़रीबन पौने सात सौ फिल्में हो गई हैं। 55-60 प्राइवेट एलबम भी आए हैं।

सुनानी है गीतों से जुड़ी कहानी

अब 'सफ़रनामा' नाम से म्यूज़िकल कॉन्सर्ट करता हूं। इसका ख़ास आकर्षण है- गीत के पीछे की कहानी। मिसाल के लिए, 'दिल' फिल्म का पहला गाना आया- 'मुझे नींद न आए, मुझे चैन न आए...'। इसे लेकर निर्माता-निर्देशक इंद्र कुमार और अशोक ठकेरिया की राय थी कि मुझे नींद न आए लाइन पांच सौ बार आई है, इसे बदल दो। मैं तैयार नहीं था। विवाद इतना बढ़ गया कि मैं फिल्म छोड़ देने तक के लिए तैयार हो गया था। आख़िरकार उन्होंने कहा कि चलो, इसी को रिकॉर्ड करते हैं। अगर नहीं चलेगा तो फिल्म से हटा देंगे। लेकिन यह गीत बहुत पसंद किया गया।

'देखा है पहली बार साजन की आंखों में प्यार...' 'साजन' फिल्म का सबसे हिट गाना है। क़िस्सा यह है कि फिल्म की रिलीज़ डेट क़रीब आने के बाद संगीतकार नदीम ने प्रोड्यूसर से कहा कि हमें एक गाना रिकॉर्ड करना है। उन्हें मना कर दिया गया। नदीम ने कहा- 'आप, माधुरी दीक्षित और सलमान ख़ान को बुलाओ। मैं गाना सुनाता हूं, अगर उन लोगों ने डेट दे दी, तब आपको रिकॉर्ड करना पड़ेगा।' इस शर्त पर सलमान और माधुरी बुलाए गए। गीत सुनकर दोनों ने कहा- 'इसे सौ फ़ीसदी करना ही है। कल ही चलो।' इस तरह ऊटी में गाना शूट करके फिल्म

पिता सच कहते थे

मैं जो कुछ हूं, वह पिताजी की ही परिकल्पना है। उन्होंने कहा था- 'तुम बहुत बड़े शायर बन जाओगे मुझे इस बात पर गर्व नहीं होगा। मुझे गर्व तब होगा, जब लोग बोलेंगे कि तुम बहुत अच्छे इंसान हो।' यहां से मुझे विनम्रता की सीख मिली।

दूसरी बात उन्होंने कही थी- 'बेटा! ज़िंदगी में सब करना, पर कभी बदलना मत। दुनिया में दो ही चीज़ें बदलती हैं : एक मौसम, दूसरा वक़्त। इसके अलावा जो बदले, समझ लो उसी दिन से उसका विनाश निश्चित है।' आज भी मुझसे लोग मिलते हैं, तब कहते हैं कि तुम में कोई परिवर्तन आया ही नहीं।

उनकी तीसरी बात थी- 'जब कामयाबी मिले, तब एक फूल लेकर जाकर मंदिर में ईश्वर को यह कहते हुए चढ़ा दो कि आपकी अमानत, आपके हवाले। इसमें मेरा कुछ नहीं है। यह आपका ही दिया हुआ है।' आप अंदर से महसूस करते हैं कि यह आपने नहीं, बल्कि तीसरी ताक़त ने आपसे करवाया है, तब आपके अंदर कभी अभिमान होगा ही नहीं। जिस दिन यह कहने लगते हो कि मैंने किया, उस दिन से विनाश निश्चित है।

ये सारी चीज़ें मैंने पिताजी से सीखी हैं। पिताजी ने एक कमाल का फॉर्मूला बताया कि इंडस्ट्री में टिके रहने का एक ही रास्ता है- समझ लो या फिर समझा दो। इसके अलावा अगर कोई रास्ता है तो वह झगड़े का रास्ता है। उससे कुछ हासिल होता नहीं है।

में रखा गया जिसने लोकप्रियता का इतिहास रच दिया।

इसी तरह 'घूंघट की आड़ में...' गीत की दिलचस्प कहानी है। मैंने लिखा 'घूंघट की आड़ में...', पर मुकेश भट्ट ने यह कहते हुए नकार दिया कि 'आड़' शब्द बड़ा 'अन-म्यूज़िकल' है। मैंने आज तक यह शब्द सुना ही नहीं है। इसे बदल दो। सुझाव मिले कि घूंघट के नीचे से कर दो, चिलमन के पीछे से कर दो, मगर नदीम-श्रवण भी बोले कि गाना रिकॉर्ड होगा, तब 'आड़' शब्द के साथ ही होगा वरना नहीं होगा। आख़िरकार जब महेश भट्ट ने सुना तो बोले- 'यह इतना नया प्रयोग है कि 'आड़' शब्द की वजह से यह गाना पसंद किया जाएगा।' सोचिए, मुकेश जी की चलती तो गाना रिकॉर्ड ही नहीं होता। अंततः, उस गाने ने ऐसा असर किया कि आज तक लोग सुनते और गुनगुनाते हैं।

'आशिक़ी' की भी कहानी है। रिकॉर्डिंग हो गई, पर गुलशन कुमार कहने लगे कि इन गानों को रिलीज़ नहीं करूंगा, क्योंकि सुनने वालों को ये प्राइवेट एलबम के गाने लगते हैं, फिल्म के नहीं। रिलीज़ करूंगा तो मेरा पैसा बर्बाद हो जाएगा।' फिर महेश भट्ट ने गुलशन जी को भरोसा दिलाया- 'यह तेरी ज़िंदगी का सबसे बड़ा एलबम है, गुलशन। तू मेरी बात मान। मैंने इन गानों पर कहानी बना दी है, सोचो कि कितने कमाल के ये गाने हैं।' भट्ट साहब के बहुत समझाने के बाद जब गुलशन कुमार मान गए। उन्होंने कहा- 'अगर आप इतने प्रभावित हैं, तो फिर मैं इस पिक्चर का वह प्रमोशन करूंगा जो इतिहास में नहीं हुआ होगा।' और वाक़ई, उस ज़माने से लेकर आज तक ऐसा प्रचार किसी फिल्म का हुआ ही नहीं। चूड़ी पर आशिक़ी लिखा हुआ है, साड़ी पर आशिक़ी, दुकान में जाओ तो वहां भी आशिक़ी लिखा हुआ है। सब तरफ़ आशिक़ी ही आशिक़ी! फिल्म का संगीत इतना पसंद किया गया कि लोग ख़ासतौर पर गाने सुनने और देखने हॉल में जाते थे।

गीत, पुस्तकें और परिवार...

वर्तमान में हर विधा के लिए काम कर रहा हूं। हिमेश रेशमिया के साथ मेरे 100 गाने रिकॉर्ड हो गए हैं। मैंने डिजिटल मार्केट में भी काफ़ी काम किया है। अभी तीन-चार फिल्में भी कर रहा हूं। दो फिल्में साज़िद नाडियादवाला की हैं। इसके अलावा सुनील दर्शन की फिल्म 'अंदाज़-2' आने वाली है। छोटी-मोटी फिल्मों के लिए भी लिखा है। अभी ओटीटी पर मनोज बाजपेयी की 'एक बंदा काफ़ी है' हिट हुई थी, उसके लिए भी लिखा। इस तरह का ढेर सारा काम आ रहा है।

इस सबसे कुछ फ़ुर्सत मिलती है तो किताबें लिखता हूं। अंग्रेज़ी में रूपा पब्लिकेशन से पुस्तक आई है, 'लिरिक्स बाय समीर'। काव्य संग्रह 'समीराना गीत' वाणी प्रकाशन से आया है। इसके अलावा वाणी से ही मेरी आत्मकथा 'सफ़रनामा' आ रही है। दो पुस्तकों पर पर काम चल रहा है। जीवन में व्यस्तता बराबर बनाए रखता हूं, क्योंकि जीने के लिए व्यस्त रहना बहुत ज़रूरी है। बाक़ी निजी जीवन है, सो परिवार को वक़्त देता हूं। दो बेटियां हैं, उनकी शादी हो गई है। बेटा सिद्धेश पांडे अभी अमेरिका से पढ़कर आया है, उसे निर्देशन में हाथ आज़माना है।

गीता का श्लोक 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन...' मेरे जीवन का दर्शन है। बस अपना कर्म करते जाओ। हमेशा अच्छा काम करने की कोशिश करो, सफलता तो आपके क़दम चूमेगी। अगर सफलता नहीं मिल रही है तो समझ लो कि आपके प्रयासों में कहीं कोई कमी है, उसे दूर करो। अब भी यही कर रहा हूं।

बुद्धिमत्ता का इंद्रधनुष



मानव को जो चीज़ अन्य प्राणियों से बेहतर बनाती है, वह है बुद्धिमत्ता। लेकिन इसके बारे में इंसानी दिमाग़ में बहुत से भ्रम हैं।

आमतौर पर बुद्धिमत्ता को व्यावहारिकता और गणितीय योग्यता से ही जोड़कर देखा जाता है, जबकि इसके दायरे में ख़ुद को समझना और पर्यावरण की परवाह करना जैसे गुण भी शामिल हैं।

22 जुलाई को वर्ल्ड ब्रेन डे के बहाने इस बार हमारी आमुख कथा मस्तिष्क की अभिव्यक्ति यानी बुद्धि की बात कर रही है।



– डॉ. विनय कुमार

MBBS और MD (मनोचिकित्सा)। वर्ल्ड साइकियाट्रिक एसोसिएशन बोर्ड मेंबर (द. एशिया)। कविता और गद्य की सात पुस्तकें प्रकाशित। दो पत्रिकाओं और मनोचिकित्सा की पांच पुस्तकों का संपादन।

बाहर से देखो तो आदमी, गिनो और कह दो- एक आदमी, मगर उसे जानना शुरू करो तो पता चलता है कि वह तो अपने आप में एक बसावट है, एक बस्ती है जहां न सिर्फ़ दुनिया के लगभग सारे कारोबार चलते हैं, बल्कि उसका एक बड़ा ही सक्षम दफ़्तर भी है जो हर गति, हर स्पंदन को नियंत्रित करता है। यह दफ़्तर आदमी का मस्तिष्क है जो अपने आप में पूरा सचिवालय है जहां एक साथ कई मंत्रालय समन्वित ढंग से काम करते हैं। इस दफ़्तर में एक बड़ा डिपार्टमेंट है - संज्ञान (Cognition) का जिसकी सीईओ है बुद्धिमत्ता (intelligence)। यह कितनी और कैसी है उसी से पूरी बस्ती की दिशा, दशा और दुनिया में उसकी हैसियत बनती-बिगड़ती है। यह बहुत कम हो तो बच्चा बुद्धि-बाधित माना जाता है और अधिक हो तो मेधावी (brilliant) और बहुत अधिक हो तो जीनियस! ऐसा इसलिए कि सरलतम परिभाषा के अनुसार बुद्धिमत्ता ज्ञान और गुण अर्जित करने की क्षमता का नाम है।

मगर न तो दुनिया सरल है, न उसके कारोबार में जीता मनुष्य। तो वह बुद्धिमत्ता भी सरल क्यों हो जिसके होने से हम कठिन को सरल बनाते हैं और नई कठिनाइयां रचते हुए नई सरलताओं की ओर बढ़ते हैं! अधिक खोलकर कहें तो बुद्धिमत्ता के दायरे में तर्क, योजना, समाधान, वैचारिक उलझाव-सुलझाव और भावनात्मक ज्ञान से लेकर रचनात्मकता और अमूर्तन तक आते हैं। विज्ञान के जटिल सूत्र हों या कहावतों में छिपे संकेत या कविता में आए अजब बिंब अथवा चित्र में ओझल-मुखर मन- सबके ताले और चाबियां बुद्धिमत्ता नामक सीईओ के पास ही हैं।

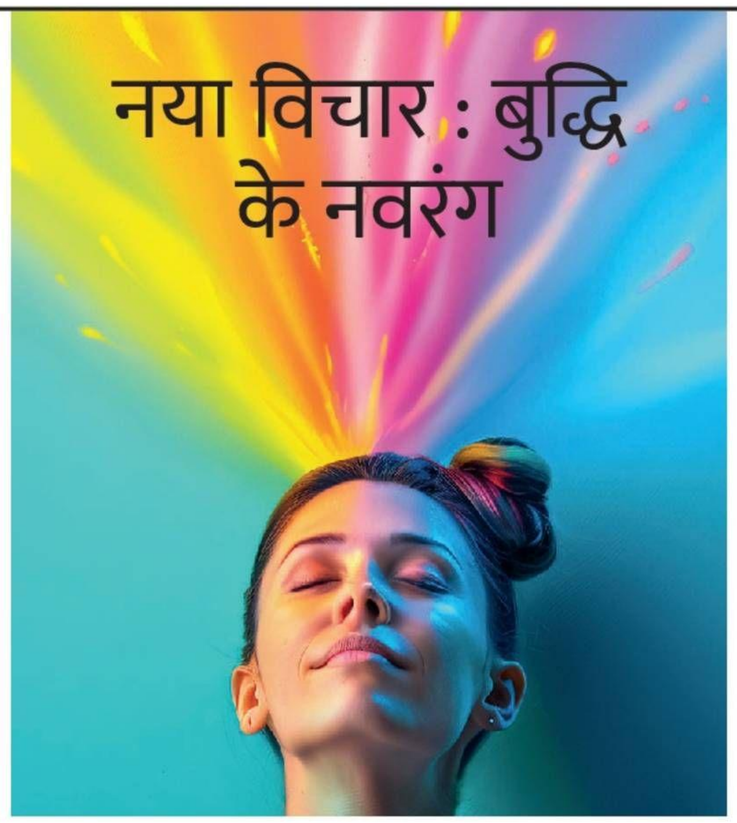
प्रकृति प्रभावी या परवरिश?

यह एक पुरानी बहस है कि मनुष्य जन्मजात बुद्धिमान होता है या पालन-पोषण और सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के प्रभाव उसकी मानसिक क्षमताओं को बेहतर बनाते हैं। इस दिशा में काफ़ी काम हुआ है और अब तक के हासिल का सारांश यह है कि बुद्धिमत्ता एक हद तक आनुवंशिक होती है और पॉलीजेनिक भी। यानी एक से अधिक जीन्स इसके लिए उत्तरदायी होते हैं। शोध यह भी बताता है कि बुद्धिमत्ता के मामले में माता और पिता दोनों के जीन्स शामिल होते हैं और उनका प्रभाव कुछ न कुछ योगफल जैसा होता है। यानी संतान अपने मां-बाप से अधिक बुद्धिमान हो सकती है।

मनोवैज्ञानिक जेम्स फ्लिन ने अपने शोध में पाया था कि हर नई पीढ़ी में पिछली पीढ़ी से अधिक आई क्यू होता है और यह बढ़ोतरी 13.8 अंक की होती है। तो क्या वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है? यक़ीनन! घर का वातावरण, लालन-पालन, पोषण, अच्छा स्वास्थ्य, सीखने के साधनों-संसाधनों की उपलब्धता और सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण, सबका प्रभाव पड़ता है। इस पूरी प्रक्रिया में उन चुनौतियों की भी भूमिका होती है जिनसे एक बालक या किशोर जूझते हुए आगे का रास्ता बनाता है। यहां यह कहना महत्वपूर्ण है कि बुद्धिमत्ता को जाति या नस्ल से जोड़ना उचित नहीं।

जारी : दिमाग़ी दायरा... बुद्धिमत्ता का इंद्रधनुष

नया विचार : बुद्धि के नवरंग



यानी मनुष्य की बुद्धि तीर की तरह चल तो सकती है, मगर वह सिर्फ़ तीर नहीं है, और भी बहुत सारे आयाम हैं उसके। और यह क़तई आवश्यक नहीं कि हर किसी में सारे आयाम हों। कुछ तो बात है कि कोई सुर को बेहतर पकड़ता है तो कोई रंगों और रेखाओं को। किसी की गति गणित में कमाल की तो कोई भाषा के पानी में आराम से तैरता है। कोई शानदार मगर रूखा व्यापारी बन जाता है तो कोई मस्तमौला दोस्त या हरदिल अज़ीज़ फ़क़ीर जिनके बात-व्यवहार से एक घरेलूपन पसरता है और दुनिया पूरी तरह दफ़्तर या दुकान होने से बच जाती है।

मनुष्य की बुद्धिमत्ता के इस इंद्रधनुष को पहचानने का काम किया था प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हावर्ड गार्डनर ने और इसे 'मल्टीपल इंटेलिजेंस थ्योरी' का नाम दिया था। यह सैद्धांतिकी उनकी 1983 में आई किताब 'फ़्रेम्स ऑफ़ माइंड: द थ्योरी ऑफ़ मल्टीपल इंटेलिजेंस' में वर्णित है। **गार्डनर बुद्धिमत्ता के नौ प्रकार का वर्णन करते हैं –**

दृश्य-स्थानिक (विजुअल–स्पेसियल)

इस क्षमता के धनी चीज़ों को देखने-समझने में माहिर होते हैं। इन्हें पढ़ाई-लिखाई में सुख मिलता है और चित्रों, पहेलियों और नक़्शों को समझने-सुलझाने में आसानी होती है। ऐसे लोग अच्छे आर्किटेक्ट या इंजीनियर बन सकते हैं। बन तो चित्रकार भी सकते हैं, मगर रचनात्मक चित्रकार बनने के लिए कुछ और क्षमताएं भी चाहिए।

भाषायी–मौखिक (लिंगविस्टिक–वर्बल)

इस क्षमता के धनी पढ़े-सुने को अच्छी तरह याद रखते हैं। इन्हें पढ़ना-लिखना प्रिय होता है। ये लोग बहस और व्याख्या में कुशल होते हैं। कहानियों और मनोरंजक प्रसंगों के माध्यम से अपनी बात समझाना इन्हें बख़ूबी आता है। इस क्षमता के धनी लेखक, पत्रकार, वकील, शिक्षक आदि बनें तो क्या बात!

तार्किक-गणितीय (लॉजिकल-मैथमेटिकल)-

नाम से ही स्पष्ट है कि इस बुद्धिमत्ता से संपन्न लोग गणित, विश्लेषण और तर्क विद्या में गुणी होते हैं। ये लोग प्रॉब्लम-सॉल्विंग में निपुण होते हैं। इनके लिए वैज्ञानिक, गणितज्ञ, कंप्यूटर प्रोग्रामिंग, इंजीनियर, एकाउंटिंग जैसे कॅरियर विकल्प बेहतर हो सकते हैं।

शारीरिक–गत्यात्मक (बॉडिली–काइन्स्थेटिक)

इस बुद्धिमत्ता वाले लोगों का अपने शरीर और उसकी गतियों पर बेहतरीन नियंत्रण होता है। ये लोग नृत्य और स्पोर्ट्स में सफल होते हैं। इन्हें अपने हाथों कुछ गढ़ने-रचने में सुख और सफलता की प्राप्ति होती है। ये भाषण सुनकर नहीं, गतिविधियों में शामिल होकर चीज़ों को याद रखते हैं। इनके लिए उचित व्यवसाय हैं- नृत्य, शिल्प, शल्य चिकित्सा, अभिनय।

सांगीतिक (म्यूजिकल)

इनमें लय और ध्वनियों के पैटर्न को समझने और दुहराने की क्षमता होती है। इन्हें गाना और बजाना भाता है। ये लोग बड़ी आसानी से गीतों और उनकी धुनों को याद रख लेते हैं और संगीत की जटिल बुनावट को समझ लेते हैं। इन्हें गायन, वादन और संगीत निर्देशन में जाना चाहिए।

अंतरवैयक्तिक (इंटरपर्सनल)

इस प्रतिभा के धनी लोगों को बेहतर समझते हैं और पारस्परिक संबंधों और व्यवहारों में सामने वाले की भावनाओं को सही तरीक़े से संबोधित करते हैं। ये लोग बोलने-बतियाने में ही नहीं हाव-भाव और सांकेतिक मुद्राओं को प्रकट करने में भी निपुण और सटीक होते हैं। सकारात्मक संबंध बनाना और समूह के भीतर के द्वंद्व और झगड़े सुलझाना कोई इनसे सीखे। ये लोग बेहतरीन मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, सेल्सपर्सन और राजनेता बन सकते हैं।

अंत:वैयक्तिक (इंट्रापर्सनल)

इस बुद्धिमत्ता से संपन्न लोग अपनी भावनाओं, रुचियों और इच्छाओं को बेहतर समझते हैं। ऐसे लोग अक्सर आत्मान्वेषण और आत्मविश्लेषण करते हैं और अपनी क्षमताओं और सीमाओं का सही आकलन करते हैं। कहा जा सकता है कि ये लोग आत्मबोध संपन्न हो सकते हैं। ये दार्शनिक, विचारक, लेखक या वैज्ञानिक होने का प्रयास करें तो बेहतर होगा।

प्राकृतिक और पर्यावरण–संबंधी (नेचुरलिस्टिक–इंवायरन्मेंटल)

बुद्धिमत्ता के इस स्वरूप को हाल में जोड़ा गया है। ज़ाहिर है, इसकी जड़ में पर्यावरण से जुड़े संकट हैं। आज दुनिया को ऐसे बुद्धिमान लोगों की आवश्यकता है जो प्रकृति को बेहतरीन ढंग से समझते हों और उससे तादात्म्य बिठाने के तरीक़े ढूंढने और शोध करने में आनंद का अनुभव करते हों। इसे अपनी सूची में जोड़ने के लिए गार्डनर विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। इसे देखते हुए मुझे घाघ और भड्डरी की याद आती है। ऐसे लोग प्रकृति प्रेमी और उसके रक्षक होते हैं। उन्हें पेड़-पौधों से ही नहीं जीव-जंतुओं से भी लगाव होता है। आज की तारीख़ में इनके लिए कॅरियर विकल्प हैं- जीव वैज्ञानिक, प्रकृति संरक्षक, कृषि, उद्यान क्षेत्र में कार्य।

अस्तित्ववादी (एक्सीस्टेंशियल)

इसे भी गार्डनर ने बाद में जोड़ा है। उसके अनुसार इस क्षमता के धनी जीवन के गहन दार्शनिक प्रश्नों को समझने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए उन ऋषियों को याद कर सकते हैं जिन्होंने जीवन, जगत और ब्रह्मांड के संबंधों को समझने-समझाने की दार्शनिक कोशिश की। ऐसे लोग अधिक प्रतिभावान हुए तो दार्शनिक हो सकते हैं और अगर भाषायी-मौखिक बुद्धिमत्ता भी प्रबल हुई तो कथावाचक या पुरोहित।

अंत में...

इतना जोड़ना आवश्यक है कि बुद्धिमत्ता और उसके प्रकारों का किताबी नहीं व्यावहारिक महत्व है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश की शिक्षा एक चूहा दौड़ में शामिल है और हमारे नेतागण सत्ता के गणित में मस्त और व्यस्त हैं। स्कूलों में ऐसी जांच का कोई प्रावधान नहीं। सीबीएसई जैसी संस्था भी आत्मघाती चूहा दौड़ को चुपचाप देख रही। यह देखना दुःखद है वे छात्र जो साहित्य या संगीत के क्षेत्र में जाने योग्य हैं वे भी आईआईटी में जाने की तैयारी में उलझ जाते हैं और एक दिन हम अख़बारों में बुरी ख़बरें पढ़ते हैं। गार्डनर की कई लोगों ने सैद्धांतिक आलोचना की है, मगर यह सच है कि उस सहृदय और लोकतांत्रिक मनोवैज्ञानिक ने सबके लिए द्वार खोलने का काम किया है।

कठिन है चिमटी से पकड़ना

बहरहाल, किसी एक परिभाषा की चिमटी से बुद्धिमत्ता को नहीं पकड़ सकते आप, और शायद यह इसलिए कि परिभाषा देने वाले की क्षमता उसकी अपनी बुद्धिमत्ता पर टिकी होती है। कोई उसे लक्ष्य की तरफ़ उन्मुख व्यवहार कहता है तो कोई अच्छी और व्यावहारिक समझ और निर्णय क्षमता। कोई उसे स्मृतियों के जमा करने, उन्हें एक-दूसरे के बरअक्स देखने और संयोजित करने तथा नये संदर्भों में कुशल उपयोग के लिए उन्हें फिर से प्राप्त करने की प्रक्रिया समझता है, तो कोई उसे गणित के सूत्र में बांधते हुए कहता है कि यह एक बल है जो इस तरह काम करता है कि उसे भविष्य में अधिक आज़ादी से काम करने के मौक़े मिल सकें।

बुद्धिमत्ता को समझने की कोशिश में लगे मनोवैज्ञानिकों के बीच एक नाम एक हॉवर्ड गार्डनर का भी है जो इसे सेट ऑफ़ स्किल्स के रूप में देखते थे और एक अल्फ़्रेड बिनेट का भी जिन्हें बुद्धिमत्ता को मापकर अंकगणित की भाषा में प्रस्तुत करने का श्रेय जाता है। बिनेट एक फ़्रेंच मनोवैज्ञानिक थे और बुद्धि को मापने वाला स्केल विकसित करने का काम उन्होंने एक सरकारी आदेश के तहत किया था। आश्चर्य होता है जानकर कि उन्नीसवीं सदी में भी ऐसी फ़िक्रमंद सरकार हुआ करती थी। बहरहाल, बिनेट ने यह काम इतनी कुशलता से किया कि सारी दुनिया में इसकी धूम मच गई। बिनेट को सराहने वालों में स्टैनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक लेविस टर्मन भी थे जिन्होंने बिनेट के टेस्ट को अमेरिकी ज़रूरतों के हिसाब से अनुकूलित किया जो आज भी स्टैनफ़ोर्ड-बिनेट टेस्ट के नाम से जाना जाता है।

तेज़ होती है, तीर जैसी नहीं

स्टैनफ़ोर्ड-बिनेट टेस्ट का इस्तेमाल आज भी सारी दुनिया में होता है और निर्धारित किया जाता है कौन तेज़ है और कौन मंद। इंटेलिजेंस कोशेंट या आईक्यू से कौन परिचित नहीं! मगर सवाल तब भी उठा था कि क्या बिनेट टेस्ट मनुष्य की इस विशेष क्षमता को पूरेपन में देख पाता है? क्या उस टेस्ट में शामिल पैमानों पर तेज़ होना ही सबकुछ है? सवाल बिनेट टेस्ट में स्टैनफ़ोर्ड जोड़ने वाले लेविस टर्मन के मन में भी उठा था और उन्होंने इस टेस्ट के आधार पर जीनियस की शिनाख़्त के लिए एक भविष्य-आधारित महत्वाकांक्षी शोध-योजना बनाई थी। इस शोध में 150 से ऊपर आईक्यू वाले बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन औसत आईक्यू वाले बच्चों के साथ किया गया। यह अध्ययन सत्तर सालों तक चला और टर्मन की मृत्यु के बाद छह खंडों में शोधग्रंथ का प्रकाशन हुआ। इस शोध ने यह साबित किया कि हाई आईक्यू का अर्थ जीनियस होना नहीं, क्योंकि इस शृंखला से सिर्फ़ दो बड़े लेखक और दो ऑस्कर जीतने वाले निर्देशक पैदा हुए। शेष लोग सफल मात्र हुए और ऊंचे पदों तक पहुंचे। तो इस शोध की नेगेटिव फ़ाइंडिंग्स से यह साबित हुआ कि कुछ और क्षमताएं भी होती हैं मनुष्य में जो उसे जीनियस बनाती हैं।

रचनात्मक व्यक्तित्व सिर्फ़ आईक्यू के प्राप्तांकों के भरोसे नहीं बन सकते। रचनात्मकता के मनोविज्ञान पर महत्वपूर्ण काम करने वाले जेपी गिल्फ़ोर्ड ने इसे मनुष्य की सोच पद्धति से जोड़कर देखा है। वे कहते हैं कि जिनका व्यक्तित्व रचनात्मक होता है उनके सोचने के तरीक़े में विस्तार होता है। वे एक समस्या के अनेक समाधान सोच सकते हैं, एक दृश्य को सौ तरह से लिख और चित्रित कर सकते हैं। इनके विपरीत होते हैं वे जो सौ आंकड़े इकट्ठा कर एक समाधान की ओर जाने की कोशिश करते हैं, यानी उनके सोचने में कन्वर्जेंस होता है।

अक़्लमंदी तो इसी में है कि अक़्ल मंद न होने पाए, यानी मस्तिष्क की क्षमताओं में कोई कमी आए, इसके पहले ही रोकथाम के उपाय अपना लिए जाएं।

अत: स्मरण शक्ति और संज्ञानात्मक क्षमताओं से जुड़े इन उपायों को पढ़ने के साथ गुनिए और अपने दैनिक जीवन में गूंथिए भी।

मंद नहीं होगी अक़्ल



– डॉ. चीनू अग्रवाल

जानी-मानी मनोवैज्ञानिक। मनोविज्ञान में पीएचडी। अमेरिका स्थित अल्बर्ट एलिस इंस्टीट्यूट से प्रशिक्षित। फ़ीलिंग माइंड्स संस्था की निदेशक। टेड टॉक्स जैसे अंतरराष्ट्रीय मंच से भी संबोधित कर चुकी हैं।

मस्तिष्क हमारे शरीर का सबसे नाजुक हिस्सा है। यह अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक विकसित और साथ ही जटिल भी है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मस्तिष्क निरंतर विकसित हो रहा है। विगत कुछ सालों में देखा जा रहा है कि मस्तिष्क से जुड़ी समस्याएं भी बढ़ती जा रही हैं, जैसे कि ब्रेन स्ट्रोक, डिमेंशिया (स्मृति कोप), अल्ज़ाइमर्स (स्मृति भ्रंश), मिर्गी इत्यादि।

पूरी दुनिया में हर तीन में से लगभग एक व्यक्ति ऐसी किसी न किसी गड़बड़ी का जीवन में एक बार शिकार हो रहा है। यह बहुत चिंताजनक है, क्योंकि इन रोगों का उपचार कठिन और महंगा है और इनसे मस्तिष्क की क्षमताओं को होने वाला नुक़सान भारी है। पर अच्छी बात यह है कि इनमें से ज़्यादातर की रोकथाम संभव है।

कुछ छोटे-छोटे क़दम उठाकर हम अपने मस्तिष्क का लचीलापन बरक़रार रख सकते हैं और लंबे समय तक उसकी स्मरण शक्ति, विचार क्षमता और रोज़मर्रा के कार्य करने की शक्ति को क़ायम रख सकते हैं।



याददाश्त के लिए ये याद रखें...

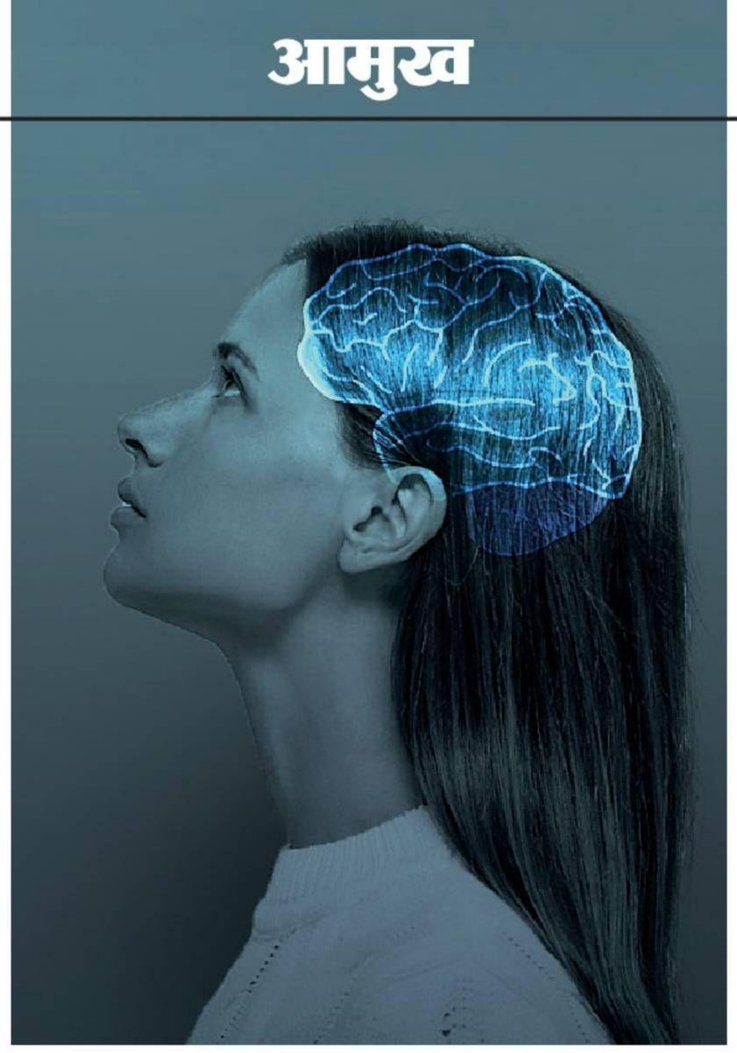
मस्तिष्क से जुड़ी दिक़्क़तों में एक प्रमुख लक्षण स्मृति लोप होना देखा गया है। वैसे तो उम्र के साथ हमारी याददाश्त में कमी आती ही है, पर डिमेंशिया और अल्ज़ाइमर्स जैसी कुछ बीमारियों में स्मरण शक्ति बुरी तरह से प्रभावित हो जाती है। आजकल वैसे भी देखने में आ रहा है कि कम उम्र के लोग भी अपनी याददाश्त को लेकर परेशान हैं। कुछ कहते हैं कि कोविड के बाद से वे भूलने लगे हैं, नाम नहीं याद आते, बातचीत के दौरान कोई शब्द लोप हो जाता है। एक संभ्रम की स्थिति बनती है जिसमें दिमाग़ ठीक से सोच नहीं पाता, छोटी-छोटी चीज़ें समय पर याद नहीं आतीं और दिमाग़ी थकावट महसूस होती है जिसे 'ब्रेन फॉग' कहा जाता है। ऐसे में स्मरण शक्ति बढ़ाने के शोधसम्मत आसान और उपयोगी तरीक़ों को अपने दैनंदिन में शामिल करना बहुत ज़रूरी है।

मनोवैज्ञानिक शोध में याददाश्त बढ़ाने के लिए तीन प्रकार के उपाय बताए गए हैं। इन्हें समझने के लिए स्मरण की तीन चरणों वाली प्रक्रिया को ध्यान में रखना होगा।

पहला चरण :

एनकोडिंग (Encoding)। इसके तहत हम अपनी पांचों इंद्रियों द्वारा वातावरण से जानकारी संसाधित करके मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं। कई बार भूलने की समस्या एनकोडिंग से ही संबंधित होती है। हमारा ध्यान शायद कहीं और भटका हुआ था तो इस अन्यमनस्कता के चलते दिमाग़ तक सही जानकारी का संचार हो ही नहीं पाया और हमारी याददाश्त में जानकारी दर्ज ही नहीं हो पाई। इसका निवारण करने के लिए एक सरल उपाय सुझाया गया है: रोज़मर्रा की ज़िंदगी में माइंडफुलनेस एक्सरसाइज़ का समावेश करना। ये वास्तव में ध्यान की ही एक विधि है जिसमें हम आसानी से छोटे-छोटे क़दमों द्वारा अपनी एकाग्रता में बहुमूल्य सुधार कर सकते हैं। वैसे तो माइंडफुलनेस क़वायदें कई तरह से की जाती हैं पर यहां हम कुछ ऐसे तरीक़े सुझा रहे हैं जिन्हें बहुत आसानी से हर कोई कर पाए—

— सुबह उठते वक़्त पांच मिनट अपने बिस्तर पर लेटे रहें और सामान्य श्वास लेते हुए बारी-बारी शरीर के हिस्सों का वज़न महसूस करें, जैसे पैर, कमर, हाथ, गर्दन और सर।
— नहाते हुए पानी का स्वर, साबुन की महक और शरीर पर गिरते हुए जल को महसूस करें।
— पूजा करते हुए पूजन सामग्री जैसे अगरबत्ती, धूपबत्ती, चंदन, कपूर, फूलों की महक, रंग आदि को महसूस करें।
— नाश्ता करते हुए अपने सामने रखे खाने के रंग, फिर उनकी ख़ुशबू, फिर उनके स्वाद को आराम से, तसल्लीबख़्श तरीक़े से अनुभूत करें।
— सुबह की सैर करते हुए सामान्य ढंग से श्वास लेते रहें और अपने कानों में आने वाली आवाज़ों, जैसे पक्षियों की चहचहाहट और अन्य प्राकृतिक ध्वनियों के प्रति सजग हों, उन्हें सहेजें। अपनी त्वचा पर सुबह की सुनहरी धूप और भीगी हवा का अहसास करें।



दूसरा चरण :

स्टोरेज यानी भंडारण। यानी जानकारी को जमा करना। मान लीजिए हमारा मस्तिष्क एक अलमारीनुमा चीज़ है। इसमें हम जानकारी को जितना व्यवस्थित करके रखेंगे उतना ही हमें उसे खोजने में आसानी होगी।

— इसके लिए एक आसान उपाय है सूचियों और कैलेंडर का ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग करना। सूचियां कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे कि आज दिनभर में जो कार्य करने हैं उनकी एक दिन या रात पहले ही एक सूची बना लें और जैसे-जैसे वे काम निपटते जाएं उन्हें टिक मार्क करते चले जाएं।
— आगे आने वाले महत्वपूर्ण आयोजन को याद रखने के लिए डायरी या कैलेंडर की मदद ली जा सकती है। आजकल इसके लिए डिजिटल एप भी उपलब्ध हैं, उनमें रिमाइंडर या टाइमर भी लगा सकते हैं। अपनी स्मृति को सुदृढ़ करने के लिए इन सूचियों को कुछ-कुछ अंतराल के बाद देखते रहने से भी काम बन जाएगा।
— सूचियों का एक और प्रकार है 'चेकलिस्ट'। किसी भी काम को करने से पहले यह सुनिश्चित करने के लिए कि हम कोई चीज़ भूल न जाएं, चेकलिस्ट बनाकर काम करना अत्यंत उपयोगी हो सकता है। जैसे, सफ़र में काम आने वाली चीज़ों की एक चेकलिस्ट बनाना और बैग में उनकी मौजूदगी जांच लेना उपयोगी होगा।

तीसरा चरण :

पुनः प्राप्ति (Retrieval)। स्मृति के तीसरे चरण के लिए 'रिट्रीवल क्यूज़' का उपयोग किया जाता है। यह स्टोरेज की प्रणाली पर निर्भर करता है।

— अगर आप ने अपनी दिमाग़ में चीज़ें एक समूह के रूप में एकत्रित की हैं तो उस समूह का नाम याद आते ही सब याद आ जाएगा। इसे 'चेकिंग' भी कहते हैं।
— विद्यार्थी एक तकनीक का इस्तेमाल करते हैं जिसे 'नीमोनिक' कहा जाता है जिसमें वे किसी मुश्किल सबक़ को याद करने के लिए केवल पहले अक्षर को याद कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, इसी लेख में आगे ACTIVE की व्याख्या देखें।
— हम जो हम भूल गए हैं उसे याद करने से कई बार खीझ होने लगती है। ऐसे में शोध यह बताते हैं कि कुछ समय के लिए वहां से अपना ध्यान हटा लेना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि बाद में याद आ जाएगा। सकारात्मक सोच रखने से वाक़ई थोड़ी देर बाद भूली हुई बात फिर से याद आ जाती है।



दिमाग़ के लिए ACTIVE रहें...

स्मरण शक्ति के अलावा बहुत-सी मस्तिष्क संबंधी रोगों में सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो जाती है जिसे कॉग्निटिव डिक्लाइन या संज्ञानात्मक क्षति कहते हैं। इससे निपटने के लिए मनोवैज्ञानिक शोध द्वारा एक फार्मूला बनाया गया है जिसे संक्षेपाक्षर में 'ACTIVE' कहते हैं। एक्टिव का अर्थ सक्रिय रहना तो है ही, साथ ही सरल और वैज्ञानिक तरीक़े से समझाया है।

Act : ज़्यादा समय बिना काम के ना बैठे रहें या टीवी-मोबाइल में लगे ना रहें। इसकी जगह चाहे छोटा ही सही, सरल ही सही, कुछ न कुछ उपयोगी काम करते रहें, जैसे कि लिखना, पढ़ना, पौधों में पानी देना, सब्ज़ी काट देना, कपड़ों की तह लगा देना, अलमारी साफ़ कर लेना इत्यादि।

Connected : शोध यह बताते हैं कि जो लोग किसी न किसी से बातचीत करते रहते हैं, साथ मिलकर सैर पर जाते हैं, फोन पर ख़ैर-ख़बर लेते रहते हैं, साथ-साथ कोई खेल खेलते हैं, साथ खाना खाते हैं, दोस्त बनाते हैं और दोस्तों के साथ मिल-जुलकर समय व्यतीत करते हैं उनमें सोचने-विचारने की शक्ति लंबे समय तक बनी रहती है।

Talk : भाषा का उपयोग करते रहना, बातचीत करना, नई भाषा सीखना, पॉडकास्ट बनाना, रिकॉर्डिंग बनाना, किसी को भाषा सिखाना मस्तिष्क का स्वास्थ्य क़ायम रखने के बहुत ही कारगर उपाय हैं।

Initiate : अपनी तरफ़ से आगे बढ़कर काम करना या किसी से बातचीत करना या फिर किसी सामाजिक कार्य में अपना योगदान देते रहना भी हमारे दिमाग़ की क्षमता को बढ़ाता है। जब हम डरने लगते हैं और अपना आत्मविश्वास खो देते हैं तो हम आगे बढ़कर काम करने में हिचकिचाने लगते हैं। ऐसे में धीरे-धीरे हमारी क्षमता कम होती चली जाती है। ऐसा ना हो, इसके लिए अपनी तरफ़ से आगे बढ़कर अपना योगदान घर में, कामकाज में और समाज में देते रहना है।

Vitality : जीवन में शक्ति का संचार हो, उत्साह का संचार हो, इसके लिए अपने से छोटे उम्र के लोगों, ख़ासकर बच्चों के साथ बातचीत करना, उनकी दुनिया समझना, जानना, उनसे नई चीज़ें सीखना, अपने आपको एक नए अंदाज़ में करते रहना (Reinvent), अपनी रचनात्मकता को बनाए रखने के लिए हॉबी क्लासेस का हिस्सा बनना, नई चीज़ें बनाना सीखना हमें और मस्तिष्क के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगा।

Engagement : दिमाग़ की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वह बहुत जल्दी ऊब जाता है और यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं है। ऐसे में दिमाग़ को नित नई चुनौती देना उसे स्वस्थ बनाए रखता है। शोध बताते हैं कि पहेलियां सुलझाना, सुडोकू जैसे गेम खेलना, ताश खेलना, गणित के सवाल हल करना, सामान्य जानकारी के क्विज़ खेलना, वर्गपहेलियां भरना, रुबिक्र क्यूब से खेलना दिमाग़ को व्यस्त रखने के साथ उसका लचीलापन और स्वास्थ्य भी ठीक रखता है।

दिमाग़ के लिए खाना चाहते हैं तो खानपान में दिमाग़ लगाएं। जानें कि बौद्धिक क्षमताओं के लिए क्या, कितना और कब खाना चाहिए...

दिमाग़ की खुराक





– अमिता सिंह
जानी-मानी आहार विशेषज्ञ। कई प्रतिष्ठित संस्थानों से संबद्ध हैं।

अ मूमन आपने लोगों को कहते सुना होगा कि मुझे तो कुछ याद ही नहीं रहता! कई बार वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते ही भूल जाते हैं कि किस काम के लिए इधर से उधर हुए हैं। और आदतन इसे हास्यास्पद ढंग से ज़ाहिर करते हैं, जैसे ये इस दौर का चलन हो। भूल जाने की आदत बढ़ती उम्र के साथ आए तो फिर भी एक बात है। अब कई शोधों ने बढ़ती उम्र के साथ भी दिमाग़ को तंदुरुस्त रख पाने के पक्ष में बात कही है। शरीर की भांति ही, दिमाग़ को भी स्वस्थ रखने के लिए हमें अपने खान-पान पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

छुटपन से पोषण

एक वयस्क मस्तिष्क लगभग डेढ़ किलो का होता है। इसका 60 प्रतिशत हिस्सा वसा से बना होता है। बाक़ी का 40 प्रतिशत- पानी, प्रोटीन, कॉर्बोहाइड्रेट और अन्य तत्वों से मिलकर। और सबसे हैरत की बात कि हमारे जीवन के शुरुआती तीन सालों में ही हमारे मस्तिष्क का 90 से 95 प्रतिशत विकास पूरा हो चुका होता है। इसलिए शिशु अवस्था से ही पर्याप्त मात्रा में और सही प्रकार का पोषण मिलना स्वस्थ मस्तिष्क हेतु बहुत आवश्यक है। आगे चलकर आप महज़ इसकी क्षमता को थोड़ा बहुत घटा-बढ़ा सकते हैं या इसे स्वस्थ-संतुलित बनाए रखने के प्रयास कर सकते हैं।

तो अब बात आती है कि दिमाग़ के हितकारी पोषक तत्वों को कैसे अपनी भोजन से जुड़ी दिनचर्या में शामिल किया जाए।

दिमाग़ के लिए थाली

कुछ चीज़ें ऐसी है जो हमें दिमाग़ी रूप से स्वस्थ बनाती हैं। उनमें मुख्य रूप से शामिल है मछली जिसमें अधिक वसा होती है। विभिन्न प्रकार की बेरियां, हल्दी, कद्दू के बीज, डार्क चॉकलेट, नट्स, संतरा, अंडा और ग्रीन टी।

— ख़ूब पानी पिएं

दिमाग़ के सुचारु रूप से काम करने के लिए सबसे ज़रूरी है पानी। आपकी सुबह की शुरुआत ही भरपूर पानी पीने के साथ होनी चाहिए। पानी की कमी दिमाग़ के काम करने की क्षमता पर सीधे-सीधे असर डालती है। इसलिए दिनभर में पर्याप्त मात्रा में पानी पिएं। यह ध्यान रखने लायक़ बात है कि पानी से अर्थ यहां पेयजल, नारियल पानी, सूप और छाछ है। पर अलग-अलग प्रकार की शुगरड्रिंक्स, कोल्ड ड्रिंक्स या सोडा से नहीं।

— फल और बेरीज़

नाश्ते के साथ यदि आप एक विटामिन-सी का फल जैसे- संतरा, अमरूद, मौसंबी ले लेते हैं तो और भी बढ़िया। ये फल एंज़ाइम्स के साथ मिलकर एंटीऑक्सीडेंट की भांति काम करते हैं और हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को मज़बूत करने में मदद करते हैं। इसी के साथ अलग-अलग प्रकार की बेरी जो आपके क्षेत्र में ताज़ी और सुलभता से उपलब्ध हो, का भी सेवन लाभदायक रहता है। जैसे भारत में ताज़ा ब्लूबेरी या स्ट्रॉबेरी के उपलब्ध न होने पर हम मौसमी बेरी जैसे बेर, करौंदा, जामुन का भरपूर सेवन कर सकते हैं। इनसे फ्लेवोनॉयड्स मिलते हैं, जो दिमाग़ी चोट के खिलाफ़ न्यूरॉन्स की रक्षा करने की क्षमता, न्यूरोइन्फ्लेमेशन को दबाने की क्षमता और स्मृति को बढ़ाते हैं।

— कैफ़ीन कब और कितना

त्वरित ऊर्जा चाहिए हो तो दिन में कैफ़ीन वाले पेय का सेवन कर सकते हैं। चाय, कॉफ़ी और डार्क चॉकलेट और ख़ासतौर पर ग्रीन टी में जो फ्लेवोनॉयड्स पाए जाते हैं वो ऊर्जा देते हैं, मूड ठीक करते हैं और ध्यान केंद्रण बढ़ाते हैं। कॉफ़ी में मौजूद कैफ़ीन, एडीनोसिन नामक प्राकृतिक न्यूरोट्रांसमीटर को बाधित करता है, जिसके चलते थकावट महसूस नहीं होती। डार्क चॉकलेट और कॉफ़ी वैसे तो समझने की क्षमता को बढ़ाने के लिए जाने जाते हैं, पर इनके अति में सेवन से बचें। दिन में दो से तीन बार इनका सेवन पर्याप्त होता है लेकिन रात में परहेज़ करें।

— गुणकारी नट्स

पानी पीने के बाद आप नट्स में सबसे पहले अखरोट ले सकते हैं। इसमें प्रोटीन और दिमाग़ के लिए गुणकारी वसा होती है। एक दिन में तीन पूरे अखरोट खाना आपकी दिमाग़ी सेहत के लिए बहुत अच्छा रहेगा। साथ में कुछ मीठे के नाम पर किशमिश या मुनक्का भी ले सकते हैं। इनमें मौजूद आवश्यक तत्व आपको अखरोट के प्रोटीन और वसा का भी उपयोग करने में मदद करेंगे।

— हरी भरी हो थाली

दलहन जिनसे ओमेगा-थ्री फैटी एसिड प्राप्त होता है, दोपहर के खाने में शामिल कर लें। चाहे तो अंकुरित खाएं या पकाकर। पकाकर खाने से अगर इनमें वसा होती है तो ये और अधिक लाभ देते हैं। दो समय के भोजन में एक बार तो हरी भाजी का सेवन ज़रूर हो। हमारे यहां उपलब्ध मौसमी हरी साग-सब्जियों में फोलिक एसिड के साथ ही विटामिन-के, बीटा कैरोटीन और विटामिन-ए शामिल होता है। हरी सब्ज़ी का सेवन एक वयस्क के लिए सप्ताह में तीन से चार बार, एक से दो बड़े चम्मच पर्याप्त है। वहीं बच्चों के लिए एक बड़ा चम्मच काफ़ी है। शाम के समय में हल्की भूख में पीले कद्दू के बीजों का सेवन स्नैक्स के साथ कर सकते हैं। इसके दिन में दो छोटे चम्मच पर्याप्त हैं।

इनसे करें परहेज़

बाहर का खाना और जंकफूड हमारे मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं। ये मैदे की बनी वस्तुएं होती हैं, जो शरीर में ग़लत प्रकार की वसा को इकट्ठा करती हैं, जिससे आपकी याद करने की क्षमता पर असर पड़ता है। कई बार ये प्रोसेस्ड फूड्स मस्तिष्क में सूजन भी पैदा कर देते हैं। साथ ही इनका असर आपके मन पर भी पड़ता है। साथ ही भारी और अधिक तले हुए भोजन के चलते एक खीज-सी बनी रहती है।

योग युति से प्रबल बुद्धि

अगर भरपूर नींद, पौष्टिक आहार और संयमित जीवनशैली के बाद भी मानसिक थकान के चलते बौद्धिक क्षमता में कमी महसूस होती है तो उपाय क्या है...?

– आचार्य रजनीकांत शास्त्री
आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय,
आबू पर्वत



हमारी आज की दिनचर्या में शारीरिक श्रम न के बराबर होता जा रहा है और मानसिक श्रम में उलझनें बढ़ती ही जा रही हैं। मानसिक थकान व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता पर असर डालती है। ऐसे में दिन-रात सक्रिय दिमाग़ को तरोताज़ा बनाए रखने के लिए ज़रूरी है उसमें जमा हो रहे अनावश्यक और व्यर्थ विचारों की सफ़ाई। और उसके साधन के रूप में हमारे पास हैं- योग, ध्यान और प्राणायाम। मूलत: इनका उद्देश्य होता है चित्त को एकाग्र कर बुद्धि को प्रबल करना। योग का अर्थ संस्कृत में 'जुड़ना' या 'मिलन' होता है। यह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रथाओं और अनुशासनों का समूह है, जिसका उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा को एकीकृत करना और समग्र स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देना है। योग के आठ अंग होते हैं: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों के माध्यम से योग व्यक्ति को आत्मज्ञान और मानसिक शांति की ओर ले जाता है। योग आपके दिमाग़ को तरोताज़ा रखने का एक सरल और सुरक्षित तरीक़ा है, वहीं ध्यानसाधना जीवन में स्पष्टता और सक्रियता बढ़ाने का प्रभावी माध्यम।

1) शीर्षासन

विधि- घुटनों के बल पर शुरू करें। अपनी कोहनी को ज़मीन पर रखें। हथेलियों और कोहनियों को आपस में जोड़कर एक समबाहु त्रिभुज बनाएं। सिर को अपनी हथेलियों के सामने ज़मीन पर रखें। अब पीठ सीधी होने तक अपने पंजों पर अपने सिर की ओर चलें। एक-एक करके दोनों पैरों को ऊपर उठाकर अपने ऊपरी शरीर के साथ संरेखित करें। सामने एक स्थान की ओर दृष्टि रखें।

लाभ: शीर्षासन आपके शरीर को तुरंत शांत करता है। हाथ और पैरों को मज़बूत बनाता है, साथ ही मस्तिष्क में अधिक रक्त और ऑक्सीजन की आपूर्ति करके, दिमाग़ी क्षमता और स्मरण शक्ति बढ़ाता है।

2) सर्वांगासन

विधि: पीठ के बल लेटें। भुजाएं शरीर के बगल में हों। धीरे से अपने पैरों को ऊपर उठाएं, और फिर अपनी पीठ और अग्रभागों को फ़र्श से ऊपर उठाते जाएं, जितना संभव हो सके। सहारे के लिए कोहनी को नीचे टिकाएं और अपनी हथेलियों को पीठ के नीचे रखें। अपने कंधे, धड़, श्रोणि और पैरों के बीच एक सीधी रेखा बनाएं। दृष्टि पैरों पर केंद्रित रखें।

लाभ: यह आसन थाइरॉयड ग्रंथि को उत्तेजित करता है और इससे मस्तिष्क को अधिक रक्त प्रवाह प्राप्त होता है।

3) भ्रामरी प्राणायाम

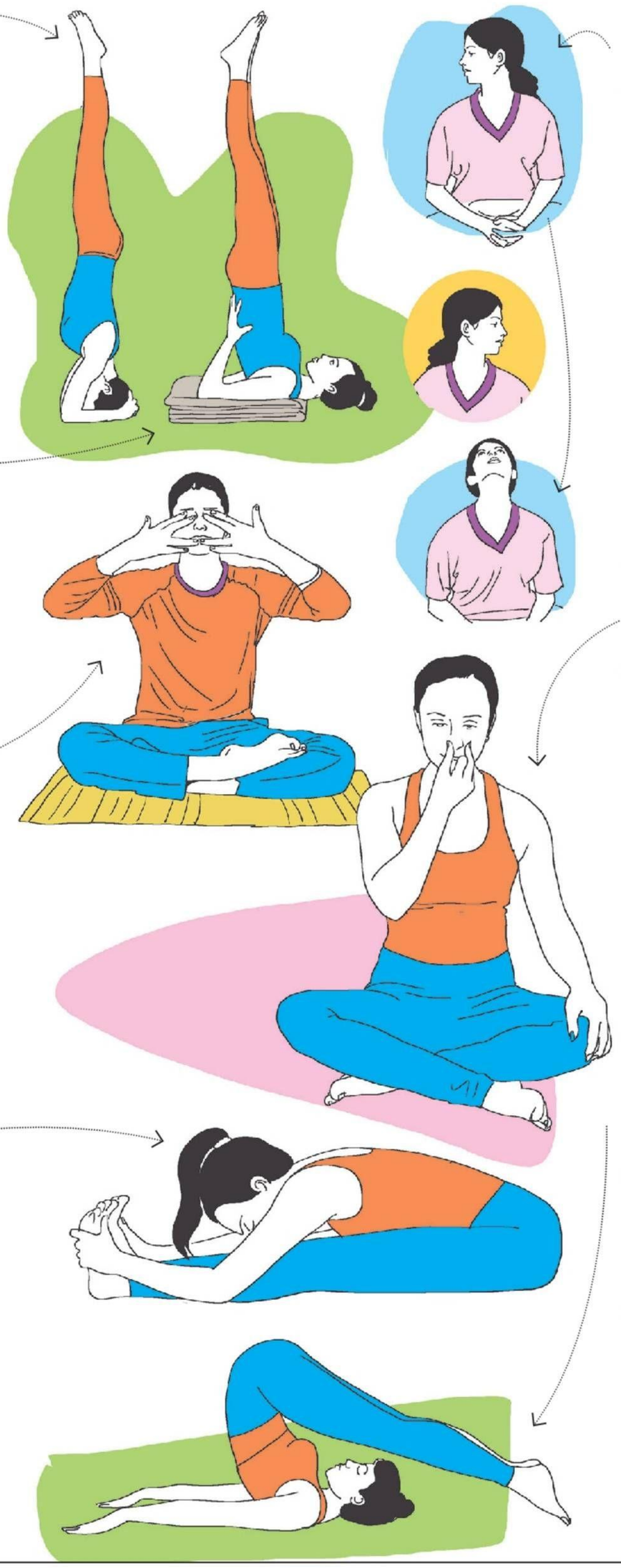
विधि: मधुमक्खी की आवाज़ की नकल करता यह अभ्यास ध्यानपूर्वक सांस लेने और ध्वनि कंपन की चिकित्सीय शक्ति प्रदान करता है। आरामदायक स्थिति में रीढ़ को सीधा करते हुए बैठें। कानों को अंगूठे से बंद करें, आंखों को उंगलियों से ढकें। गहरी सांस लें, फिर मधुमक्खी जैसी ध्वनि उच्चारित करते हुए सांस छोड़ें। भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास सुबह या सोने से पहले शांतिपूर्ण वातावरण में खाली पेट करें।

लाभ: यह प्राणायाम मानसिक तनाव को कम करता है और ध्यान केंद्रित करने में मदद करता है।

4) पश्चिमोत्तानासन

विधि: नीचे बैठें, पैरों को सीधा और घुटनों को थोड़ा मोड़कर रखें। अपनी भुजाओं को ऊपर उठाएं और रीढ़ को सीधा रखें। सांस छोड़ते हुए कूल्हे पर आगे की ओर झुकें और अपने ऊपरी शरीर को निचले शरीर पर रखें। भुजाओं को नीचे करें और अपने हाथ की उंगलियों से अपने पैर की उंगलियों को पकड़ें। साथ ही नाक से अपने घुटनों को छूने की कोशिश करें।

लाभ: यह पूरे शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हुए कूल्हे और कंधे की मांसपेशियों को मज़बूती देकर, उनमें इक्कठे हुए स्ट्रेस को दूर करता है। चिंता के अभाव में मस्तिष्क भी शांत रहता है और ध्यान केंद्रित करने में मदद मिलती है।



5) ब्रह्म मुद्रा

विधि: वज्रासन या पद्मासन जैसी आरामदायक स्थिति में बैठें, अपनी रीढ़ को यथासंभव सीधा रखें। अपना सारा ध्यान गहरी सांस लेने पर रखें। धीरे-धीरे सांस लें और अपना सिर दाईं ओर घुमाएं। सांस छोड़ें और अपना सिर केंद्र की ओर घुमाते हुए 'आह' ध्वनि उच्चारित करें। फिर धीमी सांस लेते हुए अपने सिर को बाईं ओर घुमाएं। सांस छोड़ते हुए, अपना सिर केंद्र की ओर घुमाते हुए 'उउउ' ध्वनि उच्चारित करें। अगली बार धीमी सांस लेते समय अपने सिर को धीरे-धीरे पीछे की ओर झुकाएं, तथा अपनी गर्दन के पिछले हिस्से को लंबा रखें। सांस छोड़ते हुए 'ई' ध्वनि उच्चारित करें और अपने सिर को केंद्र की ओर झुकाएं। अगली बार धीमी सांस लेते हुए सिर को नीचे झुकाएं और अपनी ठोड़ी को अपनी छाती की ओर लाएं। धीरे-धीरे सांस छोड़ते हुए 'म्म्म' ध्वनि उच्चारित करें और अपना सिर वापस केंद्र में लाएं। 3 से 12 बार दोहराएं।

लाभ: यह मुद्रा मानसिक शांति और ध्यान में सुधार करती है।

6) नाड़ी शुद्धि प्राणायाम

विधि : रीढ़ को सीधी करते हुए पालथी लगाकर बैठ जाएं। आंखें बंद करें और अपना बायां हाथ गोद के बीच में आराम से रखें। हथेली खुली हुई हो। अपने दाएं हाथ के अंगूठे और आख़िरी दो उंगलियों का इस्तेमाल करें। पहली दो उंगलियां मुड़ी हुई रहेंगी। अंतिम दो उंगलियां सीधी और एक-दूसरे से जुड़ी रहेंगी। अब अपनी दाईं नासिका को अंगूठे से बंद करें और बाईं नासिका से सांस भीतर लें, सांस पूरी तरह भीतर लेने के बाद उसी नासिका से बाहर छोड़ दें। ऐसे ही अपनी अनामिका उंगली का प्रयोग करते हुए बाईं नासिका को बंद करें और दाईं नासिका से सांस भीतर लें, और उसी से सांस बाहर छोड़ें। इसी अभ्यास को दोहराएं। सांस पूरी तरह से भीतर लें और पूरी तरह से बाहर छोड़ें।

लाभ: यह यौगिक अभ्यास आपकी नाड़ियों को साफ़ करता है। और विचारों में शुद्धि लाकर जीवन में संतुलन प्रदान करता है।

7) हलासन

विधि: बीज बोने के लिए मिट्टी को मथने वाले कृषि यंत्र 'हल' को दर्शाती है यह मुद्रा। पीठ के बल लेटें और अपने दोनों पैरों को ऊपर उठाते हुए सिर के पीछे ले जाएं। अपने पंजों से ज़मीन स्पर्श करने का प्रयास करें। इस मुद्रा में 30-60 सेकंड तक रहें।

लाभ: पीठ में हो रहे तनाव को दूर करके, रीढ़ को मज़बूत बनाता है जिससे आपकी मुद्रा ठीक रहती है। साथ ही मस्तिष्क को शांति और ताज़गी प्रदान करके स्मरण शक्ति में सुधार करता है।

ध्यान रहें- इन सभी योगासनों का अभ्यास योग विशेषज्ञ की देखरेख में करें। साथ ही यदि आपको कोई स्वास्थ्य संबंधी समस्या है तो पहले डॉ. से परामर्श अवश्य लें।

धुएं की दीवार

– सुकेश साहनी

स्नेह की एक लघुकथा कड़वाहट के उपन्यास पर भारी पड़ जाती है।



अमीचंद शीशे के सामने खड़ा होकर पगड़ी बांधने लगा। बंटवारे के बाद वह पहली बार बेलेवालां जा रहा था। उसके मन में आज कोई उत्साह नहीं था। पहले हर महीने वह बेलेवालां के हाट से सबके लिए ज़रूरी सामान लाता था, दुलीचंद और उसके बच्चों के लिए भी। उसने खिड़की के बाहर उदास निगाह डाली। अपने मकान को दो हिस्सों में बांटती दीवार उसके दिल को चीरती चली गई। बंटवारे वाले दिन से उसके और छोटे भाई दुलीचंद के बीच बातचीत बिल्कुल बंद थी।

बाहर दुलीचंद श्यामा गाय को दुहने की तैयारी कर रहा था। बंटवारे में गाय उसके हिस्से में आई थी।

तभी अमीचंद की नज़र अपनी बेटी पर पड़ी। वह हाथ में बड़ा गिलास लिए चुपके से अपने चाचा की ओर बढ़ रही थी। वह चिल्लाकर बेटी को रोकना चाहता था, पर आवाज़ गले में फंसकर रह गई। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

दुलीचंद ने मुस्कराकर अपनी भतीजी की तरफ़ देखा। जवाब में वह भी धीरे से हंसी। दुलीचंद ने उसके हाथ से गिलास ले लिया और झटपट उसे दूध से भर दिया।

अमीचंद एकटक इस दृश्य को देख रहा था। ठीक उसी समय दुलीचंद की पत्नी घर से निकली। उसे पूरा विश्वास था कि बहू उसकी बेटी के हाथ से दूध भरा गिलास छीनकर पटक देगी। न जाने क्या-क्या बकेगी। बंटवारे के समय उसने बहुत झगड़ा किया था।

अमीचंद यह देखकर हैरान रह गया था कि बहू के चेहरे पर हल्की मुस्कान उभरी और कहीं पति दुलीचंद उसे देख न ले, इस डर से तुरंत भीतर चली गई।

अमीचंद की बेटी ने एक सांस में ही दूध का गिलास ख़ाली कर दिया और वापस घर की ओर दौड़ पड़ी।

अमीचंद की आंखें भर आईं। उसे बेहद ख़ुशी हुई, उसको लगा-घर के बीच की दीवार ग़ायब हो गई है। अमीचंद उत्साह से भरा हुआ घर से बाहर आया और अड़ोस-पड़ोस को सुनाता हुआ ऊंची आवाज़ में बोला, 'ओए दुली, मैं बेलेवालां जा रहा हूं। तुम्हें जाने की ज़रूरत नहीं। मैं तुम सबके लिए सामान लेता आऊंगा।'

मां का कमरा

– श्याम सुंदर अग्रवाल

ज़माने का जैसा चलन है, अपेक्षाएं भी वैसी ही होती हैं और दिल ख़ुद को तैयार रखता है।



छोटे-से पुश्तैनी मकान में रह रही बुज़ुर्ग बसंती को दूर शहर में रहते बेटे का पत्र मिला– 'मां, मेरी तरक़्क़ी हो गई है। कंपनी की ओर से मुझे बहुत बड़ी कोठी मिली है, रहने को। अब तो तुम्हें मेरे पास शहर में आकर रहना ही होगा। यहां तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी।'

पड़ोसन को पता चला तो वह बोली, 'अरी रहने दे शहर जाने को। शहर में बहू-बेटे के पास रहकर बहुत दुर्गति होती है। वह करमो गई थी न, अब पछता रही है, रोती है। नौकरों वाला कमरा दिया है रहने को और नौकरानी की तरह ही रखते हैं। न वक़्त से रोटी, न चाय। कुत्ते से भी बुरी जून है।'

अगले ही दिन बेटा कार लेकर आ गया। बेटे की ज़िद के आगे बसंती की एक न चली। 'जो होगा देखा जावेगा' की सोच के साथ बसंती अपने थोड़े-से सामान के साथ कार में बैठ गई। लंबे सफ़र के बाद कार एक बड़ी कोठी के सामने जाकर रुकी।

'एक ज़रूरी काम है मां, मुझे अभी जाना होगा।' कह, बेटा मां को नौकर के हवाले कर गया। बहू पहले ही काम पर जा चुकी थी और बच्चे स्कूल।

बसंती कोठी देखने लगी। तीन कमरों में डबल-बेड लगे थे। एक कमरे में बहुत बढ़िया सोफ़ा-सेट था। एक कमरा बहू-बेटे का होगा, दूसरा बच्चों का और तीसरा मेहमानों के लिए, उसने सोचा। पिछवाड़े में नौकरों के लिए बने कमरे भी वह देख आई। कमरे छोटे थे, पर ठीक थे। उसने सोचा, उसकी गुज़र हो जाएगी। बस बहू-बेटा और बच्चे प्यार से बोल लें और दो वक़्त की रोटी मिल जाए। उसे और क्या चाहिए!

नौकर ने एक बार उसका सामान बरामदे के साथ वाले कमरे में टिका दिया। कमरा क्या था, स्वर्ग लगता था- डबल-बेड बिछा था, गुसलख़ाना भी साथ था। टीवी भी पड़ा था और म्यूज़िक प्लेयर भी। दो कुर्सियां भी थीं। बसंती सोचने लगी- काश! उसे भी कभी ऐसे कमरे में रहने का मौक़ा मिलता। वह डरती-डरती बेड पर लेट गई। बहुत नर्म गद्दे थे। उसे एक लोककथा की नौकरानी की तरह नींद ही न आ जाए और बहू आकर उसे डांटे, सोचकर वह उठ खड़ी हुई।

शाम को जब बेटा घर आया तो बसंती बोली, 'बेटा, मेरा सामान मेरे कमरे में रखवा देता।'

बेटा हैरान हुआ, 'मां, तेरा सामान तेरे कमरे में ही तो रखा है नौकर ने।'

बसंती आश्चर्यचकित रह गई, 'मेरा कमरा ! यह मेरा कमरा!! डबल-बेड वाला!'

'हां मां, जब दीदी आती है तो तेरे पास सोना ही पसंद करती है। और तेरे पोता-पोती भी सो जाया करेंगे तेरे साथ। तू टीवी देख, भजन सुन। कुछ और चाहिए तो बेझिझक बता देना।' उसे आलिंगन में ले बेटे ने कहा तो बसंती की आंखों में आंसू आ गए।

एक ख़ुशबू

– रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

मन उदास हो तो कभी-कभी अपनी ही एक अच्छाई पलटकर उसमें उमंग भर जाती है।



दोनों भाइयों को पढ़ाने-लिखाने में उसकी उम्र के ख़ुशनुमा साल चुपचाप बीत गए। पैंतीस वर्ष की हो गई शाहीन इस तरह से। दोनों भाई नौकरी पाकर अलग-अलग शहरों में जा बसे।

अब घर में बूढ़ी मां है और वह। ख़ूबसूरत चेहरे पर सिलवटें पड़ने लगीं। कनपटी के पास कुछ सफ़ेद बाल भी झलकने लगे। आईने में चेहरा देखते ही शाहीन के मन में एक हूक-सी उठी- कितनी अकेली हो गई है मेरी ज़िंदगी। किस बीहड़ में खो गए मिठास भरे सपने।

भाइयों की चिट्ठियां कभी-कभार ही आती हैं। दोनों अपनी गृहस्थी में ही डूबे रहते हैं। उदासी की हालत में वह पत्र-व्यवहार बंद कर चुकी है। सोचते-सोचते शाहीन उद्वेलित हो उठी। आंखों में आंसू भर आए। आज स्कूल जाने का भी मन नहीं था। घर में भी रहे तो मां की हाय-तौबा कहां तक सुने? उसने आंखें पोंछीं और रिक्शे से उतरकर अपने शरीर को ठेलते हुए गेट की तरफ़ क़दम बढ़ाए। पहली घंटी बज चुकी थी। तभी दीदीजी-दीदीजी की आवाज़ से उसका ध्यान भंग हुआ।

'दीदीजी, यह फूल मैं आपके लिए लाई हूं।' दूसरी कक्षा की एक लड़की हाथ में गुलाब का फूल लिए उसी तरफ़ बढ़ी।

शाहीन की दृष्टि उसके चेहरे पर गई। वह मंद-मंद मुस्करा रही थी। उसने गुलाब का फूल शाहीन की ओर बढ़ा दिया। शाहीन ने गुलाब का फूल उसके हाथ से लेकर उसके गाल थपथपा दिए।

गुलाब की ख़ुशबू उसके नथुनों में समाती जा रही थी। वह स्वयं को इस समय बहुत हल्का महसूस कर रही थी। उसने रजिस्टर उठाया और उपस्थिति लेने के लिए गुनगुनाती हुई कक्षा की तरफ़ तेज़ी से बढ़ गई।

तीन असली ख़ज़ाने



ज़रा ठहरकर देखें तो साफ़ हो जाएगा कि धन-संपत्ति, ओहदा, जुनून, आगे रहने की तमन्ना, ये सब शांति हरने का काम करते हैं।

भले ही दुनिया इन्हीं के पीछे भागती है, लेकिन सबसे दौलतमंद वह है जो शांति प्राप्त करता है। उसके पास तीन असली ख़ज़ाने होते हैं।

— अमृत साधना

ख़ज़ानों का नाम लेते ही याद आते हैं हीरे-मोती, जेवरात, नोटों की गड्डियां और कहीं अतल में छुपाई हुई संपत्ति। इन्हें यक़ीनन बड़ी हिफ़ाज़त से रखना पड़ता है, इन पर पहरा देना पड़ता है। लोगों की नज़रों से बचाना पड़ता है। लेकिन यह ख़ज़ाना नष्ट हो सकता है, चुराया जा सकता है। आंतरिक समृद्धि में इसका कोई उपयोग नहीं है।

गुरु नानक कहते थे, असली संपत्ति वही है जो मौत के पार जा सके। असली ख़ज़ाना वह है। अन्यथा जो भी है वह सब विपत्ति है।

सभी आध्यात्मिक पुरुष यही कहेंगे, क्योंकि वे आर-पार देख सकते हैं। जिसे हम ख़ज़ाना समझते हैं उससे कोई कभी शांत या आनंदित या ज्ञानी नहीं हुआ। उल्टे व्यर्थ की ज़िम्मेदारी बन जाती है। एक बोझ ढोते रहते हैं। मज़े की बात, इसे कोई ख़र्च भी नहीं करता। बस एक ख़्याल होता है कि ज़रूरत पड़े तो काम आएगा। यह धन जीवंत नहीं है, मुर्दा है। ऐसे मुर्दा धन के अंबार सदियों से तलघरों में बंद पड़े रहते हैं।

लाओत्से के स्वर्णिम सूत्र

चीन के संत लाओत्से बड़ी गहरी बात करते हैं। वे कहते हैं-

'तीन ख़ज़ाने हैं; उनकी रक्षा करो और उन्हें सुरक्षित रखो।
पहला है, प्रेम।
दूसरा है, कभी भी अति मत करो।
तीसरा है, दुनिया में कभी भी प्रथम मत बनो।

प्रेम के द्वारा व्यक्ति अभय को उपलब्ध होता है। अति न करने से व्यक्ति के पास बहुत अधिक आरक्षित शक्ति होती है। दुनिया में प्रथम होने का दावा न करने से, व्यक्ति अपनी प्रतिभा को विकसित कर सकता है और उसे परिपक्व होने दे सकता है।

यदि कोई प्रेम और निर्भयता को त्याग देता है, संयम और आरक्षित शक्ति को त्याग देता है, पीछे चलने को त्याग देता है और आगे भागता है तो वह बरबाद हो जाता है!'

आज की जो जीवनशैली है उसमें ये बातें बिलकुल ही उल्टी मालूम होती हैं। हर कोई प्रथम आना चाहता है, पूरी महत्वाकांक्षा से काम करना चाहता है और प्रेम के लिए किसी के पास समय ही नहीं है। लेकिन जो थोड़े समझदार हैं, बाह्य जीवन की व्यर्थताओं से ऊब गए हैं और कुछ सार्थक करना चाहते हैं उनके लिए ये तीन सूत्र नगीने हैं।

प्रेम और संतुलन की दौलत

इसका मर्म तो ओशो के द्वारा समझा जा सकता है : जीवन में सबसे बड़ा चमत्कार प्रेम है, और सबसे बड़ा रहस्य भी।

जब तक आप प्रेम को प्राप्त नहीं करते, आप हमेशा भयभीत रहेंगे। आपके अस्तित्व में एक गहरी उथल-पुथल और भय बना रहेगा। जो गहराई से प्रेम करता है, वह जानता है कि प्रेम मृत्यु है, अहंकार की मृत्यु। लेकिन प्रेम को भावना समझने की ग़लती न करें। प्रेम कोई भावना नहीं है, कोई जज़्बा नहीं है। प्रेम सूक्ष्मतम ऊर्जा है, विद्युत से भी सूक्ष्म। प्रेम सभी ऊर्जाओं का मूल आधार है।

दूसरा है, अति नहीं करना अर्थात संतुलन में रहना। मन स्वभावत: अतियों में डोलता रहता है। प्रेम और घृणा, सुख और दु:ख, सफलता और असफलता। लेकिन जीवन दोनों छोरों से बना है, इसलिए आप किसी एक को छोड़ नहीं सकते। दोनों के बीच संतुलन साधें। यानी जब सुई मध्य में ठहरती है तो आप संतुलित होते हैं। संतुलन से व्यक्तित्व में एक ठहराव आता है। अतियों में डोलते रहे तो चलना बहुत होता है, पहुंचते कहीं नहीं। व्यर्थ की भागदौड़।

अति न करने से व्यक्ति के पास आरक्षित शक्ति का विस्तार होता है। जब आप संतुलित होते हैं तो आपके पास इतनी ऊर्जा होती है कि आप एक ऊर्जा से भरी एक झील बन जाते हैं। साधारणतया ऊर्जा हमेशा कम, निम्नतर होती है। ऊर्जा को संरक्षित किया जाना चाहिए। इसे आपके भीतर एक गहरी झील बन जाना चाहिए।

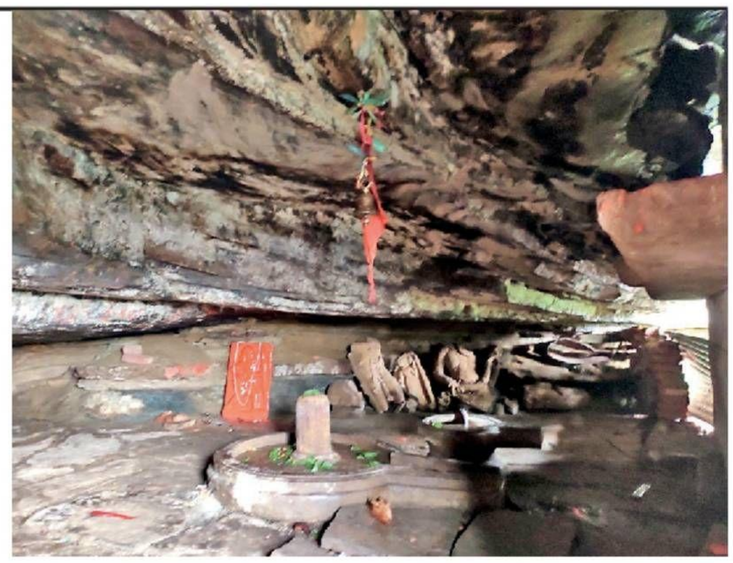
सबसे पीछे रहने का इनाम

तीसरा यह है कि दुनिया में कभी भी प्रथम मत बनो। क्यों? क्योंकि दुनिया में हर कोई प्रथम है, इसका यही अर्थ है। कोई भी आपकी बराबरी नहीं कर सकता, आप अतुलनीय हैं, अद्वितीय हैं। दुनिया में प्रथम होने का दावा न करने से, व्यक्ति अपनी प्रतिभा को विकसित कर सकता है और उसे परिपक्व होने दे सकता है। यदि आप प्रतिस्पर्धा में हैं, दुनिया में प्रथम होने की कोशिश कर रहे हैं तो आप अपने वजूद को पूरी तरह से खो देंगे क्योंकि इसे विकसित होने और परिपक्व होने का कोई समय नहीं होगा। यदि आप प्रतिस्पर्धी और महत्वाकांक्षी नहीं हैं, तो पूरी ऊर्जा आपके अपने अस्तित्व के विकास, परिपक्व होने, खिलने के लिए उपलब्ध है।

तीसरा सूत्र आज के माहौल में एकदम उल्टा मालूम होगा। जहां लोग पहला नंबर पाने की दौड़ में उलझे हैं वहां यह कहना कि अंतिम हो जाओ, कौन सुनेगा? अब इसका राज़ जानिए : अंत में खड़ा होना एक बड़ा राज़ है। क्योंकि जो अंत में खड़ा है वह प्रतिस्पर्धा में उत्सुक नहीं होता। जो अंत में खड़े होने को राज़ी है, दुनिया उसे परेशान भी नहीं करती। उसकी कोई टांग नहीं खींचता। वह पहले ही से अंत में खड़ा है। और कहां गिराओगे? हमने बड़ी फ़ज़ीहत होते देखी है लोगों की जो प्रथम बैठते हैं। सिंहासनों पर जो बैठते हैं, उनकी टांग तो हमेशा कोई न कोई खींच ही रहा है।

तीसरा ख़ज़ाना है लाओत्से का कि महत्वाकांक्षा छोड़ दो, अपना जीवन जियो। आपकी एक नियति है उसे पूरा कर लो। आप दूसरे के जीवन का अनुकरण क्यों करते हो? एक ही रहस्य है अपनी नियति पूरी कर लेने का, उस अर्थ को उपलब्ध हो जाने का जिसके लिए आपने जन्म लिया। वह काव्य, वह गीत, वह नृत्य आप में प्रकट हो जाए।









जलप्रपात जहां हीरे मिलते हैं!

जंगल के बीच छिपे ख़ज़ाने जैसा है यह जलप्रपात। यहां क़ुदरती ख़ूबसूरती की अथाह दौलत तो बिखरी है ही, आसपास असली हीरे भी मिलते हैं।

कथाएं कहती हैं कि यह दुर्गम स्थल समुद्र मंथन, नीलकंठ शिव और वनवासी राम से जुड़ा है। राह में आदिमानव की हज़ारों वर्ष पुरानी चित्रकारी भी है। चलिए, इसी अद्‌भुत लेकिन अनछुई-सी जगह की ओर चलते हैं...



– मुकेश पांडेय 'चंदन'

बक्सर (बिहार) में जन्म। वर्तमान में मध्यप्रदेश के पन्ना ज़िले में आबकारी निरीक्षक के रूप में पदस्थ हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता आदि का प्रकाशन। घुमक्कड़ी के साथ फोटोग्राफी और ब्लॉगिंग में भी सक्रिय हैं।

मध्य प्रदेश के पन्ना ज़िले में मेरी नई-नई पदस्थापना हुई थी। सितंबर का महीना था, प्रकृति ने हरीतिमा की चादर ओढ़ रखी थी। पन्ना शहर के पास ही किलकिला नदी कुंड और कौआ सेहा जलप्रपात बनाती है, उसे देखकर मन आह्लादित था। अपने एक मित्र से जब इन जलप्रपातों की चर्चा की तो उन्होंने इनसे भी बहुत सुंदर जलप्रपात बृहस्पति कुंड के बारे में बताया। अगले रविवार मैंने अपने कार्यालय के दो सहायकों के साथ बृहस्पति कुंड जलप्रपात की यात्रा शुरू कर दी। पन्ना से पहाड़ीखेड़ा मार्ग पर लगभग 36 किमी चलने पर हम ग्राम गहरा के पास बृहस्पति कुंड जलप्रपात पहुंचे। सामने एक मंदिर मिला जहां श्रीराम दरबार स्थापित था, उन्हें प्रणाम किया। वहीं बैठे एक बाबा जी से जलप्रपात के बारे में पूछा तो उन्होंने दाहिनी ओर चट्टानों की तरफ़ इशारा किया। उधर देखा तो धुआं-सा उठ रहा था। हम उसी दिशा में ऊंची-नीची चट्टानों पर बंदरों-से उछलते-कूदते आगे बढ़ रहे थे। आसपास बैठे लाल मुंह के बंदर हमे बड़े आश्चर्य से देख रहे थे कि ये कपड़े पहने, बिना पूंछ के बड़े बंदर कहां से आ गए हैं!

जारी... यायावरी

घोर गर्जना के साथ फैला था धुआं-सा

अब हम धुएं वाली जगह के नज़दीक पहुंचे तो जलप्रपात की आवाज़ तेज़ हो गई और सामने का विहंगम दृश्य देखकर मेरा मुंह खुला का खुला रह गया। लगभग 700 फीट की ऊंचाई से घोर गर्जना के साथ पानी गिर रहा था। तेज़ हवा के कारण कुछ पानी ऊपर उड़ भी रहा था जो दूर से देखने पर धुएं-सा लग रहा था। जलप्रपात की चौड़ाई लगभग 120 फीट थी। इतना अद्भुत और मनोरम जलप्रपात देखकर जो प्रसन्नता हुई वो शब्दों में नहीं लिखी जा सकती है। घोड़े की नाल की आकृति में निर्मित जलप्रपात अति मनोहारी दृश्य का निर्माण कर रहा था। जलप्रपात के दूसरी तरफ़ घने वन की हरियाली परिदृश्य में चार चांद लगा रही थी।

मेरे कार्यालय सहायक रजनीश ने कहा- 'सर नीचे चलें?'

'क्या सचमुच हम नीचे से प्रपात को देख सकते हैं?' अपने आश्चर्य को व्यक्त करते हुए मैंने प्रश्न पूछा।

'सर, बिल्कुल नीचे जा सकते हैं, लेकिन रास्ता थोड़ा कठिन और ऊबड़-खाबड़ है।'

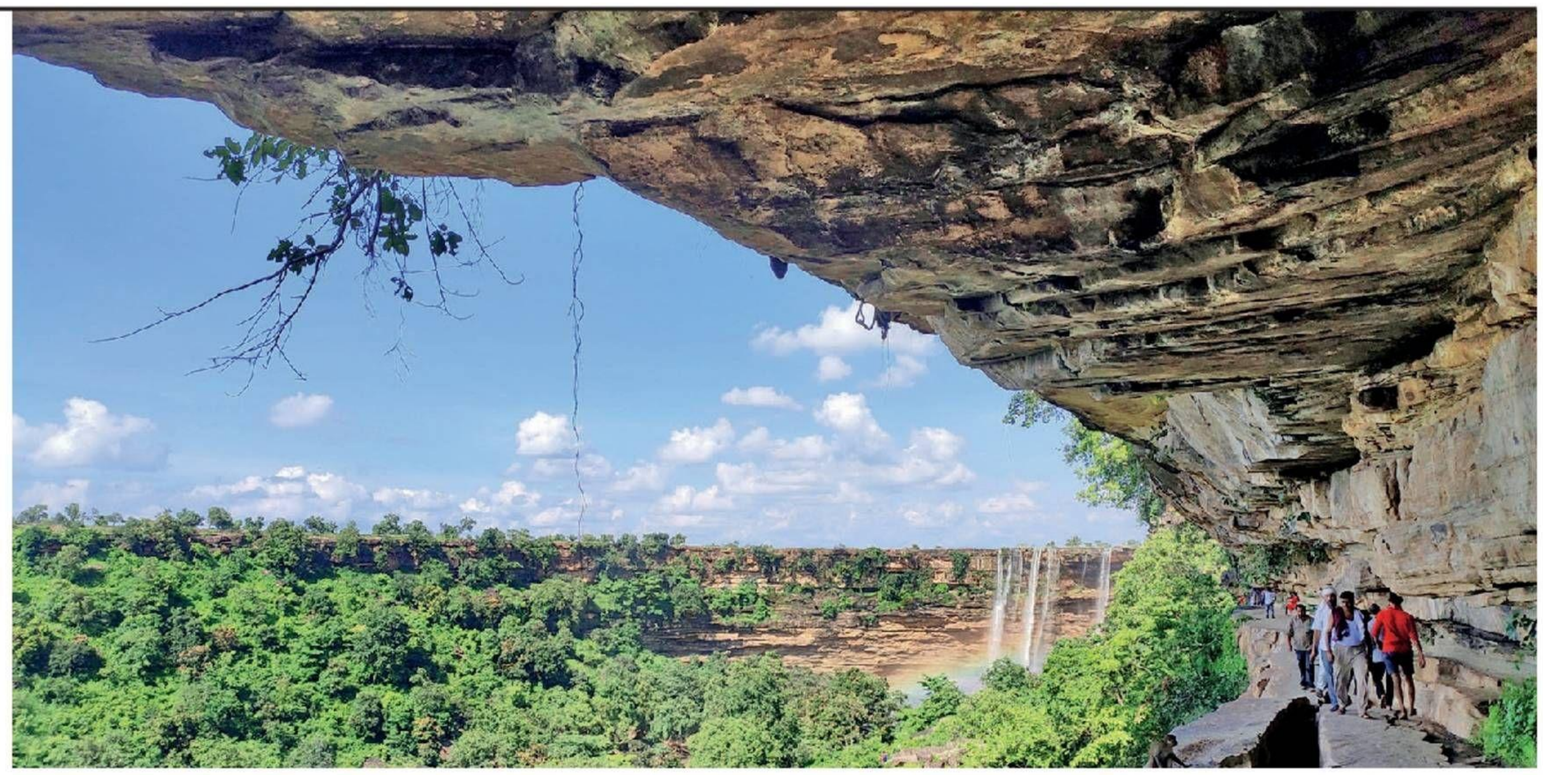
'कोई बात नहीं। चलते हैं, मज़ा आएगा।'

और हम चल पड़े वापस मंदिर की तरफ़। मंदिर के सामने नीचे जाती सीढ़ियों से हम उतरे। ये सीढ़ियां भी काफ़ी पुरानी लगीं। आगे रास्ता कुछ संकरा हो गया। रास्ते में ही एक गुफा मंदिर मिला जिसके बाहर नंदी की एक खंडित मूर्ति थी। यहां सुसज्जित पत्थर के द्वार के पार, अंदर शिवलिंग विराजमान है जो चंदेल कालीन बताया जाता है। यह क्षेत्र आठवीं से 11वीं सदी तक चंदेल शासकों के अधीन रहा। वही चंदेल जिन्होंने विश्व प्रसिद्ध खजुराहो के मंदिर बनवाए थे। ख़ैर, हम भगवान शिव को प्रणाम कर आगे बढ़े।

अब राह सहज रूप से बनी और संकरी तो थी ही, ख़तरनाक भी हो चली थी। कुछ जगह बैठने जितना झुकना पड़ा। दूसरी तरफ़ खाई थी। चलते-चलते एक जगह सर उठाने लायक़ जगह मिली। चट्टानों की ओर देखा तो कुछ लाल रंग की आकृतियां दिखीं। पहले तो सोचा कि आजकल के नवयुवाओं ने अपनी प्रेम कहानी उकेरने की कोशिश की होगी। मगर जब ध्यान से देखा तो विभिन्न प्रकार के वन्य जीव जैसे हिरण, बंदर, बिच्छू, बाघ आदि दिखे। कुछ मानव आकृतियां भी दिखीं। कुछ जगह शिकार का चित्रण तो कुछ जगह नृत्य या उत्सव जैसा। आश्चर्य की बात कि एक जगह तो जिराफ़ जैसा जीव भी दिखा, जबकि भारत में कहीं भी जिराफ़ नहीं पाए जाते। मुझे बाद में पता चला कि ये हज़ारों वर्ष पूर्व आदिमानवों द्वारा बनाए गए शैलचित्र हैं। इनका अभी कोई पुरातात्विक अध्ययन नहीं हुआ है, न ही इनके संरक्षण का कोई कार्य हुआ। जबकि, मध्य प्रदेश में ही भोपाल के पास भीमबेटका में इसी तरह के शैलचित्रों का न केवल संरक्षण किया गया है, बल्कि वह स्थल यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत भी घोषित किया गया है।

पतन में बाघिन नदी का सर्वोत्कृष्ट रूप

बहरहाल, आगे बढ़ते हुए एक कुंड पर पहुंचे जहां चट्टानों से रिसकर आ रहा जल संचित हो रहा था। पानी चखकर देखा तो मिनरल वॉटर-सा स्वाद मिला। वही पानी पीकर कुछ देर सुस्ता लिया। आगे से रास्ता बाएं मुड़ गया। कुछ दूर तक सीढ़ियां बनी हुई थीं। सीढ़ियों की समाप्ति के पहले जब रुके तो दाहिनी ओर जलप्रपात का दृश्य आंखों को सुकून दे रहा था। हरियाली के बीच श्वेत जलप्रपात बहुत आकर्षक लग रहा था। अब सीढ़ियां ख़त्म हो चुकी थीं, रास्ता कुछ समझ नहीं आ रहा था। बस कुछ चट्टानें और हरियाली दिख रही थी। जैसे-तैसे हम पैर जमाते आगे बढ़े। अब प्रपात की आवाज़ नज़दीक आने लगी। कुछ



ही दूरी चलने के बाद हम उसके ठीक सामने थे। हवा के वेग से पानी बूंदों के रूप में उड़कर हमारे तन और मन दोनों को भिगो रहा था। बाघिन या बागै नदी अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में मोह रही थी। यह नदी सारंग धाम स्थित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम से निकलकर आगे उत्तर प्रदेश में यमुना में विलीन हो जाती है।

नीचे कुछ जगह पर गड्ढे खोदकर कुछ मज़दूरनुमा लोग मेहनत कर रहे थे। उनसे बातचीत में पता चला कि ये लोग हीरा खोजने के लिए उथली खदान लगाए हुए हैं। हीरे के लिए पन्ना ज़िला प्रसिद्ध है। पूरे एशिया में हीरे का उत्खनन पन्ना ज़िले में ही होता है। यहां उत्तम कोटि का हीरा पाया जाता है। हीरे की खदान लगाने के लिए कोई भारतीय नागरिक यहां कुछ सौ रुपये में हीरा विभाग से पट्टा ले सकता है। पूरे विश्व में सिर्फ़ पन्ना ज़िले में ही कुछ फुट की खुदाई पर हीरा मिल जाता है। बृहस्पति कुंड के इस स्थान पर भी हीरा मिलता है। हालांकि संरक्षित वन क्षेत्र होने के कारण यहां उत्खनन की अनुमति नहीं है, पर कुछ लोग अवैध रूप से चोरी-छुपे यहां हीरा खोजते हैं। समय-समय पर कार्रवाई भी होती है। तो यह दुनिया का एकमात्र जलप्रपात है, जिसमें हीरा मिलता है। अब हम वापस चढ़ाई चढ़ने लगे। नीचे उतरना जितना कठिन था, उससे ज़्यादा कठिन ऊपर चढ़ना था। बीच-बीच में रुककर हम आगे बढ़ रहे थे।

देवगुरु की तपोभूमि, नीलकंठ का विश्राम स्थल

ऊपर पहुंचकर कुछ देर मंदिर के पास सुस्ताने लगे तो बाबा जी लोटे में जल ले आए। मैंने बाबा जी से इस स्थान के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि इस स्थान का नामकरण देवगुरु बृहस्पति के नाम पर हुआ है। ऐसी कथा मिलती है...

एक बार देवराज इंद्र अपनी सभा में अप्सराओं के नृत्य-गान में मग्न थे, तभी देवगुरु बृहस्पति वहां पहुंचे। बहुत देर देवगुरु के खड़े रहने पर भी इंद्र ने उन पर ध्यान नहीं दिया और न ही कोई आदर-सत्कार किया। देवगुरु ने इसे अपना अपमान समझा और इंद्र को शाप दिया कि तुम्हारा यह वैभव जिसमें तुम इतने मग्न हो, सब तुमसे छिन जाएगा। यह शाप देकर देवगुरु पृथ्वी पर घने वन में एक जलप्रपात के पीछे स्थित गुफा में तपस्या में लीन हो गए। उसी स्थान को आज बृहस्पति कुंड के नाम से जाना जाता है। गुरु के स्वर्ग से ग़ायब होने पर इंद्र की परेशानियां बढ़ गईं। इंद्र ने देवगुरु को बहुत खोजा मगर वे नहीं मिले। यह सूचना दैत्यराज बलि को मिली तो उसने स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। बिना गुरु के इंद्र भी निस्तेज और योजना विहीन हो गए, जबकि बलि के पास दैत्यगुरु शुक्राचार्य का कुशल मार्गदर्शन था। फलस्वरूप बलि ने इंद्र को सातों अंग (राजा, मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग, राजकोष, स्वर्ण और मित्रवर्ग) से पराजित कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। अब दैत्यराज बलि को स्वर्ग तो मिल गया था, परंतु रत्न आदि स्वयमेव समुद्र में वापस चले गए। तब बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य से इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि रत्नों को वही पा सकता है, जिसने 100 अश्वमेध यज्ञ किए हों। इस पर बलि चुप हो गया। इधर श्रीहीन होकर इंद्र गुरु की तलाश में इधर-उधर भटक रहे थे। देवर्षि नारद के परामर्श से इंद्र भगवान विष्णु की शरण में गए तो भगवान ने उन्हें दैत्यों से मित्रता करने का सुझाव दिया। जब इंद्र राजा बलि के पास पाताल लोक पहुंचे तो उनकी दशा देखकर बलि को दया आई। बलि ने इंद्र की मित्रता स्वीकार कर ली। बलि ने इंद्र से रत्न प्राप्ति का उपाय पूछा तो इंद्र ने समुद्र मंथन करके पुनः रत्न प्राप्ति की योजना बताई।

तभी आकाशवाणी हुई कि क्षीर सागर का मंथन करने के लिए मंदराचल पर्वत को मथानी और वासुकी नाग को रस्सी बनाओ। आगे की समुद्र मंथन की कथा सर्वज्ञात है। समुद्र मंथन में जो हलाहल विष निकला था उसे महादेव ने अपने कंठ में धारण किया था और नीलकंठ कहलाए। बृहस्पति कुंड से मात्र 20 किमी की दूरी पर कालिंजर दुर्ग में भगवान नीलकंठ का अति प्राचीन मंदिर है, जहां पर आज भी भगवान शिव की प्रतिमा का कंठ हमेशा गीला रहता है। ऐसी लोक मान्यता है कि यह स्थान समुद्र मंथन से जुड़ा है और भगवान शिव ने विषपान के बाद इसी जगह पर गुफा में विश्राम किया था। उसी गुफा में आज नीलकंठ मंदिर बना हुआ है।

यह भी मान्यता है कि रामायण काल में अपने वनवास के दौरान भगवान श्रीराम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट से दक्षिण की ओर गमन करते हुए बृहस्पति कुंड के पावन स्थान पर आए थे।

बाबा जी से जब मैंने इस स्थान के विकास के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि वर्तमान में सरकार की महत्वाकांक्षी योजना श्रीराम वन गमन पथ में बृहस्पति कुंड को भी जोड़ा गया है।

पास ही बैठे एक स्थानीय पत्रकार ने बताया कि वर्तमान में मध्य प्रदेश पर्यटन बोर्ड द्वारा बृहस्पति कुंड क्षेत्र में सुरक्षा हेतु रेलिंग सहित पर्यटकों के लिए मूलभूत सुविधाओं को विकसित किया जा रहा है। मध्य प्रदेश के पहले ग्लास ब्रिज का निर्माण कार्य भी यहां प्रारंभ हो गया है। आने वाले दिनों में पर्यटक शीशे के पुल पर खड़े होकर जलप्रपात के ठीक सामने से चारों ओर का नज़ारा देख पाएंगे। इसके साथ ही जलप्रपात के जल को आगे एक स्टॉपडैम के माध्यम से रोके जाने की योजना है, जिससे नौकायन के माध्यम से भी पर्यटक नीचे से जलप्रपात को देख सकेंगे।

बेशक, सुविधाएं बढ़ने से पर्यटक बढ़ेंगे और उनका आनंद भी बढ़ेगा और हम भी यहां बार-बार आना चाहेंगे। लेकिन दुर्गम प्राकृतिक पथ पर चलते हुए प्रपात तक पहुंचने में जो आनंद मिला, वह अनूठा और अविस्मरणीय है।



डेट

प्रेम और लगाव वैसे तो सघन भावनाएं हैं, परंतु कई बार दिल के भीतर इतनी गहराई में होती हैं कि उनके होने का पता दिल वालों को भी नहीं होता।

उन्हें सामने लाने के लिए ज़रूरत होती है एक अप्रत्याशित 'डेट' की...



– संगीता माथुर

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में 300 से अधिक कहानियां छप चुकी हैं। दो कथा-संग्रह 'इंद्रधनुष के रंग' और 'गोल्डल जुबली' प्रकाशित। कई कहानियां पुरस्कृत हुई हैं। यात्रा वृत्तांत और नाटक भी लिखे हैं। कोटा, राजस्थान में निवास।

किसी ने अचानक आकर पीछे से आंखें बंद कीं तो मान्या चौंक गई। 'अरे अतुल भैया आप, बहुत दिनों बाद आना हुआ!'

'वह तो ठीक है, पर मैं यह क्या सुन रहा हूं मेरी छुटकी-सी बहन के लिए ज़ोर-शोर से लड़का देखा जा रहा है। तेरे तो मन में लड्डू फूट रहे होंगे?'

'काहे के लड्डू भैया? मेरा तो सोच-सोचकर दिल बैठा जा रहा है। एक नितांत अपरिचित इंसान के साथ ज़िंदगीभर के लिए बांध दिया जाएगा।' मान्या उदास और परेशान थी।

'तो तू ही बता दे उस परिचित इंसान का नाम जिसके साथ बंधना चाहती है।'

'कोई हो तब तो बताऊं!'

'तेरी समस्या मेरी समझ से परे है। ख़ुद तुझे कोई पसंद है नहीं। घर वालों की पसंद पर तुझे एतबार नहीं है।'

'ऐसी बात नहीं है भैया। दरअसल पढ़-लिखकर नौकरी करते हुए मेरी सोच तो प्रगतिशील हो गई है। जाने-परखे बिना, सोच मिले बिना मैं ऐसे ही किसी से शादी नहीं कर पाऊंगी। पर मैं इतनी आधुनिक भी नहीं हुई हूं कि अपने लिए लड़का खोजकर उसके साथ फुर्र हो जाऊं।'

'हूं, बख़ूबी समझ रहा हूं। अनंत जैसी ही स्थिति है तेरी भी, राम मिलाई जोड़ी!'

'क्या मतलब! यह अनंत कौन है?'

'ख़ास दोस्त है मेरा। इन दिनों उसे भी ऐसी ही स्थिति से गुज़रना पड़ रहा है। घर वाले बहू लाने के लिए पीछे पड़े हुए हैं, रिश्ते पर रिश्ते सुझा रहे हैं, लड़कियों के फोटो दिखा रहे हैं, पर वह पूरी तरह से श्योर हुए बिना किसी लड़की को देखने के लिए तैयार ही नहीं है। कहता है इस तरह किसी को एक नज़र देखकर पत्नी के रूप में कैसे पसंद या नापसंद किया जा सकता है!'

'वही तो!' मान्या ने सहमति जताई।

कहानी... डेट... जारी...

‘मैंने उसे एक डेटिंग एप से जोड़ दिया था कि बातचीत कर ख़ुद पसंद कर ले। लेकिन उसने तो चार दिन में ही हाथ जोड़ दिए- भाई मेरे बस का नहीं है यह सब! इतना खुलापन, फ्लर्टिंग! मैं तो कुंवारा ही भला।’

‘मैंने भी सहेलियों के सुझाने पर मैट्रिमोनियल साइट पर प्रोफाइल बनाई थी। ढेरों प्रपोज़ल आ गए थे। मैंने कुछ शॉर्ट लिस्ट भी किए। पर सबसे एक साथ कैसे कनेक्ट रहूं? मेरी भी तो भावनाएं हैं। सब मुझे पसंद कर रहे थे, पर प्रेम कौन करता है यह कैसे पता करूं?’

‘एक्सक्यूज़ मी, पसंद करने और प्रेम करने में भला क्या फ़र्क है?’

‘जब आपको फूल अच्छा लगता है आप उसे तोड़ लेते हैं। पर जब आप उससे प्रेम करते हैं तो उसे रोज़ पानी देने लगते हैं।’

अतुल अवाक रह गया था।

‘...फिर सहेलियों से ही पता चला कि उनमें से दो तो फ्रॉड ही थे। मैंने तो हाथ जोड़ दिए। अपनी प्रोफाइल ही डिलीट कर दी। घर वालों की चिंता समझती हूं। पर शादी जैसे नाज़ुक मामले में फूंक-फूंककर क़दम उठाना चाहती हूं। भुगतना तो मुझे ही होगा ना!’

‘सही है। जहां तक मैं देख और समझ पा रहा हूं, मुझे लग रहा है तुम और अनंत एक-दूसरे के लिए सर्वथा उपयुक्त जीवनसाथी साबित होगे।’ मान्या शरमा गई।

अतुल ने उसे अनंत के संबंध में आवश्यक जानकारी दी। और बाद में अनंत को भी अपनी चचेरी बहन मान्या के संबंध में सबकुछ बता दिया। इतना ही नहीं एक तारीख़ और समय नियत कर शहर के सुप्रसिद्ध मॉल में उनकी फर्स्ट ‘डेट’ भी फिक्स कर दी।

मन ही मन उनकी डेट की सफलता की कामना करते हुए अगली ही सुबह अतुल ने उत्सुकता से दोस्त अनंत को फोन घुमा दिया। ‘क्यों बच्चू, बज गई ना दिल में घंटी! तभी तो दोस्त के फोन की घंटी सुनाई नहीं दे रही है। तीसरी बार में फोन उठाया है तूने!’

‘रातभर मच्छरों ने सोने नहीं दिया। अभी तड़के ही आंख लगी थी, इसलिए घंटी सुनाई नहीं दी।’

‘मोबाइल की घंटी को छोड़। अपने दिल की घंटी की बात कर जो कल रात से टनाटन बजे ही जा रही है।’

‘जैसे तू ख़याली घोड़े दौड़ा रहा है, वैसा कुछ नहीं हुआ यार! मॉल की कृत्रिम ठंडी हवा, बनावटी वातावरण में हम दोनों भी बनावटी मुस्कान चस्पा किए घूमते रहे। कपड़ों और जूतो के शोरूम की क़तारें देखते, टटोलते रहे। ना उसे कुछ लेना था, ना मुझे। जब उकता गए तो पेटपूजा के लिए रेस्तरां में जाकर बैठ गए। उससे पूछा क्या ऑर्डर करूं तो उसने कहा कुछ भी। ना वह फूडी है ना मैं। फिर भी बात करने के उद्देश्य से मैंने कहा कि मुझे पनीर की डिशेज़ अच्छी लगती हैं तो उसने स्टार्टर में पनीर टिक्का और मेन कोर्स में शाही पनीर ऑर्डर कर दिया। खाने के दौरान एक-दूसरे के शौक़ और घर-परिवार के बारे में बात की। बस यही कुछ हुआ।’

अतुल का चेहरा लटक गया। पर फोन पर वह चहकता रहा, ‘अरे तो फर्स्ट डेट में इससे ज़्यादा क्या होगा? ग़ौर करो, तुम दोनों में कितनी समानताएं मिल गईं। उसे भी शॉपिंग का शौक़ नहीं है और तुम्हें भी नहीं है। उसे भी पनीर पसंद है और तुम्हें तो है ही।’

‘हूं!’ फोन रखते वक्त अनंत सोच रहा था शायद अतुल सही कह रहा है। दोस्त को सांत्वना देकर अतुल ने बहन को फोन किया तो उधर भी मायूसी ही पसरी मिली। ‘भैया, मुझे तो पूरे टाइम यही डर सताता रहा कि कहीं कोई परिचित न टकरा जाए। अभी भी आशंका है कि किसी ने हम दोनों को साथ देख तो नहीं लिया था।’

अतुल ने दोस्त को दिए हुए तर्क ही बहन के सामने भी परोस दिए।



दो दिन बाद ही उसने दोनों की अगली डेट की व्यवस्था कर दी थी। ‘मल्टीप्लेक्स में कोने वाले दो रीक्लाइनर्स बुक किए हैं तुम दोनों के लिए। रोमांटिक मूवी का भरपूर लुत्फ़ लेना!’ दोनों को सूचित कर अतुल ने निश्चिंतता भरी सांस ली।

अगले दिन छुट्टी थी तो वह सवेरे ही अनंत के घर जा पहुंचा। अकेले में मौक़ा पाकर उसने दोस्त का हाथ दबा दिया, ‘कैसी रही फिल्म?’

‘अरे बहुत मज़ेदार! कुछ देर देखने के बाद ही मैंने मान्या को बता दिया कि यह ‘डार्क हॉर्स’ उपन्यास पर आधारित है। उसने कहा कि यह ‘फैलियर एंड सक्सेस’ नॉवल पर बेस्ड है। इंटरवल में हमने गूगल पर सर्च किया तो पता चला हम दोनों सही थे।’

‘वह कैसे?’ अतुल रोमांस की बात भूलकर इस नई पहेली का हल जानने को उत्सुक हो उठा। डार्क हॉर्स के लेखक ने फैलियर एंड सक्सेस के लेखक पर केस कर रखा है कि उसने उसका प्लॉट चुराया है। उस केस का अभी निपटारा ही नहीं हुआ है कि एक तीसरे महानुभाव ने उस पर यह फिल्म बना डाली है। है ना मज़ेदार बात?’

‘हं... हां। और कुछ बात हुई दोनों में?’

‘हां, हमें यह तो पता चल ही गया था कि दोनों को पढ़ने का शौक़ है।’

अतुल का मन हुआ सिर पीट ले। ‘आप दोनों की विशुद्ध साहित्यिक मित्रता को प्रणाम। मैं चलता हूं कुछ ज़रूरी काम याद आ गया है।’

अतुल ने सोच लिया था अब वह उनके क्या किसी के फटे में टांग नहीं डालेगा। पर सप्ताह बीतत-न-बीतते उसका भ्राता प्रेम और सखा भाव फिर उमड़ पड़ा। इस बार उसने अनंत को मान्या को लॉन्ग ड्राइव पर ले जाने के लिए मनाया। ‘रास्ते में रोमांटिक गाने सुनते जाना। देखना, लौटने तक तुम दोनों के दिल की घंटी ज़रूर बज जाएगी!’

‘पर मेरे पास कार है कहां?’

‘अरे मेरे अमीर बाप की चार-चार गाड़ियां किस दिन काम आएंगी? सनरूफ वाली कार ले जाना। अच्छा इंप्रेशन पड़ेगा।’

इस बार डेट का नतीजा जानने की पहल अतुल को नहीं करनी पड़ी। अनंत ख़ुद ही गाड़ी लौटाने आ गया था। ‘एक बार चेक कर ले, बाहर जाकर। कोई खरोंच, डेंट तो नहीं है।’ चाबी लौटाते हुए उसने खुन्नस से कहा।

‘अरे कैसी बात कर रहा है? डेंट छोड़, डेट कैसी रही?’

‘भाई तू हमें हमारे हाल पर छोड़ दे। जो होना होगा, हो जाएगा। पहले तो शहर से निकलने में ही पसीने आ गए। इतना ट्रैफिक और पॉल्यूशन! ऊपर से दोस्त की नई गाड़ी को ठुकने से बचाने का प्रेशर! मान्या ने एक-दो बार बतियाने की कोशिश की, पर फिर मुझे प्रेशर में देख अपना मोबाइल स्क्रॉल करने लगी। उसी ने सर्च करके बताया कि जिस सुदूर रमणीक क़िले पर हम जाने वाले थे वहां पहुंचते-पहुंचते क़िले के बंद होने का टाइम हो जाएगा, इसलिए गाड़ी मोड़ लेने में ही भलाई है। तो लौट के बुद्धू घर को आ गए!’

इस सबके बाद अतुल की ना मान्या से मिलने की हिम्मत हुई, ना फिर अनंत से।

•••

मान्या और अनंत को मिले लंबा वक़्त गुज़र गया था। दोनों एक-दूसरे की कमी महसूस कर रहे थे और अपने संबंधों का विश्लेषण भी। मान्या सोच रही थी कि अनंत ने कभी कहा नहीं, पर एक ख़ूबसूरत रिश्ता हवा की तरह होता है- ख़ामोश मगर हमेशा आसपास। दस्तक और आवाज़ तो कानों के लिए होती है। जो दिल को सुनाई दे उसे ख़ामोशी कहते हैं। अनंत किताबों में पढ़ा हुआ दोहरा रहा था- लड़की जब प्यार में होती है तो अपने दिल से देखती है और आंखों से अनुभव करती है। तो क्या मान्या उसके प्यार में है?

सोच में डूबी मान्या ऑफिस से निकल रही थी कि उसके मोबाइल पर एक अपरिचित नंबर से कॉल आया। सामने वाले ने बताया कि गूलर लेक के पास कालबा रोड पर अनंत का एक्सीडेंट हो गया है। वह घायल अवस्था में सड़क पर पड़ा है। मान्या कुछ पूछ पाती इससे पूर्व फोन कट गया। विक्षिप्त-सी मान्या ने तुरंत पास से गुज़रती कैब पकड़ी और दुर्घटना स्थल पर पहुंच गई। उसने पूरी रोड छान मारी, किंतु अनंत का कहीं अता-पता न था। अनंत तो छोड़ो, उसे कहीं दुर्घटना के चिह्न भी नज़र नहीं आ रहे थे। इक्का-दुक्का गुज़रते लोगों से उसने पूछा तो वे भी अनभिज्ञता जताकर निकल गए। अब मान्या का माथा ठनका। किसी ने उसे फंसाने के लिए जाल तो नहीं बिछाया है? घबराई मान्या ने अनंत को फोन लगाया। वह भी ऑफिस से निकलकर बाइक स्टार्ट ही कर रहा था।

‘कहां हो तुम?’

‘ऑफिस से निकल रहा हूं। क्या हुआ, इतनी घबराई हुई क्यों लग रही हो?’

मान्या ने तुरंत सारा वाक़या बयान कर दिया। सुनकर अनंत भी परेशान हो गया। ‘ज़रूर किसी ने तुम्हें फंसाने का प्रयास किया है, मैं जल्द से जल्द वहां पहुंच रहा हूं। तब तक तुम चौकस रहना।’

‘मुझे भी ऐसा ही लग रहा है कि कोई मुझ पर नज़र रखे हुए है।’ मान्या ने फुसफुसाते हुए कहा। ‘पर थैंक गॉड, तुम सकुशल हो। मैं यहीं तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूं।’

प्यास से मान्या का गला सूख रहा था। उसे पता था 10 मिनट के कच्चे रास्ते पर ही झील है। पर इस समय उसे यहीं बने रहना था। एक-एक पल एक-एक युग की तरह बीत रहा था। अनंत के बाइक रोकते ही मान्या दौड़कर उससे लिपट गई। एक-दूसरे को सकुशल पाकर दोनों की आंखों से आंसुओं की झड़ी बह चली। दोनों को महसूस हो गया था कि एक-दूसरे की ज़िंदगी में उनकी कितनी अहमियत है। वे एक-दूसरे को कितना चाहने लगे हैं।

पसीने और धूल से लथपथ अनंत मान्या को किसी राजकुमार से कम नहीं लग रहा था। अभी तक दोनों अपनी मुलाक़ातों में सजे-संवरे, परफ्यूम की ख़ुशबू उड़ाते आए थे। लेकिन एक-दूसरे के प्रति इतना आकर्षण दोनों पहली बार अनुभव कर रहे थे।

‘यहां पास ही लेक है। वहीं चलते हैं। मेरा भी कब से गला सूखा जा रहा है,’ कहते हुए मान्या ने लपककर अनंत का हाथ पकड़ा और कच्चे रास्ते पर बढ़ चली। अब उसे किसी का भय नहीं था। मंत्रमुग्ध-सा अनंत भी उसके साथ हो लिया। अल्हड़ बयार ने मान्या का दुपट्टा एक झाड़ी में उलझा दिया तो अनंत ने बेहद आत्मीयता और दुलार से उसे सुलझाकर निकाला।

दूर से दोनों पर नज़र रख रही एक जोड़ी आंखें भी अब तृप्त होकर बरसने लगी थीं। इस पूरे घटनाक्रम का सूत्रधार डेटिंग के इस सिलसिले को अंततः एक कामयाब मक़ाम तक पहुंचाने में सफल हो ही गया था।

नवकी बहुरिया का सिनेमा





– अतुल कुमार राय

साहित्यकार, फिल्म पटकथा और संवाद लेखक। 19 फरवरी 1992 को बलिया ज़िले के ग्राम भुइली में जन्म। पहले उपन्यास 'चांदपुर की चंदा' के लिए 2023 में साहित्य अकादमी का युवा पुरस्कार मिला है। फिलहाल मुंबई में निवास।

बात तब की है जब वीसीआर मंगाने के लिए बाक़ायदा योजना बनती थी, फिर फिल्मों के नाम पर मंथन होता था जो कभी-कभी वाद-विवाद और मान-मनुहार में तब्दील हो जाता था। उन्हीं दिनों का यह दिलफ़रेब क़िस्सा पढ़ते हुए आपको याद आएगा कि तब फिल्म देखना क्यों उत्सव सरीखा आनंददायक हुआ करता था!

आम के दिनों में सरेआम मार खाने का सुख याद करने बैठूं या आम के बाग़ीचे में झूला झूलते हुए टहनी के टूट जाने का दुःख? गिल्ली-डंडा के लिए मैदान खोजने की जद्दोजहद याद करूं या या बिना बिजली के शक्तिमान देखने के लिए प्रयोग में लाई गई अवैध शक्ति को याद करूं? आंखों के सामने सतरंगी यादों का एक ऐसा सुंदर लैंडस्केप बनके उभरता है, जहां उजले आंसू भी मोती जान पड़ते हैं, जहां रोना भी संगीतमय लगता है। जहां खेलना भी ध्यान बन जाता है, जहां हंसना भी एक आध्यात्मिक अनुभव लगता है।

बात बस उन्हीं बचपन के दिनों से शुरू होती है। कक्षा पांचवीं पास करके हम छठी में जाने की तैयारी कर रहे थे। स्कूल खुलने में मुश्किल से दस-बारह दिन ही बचे थे। गर्मी इतनी थी कि छांव भी छांव मांग रही थी और पानी को भी प्यास लग रही थी। जानवर से लेकर आदमी और चिरई-चुरूंग तक सबके हलक सूख रहे थे। सुबह होते ही दोपहर हो रही थी और शाम होते ही ट्यूशन वाले सर आ जाते थे।

इधर बाग़-बाग़ीचे-फुलवारी में बड़े-बुज़ुर्गों का क़ब्जा था। हम ग़लती से अगर बाग़ीचे में चले जाते तो ग्लोबल वॉर्मिंग को नहीं, हम बच्चों को गर्मी बढ़ने का सबसे बड़ा कारण माना जाता। फुलवारी से निकलकर अगर हम जवानों के पास जाते तो उनको लगता कि उनके प्रेम प्रसंग की ख़बर पूरे गांव में लीक करने के पीछे हमीं लोगों का हाथ है। वो भी हमें भगा देते।

इस दुर्दिन में हम कहीं के नहीं रहे थे। हमें ये एहसास हो चुका था कि धोबी के गधे भी हमसे मज़े में जी रहे हैं। कम से कम वो घाट जाकर पानी में नहा तो सकते हैं, हम तो बिना आज्ञा केट्यूबवेल पर भी नहीं जा सकते हैं।

इस अतिरंजित हालत में ले-देकर हमारे पास दूरदर्शन का ही सहारा था। वही हमारे लिए दवा था और वही रोग भी। सुबह उठकर आम खाने के बाद टीवी के सामने बैठकर बिजली आने के लिए पूजा-पाठ शुरू करना पड़ता। एक आदमी की ड्यूटी एंटीना ठीक करने और उसे तेज़ हवा से बचाने के लिए लगाई जाती। उसे बताया जाता कि भाई एंटीना अगर हिल गया तो रंगोली को कृषि दर्शन में बदलने में एक सेकंड की भी देर नहीं होगी।

एक दिन गांवभर की बिजली हाफ़ हो चुकी थी। छत पर लटका पंखा मंद गति से खटर-पटर करता हुआ बता रहा था कि बच्चों, अब क्या, अब तो एक हफ़्ते में स्कूल खुलने वाला है। फटाफट तैयारी करो। तब तक अचानक लो वोल्टेज की समस्या ठीक हो गई। हम टीवी की तरफ़ भागे, और टीवी खोलते ही हमारे सबसे प्यारे साथी दूरदर्शन ने एक धमाकेदार सूचना दी- बच्चो, इस रविवार को हम दिखाने जा रहे हैं..!

हम सबकी आंखें चौड़ी हो गईं। क्या आ रहा है भाई? हमने देखा, साक्षात शाहरुख़ ख़ान टीवी स्क्रीन पर नाच रहे हैं। तनिक और ध्यान से देखा तो पता चला शाहरुख़ नहीं बाज़ीगर है। जो जीत के हार जाए उसे बाज़ीगर कहते हैं।

'क्या संडे को बाजीगर आ रही?' मझली भाभी जो अभी नैहर से दहेज में टीवी लेकर आई थीं, उन्होंने झट से पूछ दिया।

हमने कहा, 'हां, यही तो दुःख की बात है भाभी कि बाजीगर आ रही है, वरना हम सब तो सनी देओल की फिल्म का इंतजार कर रहे थे।'

भाभी ने कहा, 'अरे तो हम न इंतजार कर रहे थे शाहरुख की फिल्म का। भगवान ने हमारी सुन ली है। अब आएगा मजा।'

'आंय! मजा आएगा? हमें तो कत्तई नहीं आएगा।'

'काहे, काहे नहीं आएगा मजा, एक नंबर की फिल्म है, डीडीएलजी हमने चार बार देखी है। बाजीगर देखिए तो, कैसे नहीं आता है मजा?'

हमने भाभी से कहा, 'ऐसा है भाभी जी, हम हैं बच्चे लोग। हमें 'हे सिमरन' कहने वाला शाहरुख उतना नहीं भाता, जितना ये ढाई किलो के हाथ वाला सनी देओल भाता है। आपको देखना है तो देखिए हम लोग अब जा रहे हैं।'

भाभी ने कहा, 'जल्दी निकलिए, कमरा खाली करिए।'

हम सब कमरे से बाइज़्ज़त निकल तो आए लेकिन शाहरुख़ का दिल टूटने से पहले हमारा दिल टूट जाने की ये पहली घटना थी। हाय रे! हमारे सनी देओल आपकी की ऐसी बेइज़्ज़ती!

हम चारों में से सबसे छोटे चंडाल बबलू ने ख़ालिस नास्तिक होते हुए कहा, 'इसलिए हम भगवान-वगवान पर भरोसा नहीं करते। आज एक हफ़्ते से मनौती कर रहे हैं कि हे प्रभु जिद्दी या घायल डीडी वन पर आ जाए, लेकिन ये क्या! आ गया बाजीगर? अब लो देखो, सारी औरतें घेरकर बैठ जाएंगी।'

हम तीन आस्तिकों का मुंह श्रद्धा से नीचे गिर गया। 'चलो तब, सांप-सीढ़ी खेल लेते हैं। का करेंगे। ये इतवार भी बर्बाद चला गया।'

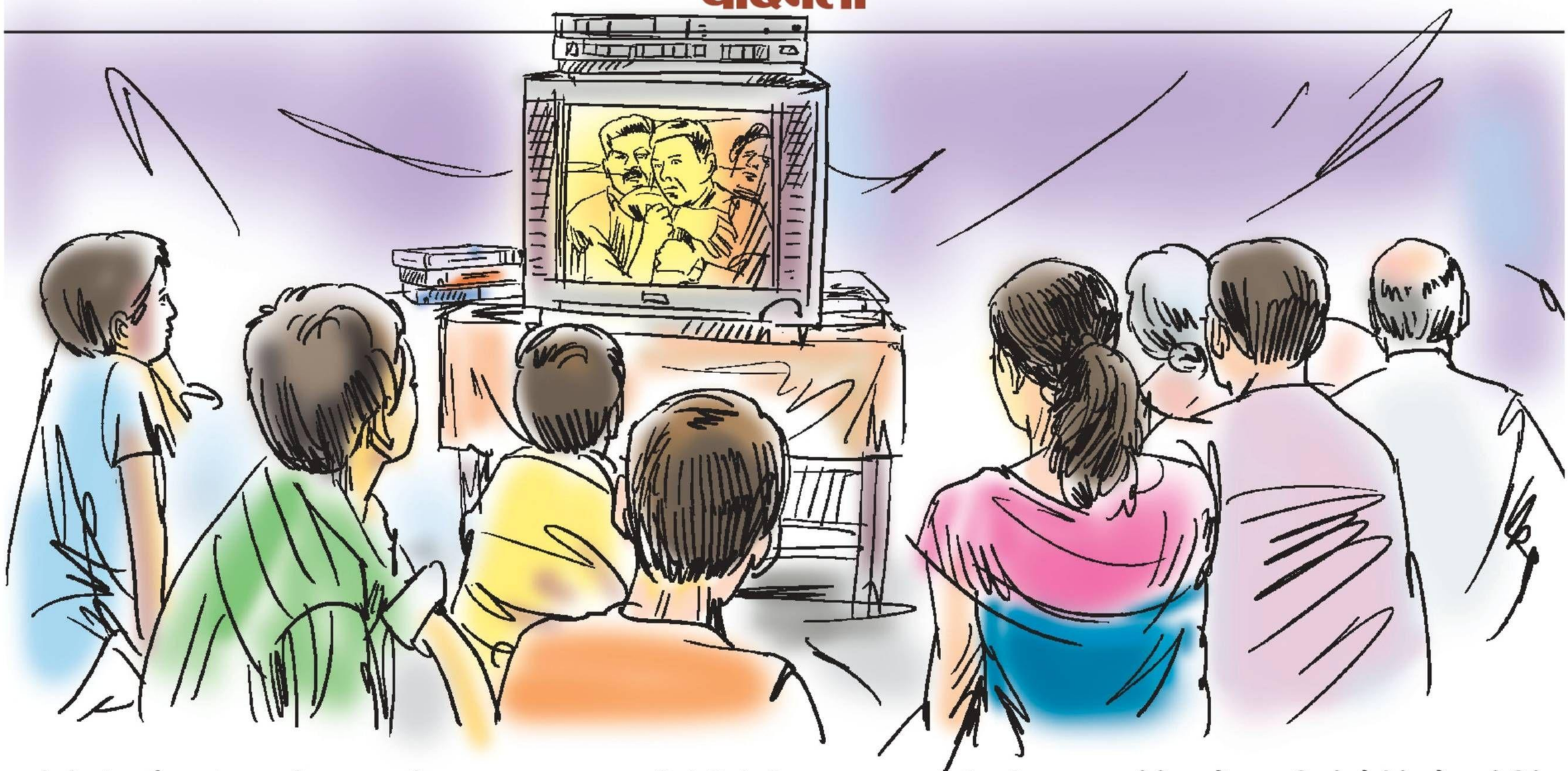
बबलू ने कहा, 'है कोई जगह खेलने की? चार बज रहा है। अब तो मान लो कि भगवान नहीं होते।' इतना कहते ही आसमान में ज़ोर की हवा उठी और गर्जना के साथ आसमान में ख़ूब बड़ा प्रकाश फैल गया।

चंडाल चौकड़ी के चंदन ने कहा, 'लगता है, भगवान बुरा मान गए भाई। इसलिए कहता हूं, भगवान को उल्टा-सीधा मत कहो। सुन लिए तुम्हारी बात, नाराज हो गए, आ गई आंधी और बारिश। अब भुगतो!'

देखते ही देखते बिजली कड़कने लगी। मूसलधार बारिश। थोड़ी देर में पता चला कि गर्मी से राहत तो मिल गई है, लेकिन गांव का ट्रांसफार्मर फुंक गया। पंद्रह दिन बिजली नहीं आएगी।

अब बड़ी समस्या है कि मन कैसे लगेगा जी? अपनी तो क़िस्मत ही ख़राब है? हमने तो कैरम खेल लिया, कॉमिक्स पढ़ लिया। छत पर सांप-सीढ़ी खेलते-खेलते सीढ़ी से गिरकर पैर में चोट भी लगवा ली। संडे को बाज़ीगर भी झेल ही लेते, लेकिन ये ट्रांसफार्मर?

यादगली... नवकी बहुरिया का सिनेमा... जारी...



दोस्तो, ट्रांसफार्मर का फुंकना हमारे ऊपर हुआ सीजन का पहला वज्रपात था। चंडाल चौकड़ी के वरिष्ठ चंडाल अनुज बाबू उर्फ़ लोटन ने सकारात्मकता का संदेश देते हुए कहा, 'भाई, ट्रांसफॉर्मर फुंक गया तो क्या, छुट्टी को बेकार नहीं जाने दिया जाएगा। गुल्लक फोड़कर वीसीआर मंगाते हैं और मनपंसद फिल्म देखते हैं।'

नई-नवेली भाभी जी ने हमारे इस प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा कि अगर वीसीआर पर सबसे पहले बाजीगर चलेगी तो मैं आप लोगों को पचास रुपया दे सकती हूं।

'अच्छा, और देखेंगे कहां? कहीं जगह बची है जो देखेंगे?'

भाभी ने कहा, 'यहीं, रात को आंगन में सारे लोग इकट्ठा होकर देख लेंगे। बाबा-दादी भी आ जाएंगे।'

प्रस्ताव तो सुंदर था। बड़ा-सा रंगीन टीवी, ढेर सारे फिल्मों के कैसेट्स। वीसीआर। बैटरी। न बिजली जाने का झंझट और न ही दूरदर्शन पर प्रचार देखने की मजबूरी। 'भाई वीसीआर मंगाते हैं, मजा ही आ जाएगा!'

कहते हैं, हर राग में कुछ विकृत स्वर होते हैं। पिंटू जी ने भाभी के प्रस्ताव का 'असमर्थन' करते हुए सरकार गिरा दी और कहा, 'अगर वीसीआर आया तो सबसे पहले दिलवाले, घायल, बॉर्डर, जीत और बेताब चलेगा, वरना कुछ नहीं चलेगा।'

भाभी ने अपनी ज़िद और बेताबी बढ़ाते हुए कहा, 'तब वीसीआर नहीं आएगा। तुम लोग जहां मन करे देखना है देखो। यहां पहले चलेगा तो बस बाजीगर, वरना बाबा से कहकर जय संतोषी मां लगवा दूंगी।'

इस धमकी के बाद हम सबका दिल घायल हो गया। ऐसा लगा कि अब ज़िद छोड़ देने में ही भलाई है। हमारे सखा मनुज ने कहा, 'हटाओ यार, हटाओ, संडे को भाड़े पर बैटरी मंगाते हैं और डीडी पर बाजीगर ही देख लेते हैं। भले सनी देओल वाला मजा नहीं है, लेकिन कोई इतनी भी खराब फिल्म नहीं है। वो क्या है कि टीवी वाले हमेशा मार-पीट तो नहीं दिखा सकते, सरकार कहती है समाज बिगड़ता है। इसलिए बीच-बीच में मारपीट रोककर थोड़ा प्यार, मोहब्बत भी देखते रहना जरूरी है।'

मनुज की बात ने हम पर असर किया। इच्छाओं के अनंत पहाड़ पर चढ़कर गर्मी से हार चुका मन रविवार को बाज़ीगर देखने के लिए बेचैन होने लगा। उंगली पर गिनकर देखा- कुल पांच दिन थे। इन दिनों इंजीनियर बन चुके रवि ने सवाल किया, 'ये बताओ, संडे को बैटरी मिल जाएगी न?'

'बिलकुल मिलेगी, तुम दस रुपया दो, हम अभी बुक करके आते हैं।'

बहरहाल, गिनते-गिनते रविवार आ गया। शाम को तीन बजे से ही टीवी घेरकर हम सब बैठ गए। फटाफट बैटरी लाई गई। बैटरी आने से जिसे सबसे ज़्यादा ख़ुशी हुई वो हमारी भाभी जी थीं। उन्होंने कहा, 'अबकी बार लुधियाना से भइया आएंगे तो चूड़ी, बिंदी, टिकुली, सेनूर नहीं, सबसे पहले एक बैटरी और चार्जर ही मंगाएंगे हम।'

पिंटू ने कहा, 'रमन की भाभी तो गुल्लक तोड़कर बैटरी खरीदी हैं। आप भी काहे नहीं खरीद लेती हैं?'

भाभी ने कहा, 'उ हमसे चार साल पहले ब्याहकर आई थी... ठीक है? जल्दी से बैटरी लगाकर बाजीगर दिखाओ, बवाल न बतियाओ!'

बैटरी लगी, लेकिन हम देख रहे हैं, बाज़ीगर फिल्म तो नहीं आ रही, विज्ञापन आ रहा है। और विज्ञापन आते-आते अचानक टीवी की स्क्रीन छोटी होने लगी और टीवी से एक अजीबोग़रीब आवाज़ आने लगी, जिसका मतलब ये था कि भैया अब बैटरी को निकालो, क्योंकि ये ख़ुद चार्ज नहीं है।

टीवी के सामने बैठे घर के बड़े-बुज़ुर्ग और बच्चों का सारा करेंट उड़ गया। ये बैटरी वाला लल्लन तो ठग दिया रे! ये तो बड़ा बेईमान आदमी है। इसकी दुकान पर अब बैटरी लेने कभी नहीं जाना है।

सबके चेहरे लटक गए। एक ठंडा सन्नाटा पसर गया। ट्रांसफार्मर तो फुंक ही गया था, बैटरी भी डिस्चार्ज हो गई।

चलो अब गुल्ली-डंडा ही खेलते हैं। हम सब मुंह लटकाकर बाहर निकलने लगे। तभी हमारी नई-नवेली भाभी ने हमें देखा और प्यार से बुलाकर पांच सौ का नोट देते हुए कहा, 'जाइए वीसीआर लाइए, आज फिल्म जरूर चलेगा।'

हाय, इस एक शब्द को सुनकर ऐसा लगा जैसे उजड़े चमन में बहार आ गई हो, तपते रेगिस्तान में बारिश हो रही हो।

गांव के पश्चिम टोले में हम चार लोग उसी समय वीसीआर वाले के पास दौड़कर भागे। भागने की स्पीड अगर उसैन बोल्ट देख लेते तो शरमा जाते।

हमने वीसीआर वाले के पास जाकर कहा, 'जिद्दी, घायल, बेताब, गदर, जानवर...'

चंडाल चौकड़ी के पिंटू ने कहा, 'ये मत भूलो कि पैसा नई वाली भाभी ने दिया है, बाजीगर भी लेना पड़ेगा। हं तो बाजीगर ले लो।'

वीसीआर वाले भैया से बाज़ीगर ले ली। उनकी बैटरी तो थी ही। देखते ही देखते पूरे टोले में ये ख़बर फैल गई कि ट्रांसफार्मर उड़ जाने के ग़म में आज शक्ति बो भौजी के सौजन्य से सिनेमा चलेगा।

आस-पड़ोस की हर औरत ने जल्दी-जल्दी भोजन बना लिया। चाचा-पापा टाइप के लोगों के लिए अलग से कुर्सी मंगाकर बैठने के लिए ऐसा सिटिंग अरेंजमेंट करना पड़ा, ताकि गांव की स्त्रियां सिनेमा देखते समय असहज न हो जाएं।

बहरहाल, वो घड़ी आ गई जिसका हमें बेसब्री से इंतज़ार था। वीसीआर वाले भैया ने कहा, 'अगरबत्ती जलाइए... और बताइए, कौन सिनेमा पहले चलेगा?'

दादी ने कहा, 'पहले तो रामायण चलेगा।' बाबा भी इस बात से सहमत थे। बड़की मम्मी ने कहा, 'नदिया के पार लगा दो।' एक बुद्धिजीवी क़िस्म के चाचा ने कहा, 'गाइड लगा दो, वही ठीक रहेगा।'

देखते ही देखते सारे लोग अपनी अपनी पसंद थोपने लगे। मामला घूम-फिरकर फिर नई वाली भाभी के पास गया।

'अरे नवकी बहुरिया का मन है न जी सिनेमा का, वो जो कहेगी वही सिनेमा चलेगा।'

अब गेंद उनके पाले में थी। हम सब बच्चे ये जानते हुए कि फिल्म तो बाज़ीगर ही पहले चलेगी, उनकी तरफ़ देखने लगे। पांच मिनट का सन्नाटा रहा। फिर भाभी ने बड़ी देर तक सोचकर कहा, 'कोई सनी देओल की फिल्म लगा दो भइया।'

हाय! इतना बड़ा त्याग!! हम बच्चे भाभी के चरण में गिर पड़े। टीवी पर शुरू हुई फिल्म घायल... और आसमान में बारिश।

उस बारिश में ट्रांसफार्मर जल जाने और बैटरी के डिस्चार्ज हो जाने से घायल पड़े मन को घायल देखकर जो आराम मिला, आज उसके लिए शब्द नहीं हैं।

बीस साल पीछे की ये सब बातें अब किसी दूसरे ज़माने की लगती हैं। आज चंडाल चौकड़ी मुंबई, पुणे, बेंगलुरू में शिफ्ट हो चुकी है। भाभी भी इंस्टाग्राम पर रील्स बनाती हैं। हमारे गांव के लड़के न अब सिनेमा देखने के लिए बैटरी मंगाते हैं और न ही वीसीआर, अब उनका जीवन ही रील्स में सिमटकर एकाकी बन चुका है।

इस भागते हुए एकाकीपन में उस ठहरे हुए दौर को बेमतलब का याद करते रहना क्यों ज़रूरी है, ये बहस का विषय है। लेकिन उन दिनों की याद, आज आत्मा के किसी कोने में जल रहे वक़्त को ठंडा करती है और दिल कहता है... अभावों से भरा, बचपन का वो सतरंगी संसार सच में कितना सुंदर था!

हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहीं ठौर

महर्षि वेदव्यास का प्राकट्य दिवस है गुरु पूर्णिमा।

उन्हीं की ज्ञान-परिधि में घूमते हैं वेद, पुराण, महाकाव्य और हम मानव।

यह पर्व संसार के सारे सद्गुरुओं को समर्पित है।

गुरु के प्रति समर्पण में जीवन की सफलता है तो उनका अनादर और उनसे छल मृत्यु का द्वार है।

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर प्रस्तुत हैं वेदव्यास कृत महाभारत से गुरु माहात्म्य की जीवन-सूत्रदायी रोचक कथाएं।



– डॉ. विवेक चौरसिया

लेखक पौराणिक साहित्य के अध्येता हैं। परिवार में जीवन मूल्य और नई पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के प्रति आग्रही हैं। दैनिक भास्कर में 20 वर्ष सेवा के बाद अब स्वतंत्र लेखन।

सनातन संस्कृति के अनंत और असीम शब्दकोश में सर्वाधिक पूजनीय शब्द है 'गुरु'। यह दो अक्षरों का संयोग है। पहला गु और दूसरा रु। गु का अर्थ है अंधकार और रु का अर्थ है दूर करने वाला। इस संदर्भ में जो अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर प्रकाश रूपी ज्ञान प्रदान करता है वह गुरु है। जब किसी मनुष्य पर ईश्वर की असीम कृपा होती है तब उसे किसी योग्य और सामर्थ्यवान गुरु की प्राप्ति होती है। गुरु की महिमा इतनी अपार है कि शास्त्रों में उसे ईश्वर के भी ऊपर प्रतिष्ठित किया गया है। संसार सागर को पार कराने वाली एक ही नौका है जिसका संबोधन गुरु है। हमारा तन विष की बेल है और गुरु इस तन में व्याप्त अज्ञान के विष को समाप्त करने वाला अमृत है। इसलिए कहा गया है कि शीश देकर भी गुरु मिले तो इस सौदे को सस्ता समझना चाहिए। महाभारत में गुरु के सदा आदर और सेवा को मनुष्य का सर्वोत्तम धर्म कहा गया है। शांतिपर्व में लिखा है कि 'ऋषयश्च हि देवाश्च प्रीयंते पितृभि: सह। पूज्यमानेषु गुरुषु तस्मात् पूज्यतमो गुरु:।।' अर्थात, गुरु की पूजा करने पर देवता, पितृ और ऋषियों सहित सब प्रसन्न होते हैं। अतः गुरु परम पूजनीय हैं। सदैव उनका पूजन करना चाहिए।

जन्म से अंत तक की महाभारत में गुरु

यों तो भारतीय संस्कृति में माता-पिता को भी गुरु माना गया है, किंतु विशेष रूप से गुरु वह है जिससे हम विद्यालय या गुरुकुल में ज्ञान प्राप्त करते हैं। वैसे तो हर दिन गुरु की वंदना का दिन है, किंतु हिंदू पचांग में आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा केवल गुरु पूजा को समर्पित की गई है। इसके केंद्र में वेद अर्थात ज्ञान शास्त्रों का संपादन और विस्तार कर ज्ञान का प्रसार करने वाले महर्षि वेदव्यास हैं।

लोक मान्यता है कि इसी तिथि को महर्षि वेदव्यास का प्राकट्य हुआ था। महाभारत सहित अनेक पुराणों की रचना कर उन्होंने अपना सारा जीवन सद्ज्ञान के प्रचार को समर्पित कर दिया अतः वे सर्वश्रेष्ठ गुरु हैं।

वे समूची ज्ञान परंपरा के प्रतीक हैं अतः उनको केंद्र में रखकर लोक अपने-अपने गुरुओं की पूजा कर उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रति अपनी कृतज्ञता तथा आदरांजलि अर्पित करता है। इस आस्था और विश्वास के साथ कि पूजन से प्रसन्न हुए गुरु के आशीर्वाद से उसकी संसार यात्रा सुगम एवं जीवन सफल व सार्थक हो जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन जन्म से अंत तक एक महाभारत है और संसार कुरुक्षेत्र है। जो सादर सद्गुरु का आश्रय लेते और उनसे सीखकर धर्मसम्मत आचरण और व्यवहार करते हैं वे इस जीवन संघर्ष में विजयी होते हैं। इसके उलट जो गुरु का अनादर करते हैं, उनके प्रति कृतज्ञ नहीं रहते और शिक्षा के प्रतिकूल आचरण व व्यवहार करते हैं वे जीवन की महाभारत में पराजित हो जाते हैं।



शिष्य ऐसा जो सुख-दुःख में समभाव रखे

महाभारत के शांतिपर्व में गुरु उपदेश की एक सुंदर कथा है। इसके अनुसार एक बार जाजलि नाम के एक महान महर्षि जब तपस्यारत थे तो उनकी जटाओं में पक्षियों के एक जोड़े ने घोंसला बना लिया। मादा ने कुछ समय बाद अंडे दिए तो जाजलि यह सोचकर अपने स्थान से न हिले कि कहीं अंडे गिर न जाए। कुछ समय बाद अंडे से चूजे निकले और उनके उड़ने योग्य होने के बाद सारे पक्षी उड़ गए। जाजलि को तब अहंकार हो गया कि पक्षियों की रक्षा के लिए उन्होंने स्वयं को इतना साधा कि हिले तक नहीं। तब आकाशवाणी हुई कि यह अहंकार उचित नहीं है। हर स्थिति में समभाव रखना चाहिए। हे महर्षि! यह कैसे रखा जाता है, इसे सीखने के लिए तुम वाराणसी जाकर तुलाधार से उपदेश ग्रहण करो। तब जाजलि वाराणसी पहुंचे तो पाया कि तुलाधार एक वैश्य था और एक छोटी-सी किराने की दुकान चलाता था। जाजलि ने उसे 'गुरु' मानकर उससे उपदेश की प्रार्थना की। शांतिपर्व में कोई सौ श्लोकों में तुलाधार का महर्षि जाजलि को दिया गया विस्तृत उपदेश है जिसका भावार्थ है कि ज्ञान या तपस्या का अहंकार नहीं करना चाहिए। तुलाधार का कहना था कि सामान तौलते हुए मैंने जीवन में सुख-दुःख को तौलना भी सीख लिया। अतः जो ऐसा करना सीख जाता है वह न ही सफलता में अति हर्षित होता है और न ही असफलता में विचलित। सार यह कि गुरु केवल शिक्षा ही नहीं देते बल्कि वह ज्ञान देते हैं जो हमारे जीवन को सन्मार्ग की ओर रूपांतरित कर दे। ऐसी जीवनदृष्टि प्रदान करके जो जीवन के हर उतार-चढ़ाव में हमारे चित्त को स्थिर रखे। तनिक भी विचलित न होने दे।

निष्काम समर्पण से मिलता है गुरुज्ञान

महाभारत में आचार्य द्रोण कौरव-पांडवों दोनों के गुरु थे। सौ कौरव, पांच पांडव, युयुत्सु, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न और शिखंडी सहित कोई 110 शिष्यों ने एक ही गुरु से शिक्षा ली किंतु क्या कारण है कि एकमात्र अर्जुन ही तत्कालीन विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन पाया? इस प्रश्न का उत्तर शेष सहपाठियों की तुलना में गुरु के प्रति अर्जुन का पूर्ण समर्पण और सेवा है। महाकाव्य के आदिपर्व की कथा है कि हस्तिनापुर स्थित अपने गुरुकुल में राजकुमारों की शिक्षा आरंभ के पहले दिन आचार्य द्रोण ने सब विद्यार्थियों को एकत्र कर कहा कि जिस दिन तुम्हारी शिक्षा पूरी होगी, उस दिन मैं तुम्हें एक आज्ञा दूंगा। तुम सभी को उसका पालन करना होगा। मेरी इस कामना के बारे में तुम्हारा क्या विचार है? दरअसल द्रोण की वह इच्छा पांचाल नरेश द्रुपद को पकड़कर उनके सम्मुख लेकर आने संबंधित थी, क्योंकि द्रुपद ने मित्र होकर भी द्रोण का अपमान किया था। कथा कहती है कि द्रोण के प्रश्न पर सारे राजकुमार चुप रहे मगर एकमात्र अर्जुन ने आगे बढ़कर कहा, 'हे गुरुदेव! जब भी आपकी जो आज्ञा होगी, मैं उसे पूरा करूंगा।' बस इस एक उत्तर ने द्रोण का हृदय जीत लिया। उन्होंने न केवल उस घड़ी अर्जुन को गले लगाया बल्कि योजनाबद्ध उसके व्यक्तित्व निर्माण में अपने पुत्र अश्वत्थामा से अधिक ऊर्जा लगाई। भविष्य में उसके संभावित प्रतिस्पर्धी एकलव्य से अंगूठा मांगकर अर्जुन की राह निष्कंटक की, सो अलग। एक बार जब गंगा स्नान के समय एक मगर ने द्रोण का पैर पकड़ लिया तो किशोर अर्जुन ने ही बाण से मगर को मारकर गुरु की जीवनरक्षा की थी। इससे प्रसन्न होकर द्रोण ने अर्जुन को ब्रह्मास्त्र तक दे दिया था। सार यह कि सर्वथा गुरु की आज्ञा का पालन गुरु के प्रति पूर्ण और निष्काम समर्पण है और रक्षा एक प्रकार की सेवा है। यह भाव केवल अर्जुन में था अतः गुरु कृपा से एकमात्र अर्जुन ही महारथी अर्जुन बन सका।

गुरु से झूठ बोलने पर मिला शाप

महाभारत में कर्ण के गुरु परशुराम थे। अर्जुन को ब्रह्मास्त्र मिल जाने के बाद उसके प्रतिस्पर्धा रखने वाले कर्ण ने द्रोणाचार्य से स्वयं को ब्रह्मास्त्र की शिक्षा देने की प्रार्थना की। द्रोण के मना करने पर कर्ण महेंद्र पर्वत स्थित परशुराम के आश्रम पहुंचा और अपने वर्ण का ग़लत परिचय देकर उनका शिष्य बन गया। ब्रह्मास्त्र के लोभ में झूठ बोलकर उसने परशुराम से ब्रह्मास्त्र का उपदेश प्राप्त कर लिया।

शांतिपर्व की जगप्रसिद्ध कथा है कि एक दिन आश्रम में परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे तभी एक भंयकर कीड़े ने कर्ण को डंक मारा। अलर्क नामक वह आठ पैरों और तीखे दांतों वाला कीड़ा था जिसके डंक से कर्ण का रक्त बह निकला मगर गुरु की निद्राभंग न हो, अतः कर्ण उसकी पीड़ा को सह गया। जब कर्ण के रक्त बहाव से परशुराम की नींद टूटी तो वे क्रोधित हो उठे। उन्हें संदेह हुआ- कर्ण ने स्वयं को जिस वर्ण का बताया था, उसमें इतना धैर्य संभव नहीं कि इतनी पीड़ा सहता रहे और प्रतिकार न करे। तब परशुराम ने कर्ण से उसका वास्तविक परिचय पूछा और उत्तर में कर्ण ने स्वयं को सारथी की संतान बताया।

इस पर परशुराम ने शाप दिया कि 'तूने झूठ बोलकर शिक्षा प्राप्त की है अतः रणभूमि में जब तुझे इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होगी, यह विस्मृत हो जाएगी। यही हुआ भी। महायुद्ध में अर्जुन के साथ द्वैरथ युद्ध में ऐन घड़ी कर्ण शापवश ब्रह्मास्त्र का उपदेश भूल गया और मारा गया। सार यह कि गुरु के समक्ष किसी भी स्थिति में असत्य नहीं बोलना चाहिए। गुरु सर्वज्ञ होते हैं। एक दिन सत्य उनके सामने आ ही जाता है। तब कर्ण की तरह बारंबार मांगी गई क्षमा भी उनके शाप से रक्षा नहीं कर पाती।

राह मिले जो रत्न पड़े गुरु से बढ़कर नाहीं

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी आजीवन ब्रह्मचारी और बचपन से ही ज्ञानपिपासु थे। पिता वेदव्यास ने उन्हें यथासंभव ज्ञान दिया था और आगे अधिक, विशेषकर मोक्षशास्त्र के अध्ययन हेतु अपने यजमान मिथिलापति जनक के पास भेजा। वेदव्यास ने सावधान किया कि शुकदेव मिथिला तक के मार्ग और स्थानों में आकर्षण से बचें और जनक का आदर करें। यह कथा अनेक पुराणों और उपनिषदों तक में विविध रूपों में प्राप्त है। महाभारत के शांतिपर्व की कथा अनुसार शुकदेवजी पिता से आज्ञा लेकर पदयात्रा करते हुए मिथिला आए। मार्ग में एक स्थान पर उन्हें रत्नों का ढेर दिखा मगर उनके मन में केवल ज्ञान प्राप्ति की ही एकमात्र अभिलाषा थी अतः वे रत्नों की उपेक्षा कर आगे बढ़ गए। जनक के राजमहल के द्वार पर द्वारपालों ने उन्हें डांटकर रोका मगर वे शांत रहे। उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए जनक ने तीन दिन प्रतीक्षा कराने के बाद भेंट की तब भी शुकदेवजी सहज शांत, धैर्य धरकर प्रतीक्षा करते रहे। तब कहीं जाकर जनक ने प्रसन्न होकर उन्हें मोक्षशास्त्र का अपेक्षित उपदेश दिया और कहा कि 'गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते।' अर्थात, गुरु ही इस संसार सागर से पार उतारने वाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान ही नौका है। इस प्रकार गुरु से ज्ञान लेकर शुकदेवजी पुनः पिता के पास लौट आए। यह प्रतीक कथा है जो सिखाती है कि ज्ञान के लिए धैर्य रखना पड़ता है। अधीर व्यक्ति अधूरा ज्ञान पाता है जो अज्ञान से भी अधिक ख़तरनाक है। और यह भी कि जब ज्ञानार्जन लक्ष्य हो तो सांसारिक चमक-दमक में नहीं फंसना चाहिए। अन्यथा ज्ञान पाने का अवसर खो जाता है। तब तो राह में मिले रत्नों की भी वैसे ही अनदेखी श्रेष्ठ है जैसे शुकदेवजी ने कर दी थी।



वृक्ष बिना नर न्यून

ऊंचे, हरे-भरे और विनम्रता से झुके दरख़्तों को देखता हूं तो लगता है कि वर्षा की प्रार्थना में उठाए गए धरती के हाथ हैं वृक्ष। इस प्राणवायु के देव ने छाया से लेकर माया तक, न जाने क्या-क्या प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से देकर हमें उपकृत किया है।

तरुवर जितना सगा मानव का अन्य कोई नहीं है, इसलिए इस देव की स्थापना और उसके नित्य जल अर्पण में ही मानवमात्र की भलाई निहित है।

- पद्मनाभ

जारी... शब्दहार

मुझे सामान्यतः पेड़ों के, पौधों के, पुष्पों के, लताओं के नाम मालूम नहीं होते। प्रचलित वृक्ष जैसे नीम, पीपल, बरगद, बबूल, जाम, आम, अशोक आदि से तो भली-भांति परिचय है, लेकिन अमलतास, हरसिंगार, शतपुष्पी, सप्तपर्णी, मौलश्री, पलाश जैसे सौंदर्यपूरित नाम धरने वाले फूल, पेड़, पौधों की पहचान न के बराबर है। हां, कभी आंखों के सामने से गुज़रे भी हों, तो किसे पता!

पेड़ के पर्यायों में भी वृक्ष, झाड़-झंखाड़, तरु, दरख़्त के आगे ठहराव आन पड़ता है। नव बसाहटों ने हमारी आंखों और प्रकृति की दूरी बहुत बढ़ा दी है, तब भी स्वयं को प्रकृति का हिस्सा मानने वाली हमारी संस्कृति के संस्कार स्वत: उभरकर आते रहे।

छुटपन में दौड़ते-भागते कोहनी-घुटना छिलने पर स्वप्रेरणा से ही नीम की छाल घिसकर मल लेते थे। छोटी माता, बड़ी माता के दाने जब शरीर पर निकले तो नीम के पानी से नहाना अपरिहार्य था। नीम की निंबोली से कई खेल हो जाते थे। फ़ारसी में नीम का अर्थ होता है आधा, जिससे बना 'नीम हकीम ख़तरा-ए-जान', यानी अधकचरा ज्ञान रखने वाला हकीम जान के लिए ख़तरा है। बहरहाल, मीठे नीम को इधर कढ़ी पत्ता कहते हैं, जिसकी डाल तोड़ लेने पर कोई बुरा नहीं लगाता था। इस पत्ते के बिना कढ़ी, जैसे बिन दूल्हा बरात! यदि रात के भोजन में कढ़ी बनना है तो शाम के पहले पत्ते तोड़ लेना अपरिहार्य था, क्योंकि शाम के बाद सुषुप्त वृक्षों को छूकर जगाना अक्षम्य है।

जाम यानी अमरूद का पेड़ सामने वाले घर में था, इसलिए उसके पत्तों, बीज, कीड़े, चिकनी छाल की छुअन और गंध अंतस में गहरे पैठी है। पीपल के पत्तों में हम हनुमानजी और गणेशजी की छाया देखते थे। पीपल की उपयोगिता का शीर्ष यह है कि श्रीकृष्ण ने स्वयं को वृक्षों में अश्वत्थ यानी पीपल कहा है और महात्मा बुद्ध को भी पीपल की छाया में ही बोध हुआ था।

सुरजन या सहजन की फली का पेड़ घर के पीछे था, जिसकी छाया में पिछला कमरा दूसरे कमरों से कम तपता था। उसकी फलियों का स्वाद न केवल अनेक नातेदारों ने चखा बल्कि बांधकर भी ले गए। मामा के गांव में बबूल की गोंद इतनी खाई कि जी ख़राब हो गया। शेष गोंद से चिपकने वाली गोंद बनाने की नाकाम कोशिश भी हुई थी। इस गोंद को कितना सुंदर नाम मिला है- वृक्षस्नेह।

पड़ोस के घर के बाहर अनार का पेड़ था। अनार के भाव सदा आसमान पर रहते हैं, लिहाज़ा, उसे किसी के तोड़ लेने पर झगड़ा होना नई बात न थी। इसी अनार के निकट एक सुगंध का पेड़ भी था, जिसके भूमि पर झरे फूल सर्द सुबहों में बेतहाशा महकते थे। मेरी समझ ने उसे इस तर्क पर रातरानी नाम दिया था क्योंकि उसके फूल रात में झरते थे। बहुधा विचारता था कि रात में इसके फूल कैसे बारिश की तरह झरते होंगे और चांदनी में उनका सौंदर्य! पर यह दृश्य तो अरण्यचंद्रिका के समान था यानी जंगल में फैली चांदनी, अर्थात ऐसा बनाव-शृंगार जिसकी प्रशंसा करने वाला कोई न हो।

आक की पहचान उसके धवल दूध से हुई जिसके बारे में सुना कि वह विष है। बिल्व भोलेनाथ का प्रिय होने से पहचाना गया। वहीं शिव मंदिर के निकट खड़े बरगद की लटें तो लटकने के ख़ूब काम आईं। जैसे शंकर भूतनाथ वैसे बड़ है वृक्षनाथ। वहीं वृक्षराज है पारिजात जिसे इंद्रपुर से श्रीकृष्ण द्वारकाधाम लेकर आए थे। पारिजात देवलोक के पंचवृक्ष में से एक है; अन्य चार हैं- मंदार, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन। 'चंदन विष व्याप्त नहीं, लपटे रहत भुजंग' से चंदन के वृक्ष को जाना और देवपूजा ने चंदन की सुरुचिपूर्ण सुगंध का पान कराया। हिमालय क्षेत्रों की यात्रा के दौरान वनचंदन यानी देवदार से परिचय हुआ। उत्तराखंड प्रवास ने बुरांश के वृक्ष से मित्रता करवाई जिसके शरबत का स्वाद भी अतुलनीय है। मांगलिक कार्यों के लिए आम-अशोक के पत्ते खोजकर लाने से उनकी पहचान हुई। देव अर्पण से लेकर बंदनवार तक, विनम्रता से सजने वाला गेंदा तो इतना बहुउपयोगी है कि वह पुष्प का पर्यायवाची बन बैठा। जब भी बाज़ार से केवल फूल मंगाया, गेंदा ही आया। तुलसी का पौधा सदा पूज्य रहा और फिर देवउठनी ग्यारस पर तुलसी-शालिग्राम विवाह ने प्रकृति के इस दिव्ययुगल से परिचय करवाया। खट्टे-मीठे, हरे-लाल-काले शहतूत तो अब दिखते नहीं, पर इनकी याद ही मुंह में पानी ले आने को काफ़ी है। हालांकि, इस पेड़ पर यदि शहतूत न दिखे तो आज भी इसे पहचानना असंभव-सा है। राजस्थान की शोभा खेजड़ी है जिसने मरुभूमि में मानवों को पालने में महनीय योगदान दिया है। यहीं जयपुर में वृक्षपुरुष विष्णु लांबा जी ने सिंदूर के वृक्ष से पहचान करवाई और तत्काल फल से सिंदूर निकालकर दिखलाया। बलूत जाति के इस पहाड़ी वृक्ष का जयपुर जैसे गर्म प्रदेश में मिलना आश्चर्य ही था। स्मरण हो आया कि जयपुर नरेश ने किसी समय केसर उगाने का विचार जयपुर में किया था, परंतु शीतप्रदेश का केसर इस तपते देश में भला किस प्रकार रहता! लिहाज़ा केसर तो न रहा परंतु, आमेर दुर्ग की मावठा झील में केसर क्यारी आज भी है। बहरहाल, यूकेलिप्टस की श्वेत छाल में बसी सुगंध से जीव विज्ञान पढ़ने वाले मित्र ने परिचय करवाया। रेवापुत्र श्री वेगड़ जी ने ग्रामीण महिलाओं को इसे 'लिपस्टिक' का झाड़ बोलते पाया था। आदिवासी क्षेत्र में महुआ भी देखा जिसके विषय में एक सयाने ने बताया कि यह महुआ नहीं, मधुरता का वृक्ष है, इससे मधुरता बरसती है। ऐसे वृक्षों को मधुस्रव कहते हैं।

वसंत के विदा होते ही कच्चा आम यानी केरी झूलने लगती है, जिसे पत्थर मारकर या लंबे बांस पर लोहे का तार बांधकर तोड़ना मनपसंद काम रहा। इसी क्रम में बादाम का पेड़ भी चीन्हा; जिसकी ऊंची शाखों पर पत्थर मारकर पहले फल तोड़ना और फिर उस फल से बादाम को साबुत बाहर निकालना बड़ा श्रमसाध्य कार्य था। वृक्षाम्ल इमली के पेड़ की पहचान उसकी खटास से है जिसकी पत्ती भी दांत खट्टे कर देती है और रात को तो इस पेड़ के पास फटकने में भी हम बड़ा जोखिम समझते थे। विलायती इमली का पेड़ बुआजी के घर के निकट था, जिसके फलों का आस्वाद करने के लिए गर्मी की छुट्टियों का इंतज़ार आवश्यक था।

बालपन में केले के पत्ते देखने से पहले सुनकर पहचान लिए गए। जिसकी कथा यूं थी- 'एक निर्दयी मालिक नौकर इस शर्त पर रखता था कि काम के एवज में आवास आदि सबकुछ मिलेगा परंतु भोजन केवल एक पत्ते के बराबर मिलेगा। तिस पर यदि एक साल से पहले नौकर नौकरी छोड़कर गया तो मालिक उसके कान काटकर रख लेगा। भला एक छोटे से पत्ते पर कितना भोजन आ सकता था! हर नौकर कान कटवाकर भागा। किंतु, एक नौकर सवा शेर निकला और भोजन के लिए केले का पत्ता ले आया। बस फिर क्या था, मालिक परेशान और नौकर की मौज।'

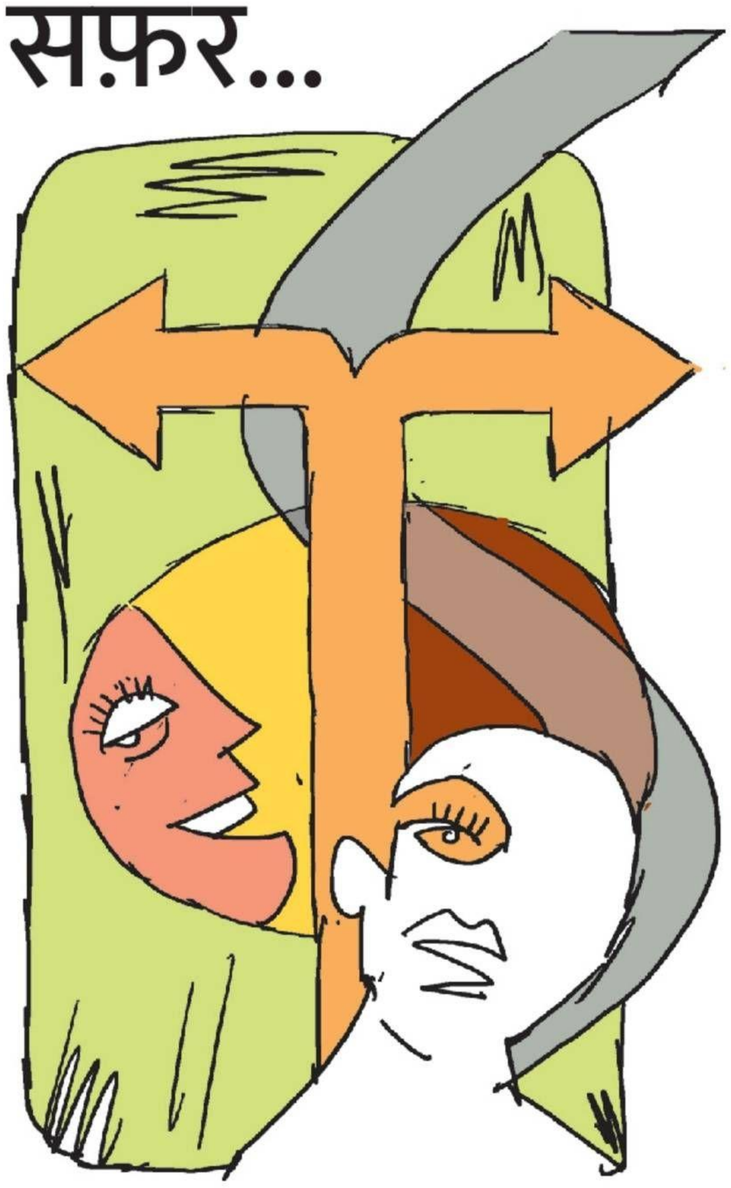
इससे केले के पत्ते की कल्पना को पंख मिले। पाककला में उपयोगी तेजपत्ते को नीलध्वज नाम मिला है। खजूर और नारियल के वृक्ष में ग़फ़लत बालमन को सदा रही। नामकरण करने वालों ने भी मामला यूं उलझाया कि खजूर को कहा नीलच्छद और नारियल को नीलतरु। 'ताड़ का झाड़' कहावत से मालूम हुआ कि ताड़ का क़द ऊंचा होता है तथा 'न रहेगा बांस और न रहेगी बांसुरी' से पता चला कि बांस से बांसुरी बनती है। वहीं अपने क़द के लिए प्रसिद्ध चीड़ के पेड़ को वृक्षधूप कहते हैं। लाल फूल सेमल की पहचान हैं इसी से इसे रक्तपुष्पक भी कहते हैं।

कदंब के वृक्ष का चित्र मन अब भी नहीं उकेर पाता, परंतु शारदापुत्री सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता की ये पंक्तियां- 'यह कदंब का पेड़ यदि मां होता यमुना तीरे, मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे' यमुना माई के किनारे एक वृक्ष पर बैठे नटखट गोपाल का सुंदर चित्र अवश्य उकेरती हैं।

अंततोगत्वा, कभी किसी वृक्ष का सान्निध्य मिले तो विचार कीजिएगा कि वृक्ष पहले आया या बीज? वृक्ष बीज का कारण है और बीज वृक्ष का। अनादिकाल से यह प्रवाह चला आ रहा है। इसे तरुबीजन्याय कहते हैं। परंतु यह केवल बीज और वृक्ष का संबंध है। मनुष्य और वृक्ष का संबंध लतावृक्षन्याय है। अर्थात, वृक्ष के अवलंबन के बिना लता न जीवित रह सकती है, न फैल सकती है।

यही मनुष्य की स्थिति है, यही हमारी नियति है।

सार्थकता का सफ़र...



किसी चीज़ की काग़ज़ी क़ीमत नहीं, बल्कि आपको उससे वास्तव में क्या मिलता है, इस बात से उस चीज़ का महत्व आंका जाना चाहिए।

यह तब की बात है जब दो हज़ार रुपये और दो रुपये के नोट बाज़ार में चलते थे। एक बार संयोग से वे एक ही आदमी की जेब में पहुंच गए। दोनों नोट एक-दूसरे से नितांत अजनबी थे, इसलिए कुछ देर तो वे चुपचाप रहे। दो रुपये का नोट दो हज़ार के नोट की चमक-दमक देखकर झिझक रहा था और अगला तुड़े-मुड़े, मैले-कुचैले दो रुपये से बात नहीं करना चाह रहा था।

पर आख़िर वे एक ही जेब में रहकर कब तक दूर-दूर रहते। सो, दोनों में बातचीत शुरू हो गई। वे एक-दूसरे को अपने अब तक के सफ़र के बारे में बताने लगे। वे कहां-कहां से गुज़रे, किन-किन हाथों में रहे, उनसे क्या-क्या ख़रीदा गया, वग़ैरह-वग़ैरह।

दो हज़ार के नोट ने बड़ी शान बघारते हुए बोलना शुरू किया, 'मैंने तो बड़ी शानदार ज़िंदगी गुज़ारी है। मैंने बड़े-बड़े होटलों में एयरकंडीशनर की ठंडी-ठंडी हवा खाई। पार्टियों के शौक़ीन एक बड़े उद्योगपति ने मेरा इस्तेमाल किया। एक फिल्मी हीरोइन ने ड्रिंक ख़रीदने के लिए मेरा यूज़ किया। मैं महंगे-महंगे पर्सों में आराम से रहा।' इतना कहकर वह दो रुपये के नोट की ओर देखने लगा।

अब दो रुपये ने कहना शुरू किया, 'मेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। मैं या तो मज़दूर के हाथ में रहा या मंदिर की दानपेटी में। मुझे देकर अक्सर आटा ख़रीदा गया या बच्चों के लिए पिपरमेंट की गोली। लेकिन हां, इतना मैंने ज़रूर देखा कि जिन लोगों ने मुझे मंदिर की दानपेटी में डाला, उनके चेहरे पर और जिन लोगों ने आटा या पिपरमेंट ख़रीदा, उन सभी के चेहरे पर संतोष के भाव थे।'

दो हज़ार के नोट ने पूछा, 'लेकिन मंदिर क्या होता है? और ये संतोष के भाव कैसे होते हैं?'

जंगल में वर्षा मंगल

बरसात के स्वागत के लिए हरियाली ओढ़े खड़ा रहता है जंगल। और जब पहली बारिश होती है तो समूचा वन सौंधी ख़ुशबू से गमक उठता है।

मयूर नाच उठते हैं, पेड़-पौधे अद्भुत छटा बिखेरते हैं और औषधीय वनस्पतियां लहलहा उठती हैं। इस जादुई माहौल को अंतर्मन में महसूस करने के लिए, आइए, वर्षा में नहाए वन की सैर पर चलते हैं।



– डॉ. सुदेश वाघमारे

सेवानिवृत्त उपवनसंरक्षक, मप्र राज्य वनसेवा। नगरीय पौधरोपण, वन्यप्राणी प्रबंधन, जलसंरक्षण और जैवविविधता में विशेषज्ञता तथा सुदीर्घ मैदानी अनुभव।

संप्रति- स्वतंत्र लेखन और भारत शासन के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की क्षेत्रीय साधिकार समिति के सदस्य।

'धरती पर बहुत सारी चीज़ें हैं होरेशियो जिनकी कल्पना तुम्हारे दर्शन ने भी नहीं की होगी।'- शेक्सपीयर (हैमलेट एक्ट 1, सीन 5)। यदि शेक्सपीयर भारत में हुए होते तो कहते कि पहली वर्षा की सौंधी ख़ुशबू भी उनमें से एक है। किसे नहीं भाती पहली बारिश में ज़मीन से उठती भीनी-भीनी सुगंध? पहले तो लोग इसे मृदा और जल के स्पर्श से निकली गंध ही समझते रहे। परंतु जैसे-जैसे विज्ञान और उसमें भी विशेषकर बैक्टीरिया का विज्ञान विकसित हुआ तो इस मादक गंध का रहस्य खुलता चला गया। दरअसल, अप्रैल-मई-जून की कड़ी धूप मिट्टी से सब आर्द्रता खींच लेती है। जैसे ही पहली बारिश की बूंदें जंगल की तपती हुई ज़मीन पर पड़ती हैं तो मिट्टी में सुषुप्त एक्टिनोबैक्टीरिया सक्रिय हो जाता है। उस बैक्टीरिया के उपापचय का सह-उत्पाद जिओसोनिन नाम का यौगिक होता है। ग्रीष्म ऋतु में कुछ पेड़-पौधे उत्तरजीविता के संघर्ष में तेल छोड़ते हैं जो मिट्टी और चट्टानों में घुल जाता है। पानी की पहली फुहार में जिओसोनिन और यह तेल मिलकर हवा में एरोसोल बनकर तैरने लगते हैं और भीनी-भीनी ख़ुशबू का अहसास कराते हैं। एरोमा रसायन शास्त्र में इस ख़ुशबू को पेट्रोकोर कहते हैं। जब से विज्ञान ने इस सौंधी महक देने वाले जीवाणु को खोजा है, तब से इसका इत्र भी बाज़ार में मिलने लगा है। यह इत्र तनाव और बैचेनी कम करने की औषधि भी है। मिट्टी का यह इत्र अभी सामान्य जन की पहुंच के बाहर है। एक और मज़ेदार बात कि हवा में इस मादकता का अहसास कराने वाला यह रसायन एक प्रकार का अल्कोहल ही है। जब तेज़ वर्षा होती है तो जंगल से यह ख़ुशबू ग़ायब हो जाती है, क्योंकि हवा में तैर रहे एरोसोल वर्षा की बूंदों के साथ वापस मिट्टी में आ जाते हैं। जंगल की एक मुट्ठी मिट्टी में इतने जीवाणु होते हैं जितनी पृथ्वी पर मानव जनसंख्या होगी।

जारी... जंगल कथा



भरपूर भोजन की ऋतु आई

हमारे प्रबुद्ध समाज ने कैसा सुंदर शब्द आविष्कृत किया है- 'वर्षा मंगल'। वर्षा भारतीय मानस में मंगलकारक मानी गई है। वो अंग्रेज़ी नर्सरी राइम वाली 'रेन रेन गो अवे' नहीं है। वर्षा से भीगा हुआ मधुकामिनी, पारिजात या सिंदूरी का वृक्ष देखिए, ऐसा लगता है जैसे नवोढ़ा सद्य:स्नाता आकर खड़ी हो गई हो। हमारी संस्कृति में तो छह ऋतुओं का जैसा बंटवारा हुआ है वैसा दुनिया के किसी देश में नहीं हुआ है। ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमंत, शिशिर और वसंत। पृथ्वी अपनी धुरी पर सूर्य का चक्कर लगाती है इसलिए दिन-रात बने। पृथ्वी अपने अक्ष पर झुकी हुई है इसलिए दुनिया में एक-सी ऋतुएं नहीं हुईं। उर्दू का शायर वर्षा को देखकर कहता है 'यकायक ये क्या माजरा हो गया कि जंगल का जंगल हरा हो गया'। वर्षा, बादल, धरती, प्रकृति, सृष्टि, नीर, नदी हमारे डीएनए के अभिन्न अवयव हैं। जब बादल बरसते हैं तो जैसे सारे भारत के जंगल आतुरता से उनका स्वागत करते हैं। रेन फॉरेस्ट में यों तो सारे साल कुछ-न-कुछ बारिश होती रहती है मगर वर्षा ऋतु तो उसे सराबोर कर देती है। शास्त्र कहते हैं कि हर जीवित वस्तु में तीन अनिवार्य लक्षण पाए जाते हैं- आहार, मैथुन और भय। ध्यान से देखें तो जल ही जीवन का आधार है। जंगल जाएं तो दूसरों के आहार के लिए ही हज़ारों प्रकार के कीट पैदा होते हुए पाए जाएंगे। बहुत से तो ऐसे होते हैं कि उनका जीवनकाल ही एक दिन का होता है। वर्षा में अधिकतर जंगली जीव करोड़ों सालों से प्रजनन करते आए हैं। छिपकली को देखिए- जून में उसके छोटे-छोटे बच्चे दिखाई देना शुरू हो जाते हैं, क्योंकि वर्षा में उनका आहार कीड़े उत्पन्न होने वाले हैं। पक्षी घोंसलों में अंडे सेने लगते हैं, क्योंकि अगले चार महीने चूजों को पानी, कीड़े और वनस्पति भरपूर मिलेगी। कीड़े जो प्रोटीन से भरपूर होते हैं।

कानन की बात ही निराली है

हमारे जंगलों में एक जीव ऐसा है जो तीस करोड़ साल पहले जैसा था वैसा ही आज भी है। डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत को उसने मानने से इनकार कर दिया। विज्ञान कहता है कि अपवाद भी नियम को सिद्ध करने के लिए होते हैं। वह जीव है मगर यानी क्रोकोडाइल। बरसात आने के पहले मार्च-अप्रैल में किनारे पर आकर रेत में अंडे देता है। प्रसिद्ध वाइल्डलाइफ़र एमकेएस रणजीत सिंह अपनी आत्मकथा 'ए लाइफ़ विथ वाइल्डलाइफ़' में लिखते हैं- 'यदि मगर के अंडे 31 से 31.5 डिग्री सेल्सियस पर निकलते हैं तो उनमें से नर और मादा दोनों बच्चे निकलते हैं। यदि 31.5 से 33 डिग्री सेल्सियस पर निकलते हैं तो अधिकांश नर होते हैं। वहीं 28 से 31 डिग्री सेल्सियस तापमान पर अधिकांश मादा। 34 डिग्री से अधिक तापमान पर भ्रूण मर जाते हैं।' अंडे के अंदर भ्रूण आवाज़ और हलचल करने लगते हैं तो मादा मगर उन्हें अंडे से निकाल लेती है और मुंह में रखकर आसपास के गड्ढों के पानी में डालकर बच्चों को बड़ा करती है। बरसात के बाद जब सर्दियां आती हैं तो ये बच्चे धूप सेंकते हुए पाए जाते हैं और तब उनकी गिनती आसानी से हो जाती है।

और कौन होगा जिसे वर्षा ऋतु में मोर को देखकर उसका ख़ुद का मन-मयूर नृत्य न करने लगेगा। मोर अपना मधुकाल वर्षा में मनाता है जब हमारे देवता सोये रहते हैं। बड़ा रुचिकर है कि मोर ही नृत्य करता है। मोरनी के नर जैसे पंख ही नहीं होते तो नाचेगी कहां से! प्रकृति ने नर को मादा की तुलना में अतीव सुंदर बनाया है। जितने भी नर हरिण हैं जैसे चीतल, सांभर, बारहसिंगा, और कृष्णमृग व चौसिंगा जैसे मृग आदि उन्हें सुंदर सींग दिए हैं,



लेकिन मादा को नहीं दिए। नर कोयल ही कूकता है गाता है, मादा की आवाज़ ही नहीं निकलती। तो मोर वर्षा में क्यों नाचता है? इसलिए कि मादाओं को लुभा सके जिसके लिए वह अपने पूरे पंख खोलकर नृत्य करता है। वर्षा के बाद ये पंख एक-एक कर गिरते जाते हैं और नए आते जाते हैं। सोचिए, प्रकृति ने मादा को सुंदर, चमकीला, भड़कीला क्यों नहीं बनाया? जवाब है कि मादा को अपने बच्चे पालने के लिए एक स्थान पर छिपकर रहना पड़ता है। जंगली शिकारियों से बचना पड़ता है। यदि वह नर की तरह आकर्षक होगी तो उसकी ख़ुद की और बच्चों की जान ख़तरे में पड़ सकती है।

और इस पक्षी को तो शहरियों ने देखा ही नहीं होगा! हमारे जंगलों और आसपास के जलाशयों में जकाना या जलमयूर नाम का यह पक्षी दिख जाता है। यह पानी पर चल लेता है, इसलिए कई यूरोपीय देशों में इसे जीसस बर्ड (मसीह का पक्षी) भी कहते हैं। मगर इसे पानी के ऊपर चलने की कोई सिद्धि नहीं मिली है। दरअसल प्रकृति ने इसके पैर ख़ूब लंबे और पंजों की आकृति विशेष बनाई है। इसके कारण यह जलीय वनस्पति के ऊपर संतुलन बनाकर चल लेता है और दूर से ऐसा लगता है कि पानी पर चल रहा है। मगर इसकी दूसरी विशेषता जानकर आप मुस्करा देंगे। बाक़ी पक्षियों के विपरीत इसकी मादा अंडे नहीं सेती। वह बहुपतिवादी है। एक नर के साथ जोड़ा बनाती है। अंडे देती है। उस नर को अंडे सेने के लिए अंडों पर बिठा देती है। अगले नर से कोर्टशिप करती है। अंडे देकर उसे सेने के लिए बिठा देती है। फिर तीसरे, चौथे, पांचवें-छठे के साथ भी यही करती है। नर अंडे सेता है, बच्चे पालता है। ये मस्त घूमती रहती है। जंगल में क्या-क्या चलता रहता है यह देखने के लिए अलग ही आंख की ज़रूरत होती है।

नदियों का जीवन हैं वन

और वन की याद आते ही याद आ जाते हैं सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय जो प्रकृतिप्रेमी रचनाधर्मी थे। सन्नाटे का छंद उनकी एक सार्वकालिक रचना है। अज्ञेय लिखते हैं- 'मैं सभी ओर से खुला हूं/ वन सा/ वन सा अपने में बंद हूं/ शब्दों में मेरी समाई नहीं होगी/ मैं सन्नाटे का छंद हूं।' भारत की अधिकांश नदियां वनजा हैं, अर्थात वनों से ही उत्पन्न हुई हैं। गंगा जैसी हिमजा भी हैं, परंतु उसकी सहायक नदियां भी वनजा ही हैं। बारिश के बाद भी नदियों में पानी बना रहता है यह जंगल की ही करामात है। बारिश का पानी वहां का जंगल अपने पेड़ों की मार्फत ज़मीन में जज़्ब कर लेता है और समय आने पर नदियों में आपूर्ति करता रहता है। मध्य भारत के वन तो पूरे भारत को पानी देने के लिए जाने जाते हैं। दरअसल, उन नागरिकों को जो मैदानी इलाक़ों में रहकर नदियों से पानी ले रहे हैं उन्हें कुछ हरित टैक्स उन वनों को देना चाहिए जहां से नदियों की उत्पत्ति हो रही है।

बूंदों की आस में हुआ हरा

शहरों में तो जुगनू अब दिखते नहीं, किंतु वर्षा ऋतु का जंगल रात में अभी भी जुगनुओं से जगमगाता है। जिस गति से जंगल कंक्रीट में तब्दील होते जा रहे हैं उससे जुगनू देखना अगली पीढ़ी के लिए सपना होता जाएगा। शहर में आसमान और तारे भी कहां दिखते हैं? अयोध्याप्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' का दौर निकल गया जब उन्होंने लिखा था- 'हैं कभी छिपते चमकते हैं कभी/ झोंकते किस आंख में ये धूल हैं/ रात में जुगनू रहे हैं जगमगा/ या निराली बोलियों के फूल हैं।'

और जंगल को ग़ौर से देखिए। यह रातों-रात हरा नहीं होता। पानी गिरने के बाद हरियाली आए ऐसा नहीं होता। पानी गिरने के बाद केवल घास उगती है। जंगल पहले ही हरा हो चुका होता है और वर्षा का भरपूर आनंद लेता है। यदि आपने ध्यान से देखा हो तो जंगल में फरवरी-मार्च में पतझड़ आ जाता है। पेड़ अपने पत्ते रूपी कपड़े उतारकर अनावृत हो जाते हैं। उन्हें यह पता चल जाता है कि अब गर्मी आने वाली है और धरती में पानी नहीं बचेगा। ऐसे में यदि पत्ते पेड़ों में लगे रहे तो उन्हें हरा-भरा रहने के लिए ज़मीन से पानी खींचना होगा। पानी होगा नहीं तो मृत्यु सुनिश्चित है। इस पूर्वानुमान के साथ पेड़ अपने पत्ते गिरा देते हैं और जैसे-तैसे सांस लेकर जीवित रहते हैं। एक बार इंग्लैंड के एक वन अधिकारी मेरे साथ भोपाल से सांची जा रहे थे। वे पहली बार भारत आए थे। रास्ते में बालमपुर का जंगल देखकर बोले कि आपके यहां का सब जंगल सूख गया है। क्या कोई बीमारी है? तब उन्हें वर्षा वन, समशीतोष्ण वन और पर्णपाती वनों के प्रकार समझाने पड़े। ख़ैर! जैसे-तैसे जीवित इस वन को पता चल जाता है कि अब वर्षा ऋतु आने वाली है। इसलिए बारिश होने के पहले ही धीरे-धीरे वह अपने पत्ते रूपी वस्त्र पहनने लगता है। पहले वाले किसलय पीले-नीले, फिर गुलाबी होते हैं जो आख़िरकार हरे हो जाते हैं। यह उनमें पाए जाने वाले विशेष रसायन यानी पिगमेंट एंथोसायनिन का कमाल होता है। अधिकतर औषधीय वनस्पतियां इसी समय यानी वर्षा ऋतु में पल्लवित-पुष्पित होती हैं। न जाने कितने प्रकार के कंद जो वर्षभर भूमिगत रहते हैं अभी अपनी पूरी ऊर्जा से फूट पड़ते हैं। बिलाईकंद, बिदारीकंद, बराहकंद, जयमंगल कांदा, शतावर, जंगली अदरक, जंगली हल्दी, सफ़ेद मूसली, काली मूसली, नागरमोथा अपनी पूरी ताक़त से फूट पड़ते हैं और फिर धीरे-धीरे ग़ायब भी होने लगते हैं। यानी ऊपरी भाग सूख जाता है और कंद ज़मीन में सुषुप्ति में चला जाता है। न जाने कितनी लताएं पनपती हैं और अपना अस्तित्व दिखाकर अदृश्य हो जाती हैं। अनंतमूल, इंद्रायणलता, ईश्वरमूल, उतरन, अंतमूल, कनफुटी, कामलता, गंधप्रसारणी, घुमची, जीवंती, डोकरबेल, ढीमरबेल, तपनीबेल, नागबेल, पंचपत्री, रामदातुन, शिवलिंगी और न जाने क्या-क्या। वर्षाऋतु में अपनी अद्‌भुत छटा बिखेरने वाला एक पौधा है अग्निशिखा। ग्रामीण इसे लड़ैन या कलिहारी या झगड़हा कहते हैं। इसका फूल देखने में उल्टा लगता है, इसलिए इसे कलह करने वाला कहते हैं। शायद मनीषियों ने इसका अतिशय विदोहन न हो जाए और जीनपूल ही समाप्त न हो जाए इसलिए ऐसा नाम दिया हो। मगर इसका संस्कृत नाम, यथानाम तथागुण है।

जीवनपथ

अनंत पथ पर चलते हुए मिले शूल ही शूल, पर फिर भी संघर्षरत मन में सहर्ष खिले कई फूल। कविताओं के हिस्से सौंप कर हर घाव, ये वीर हंसते ही चले हैं।

जीवनपथ को खोजते ये अमरत्व रचते ही चले हैं...

पूर्व चलने के बटोही बाट की पहचान कर ले

– हरिवंशराय बच्चन

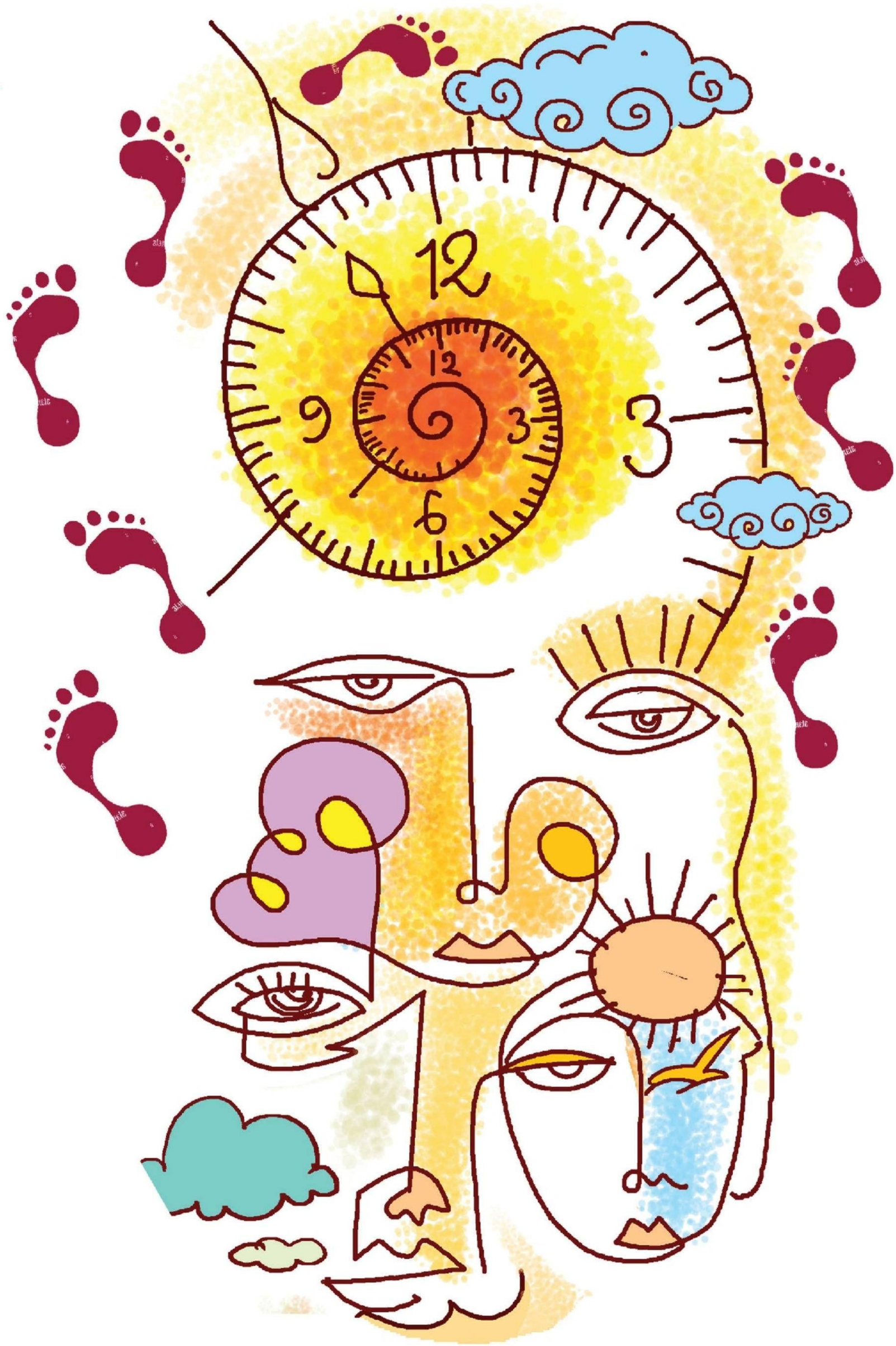
पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले
पुस्तकों में है नहीं छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता है न औरों की ज़बानी,
अनगिनत राही गए इस राह से, उनका पता क्या,
पर गए कुछ लोग इस पर छोड़ पैरों की निशानी,
यह निशानी मूक होकर भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी, पंथ का अनुमान कर ले।
पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले।

है अनिश्चित किस जगह पर सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित किस जगह पर बाग वन सुंदर मिलेंगे,
किस जगह यात्रा ख़तम हो जाएगी, यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित कब सुमन, कब कंटकों के शर मिलेंगे
कौन सहसा छूट जाएंगे, मिलेंगे कौन सहसा,
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा तू न, ऐसी आन कर ले।
पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले।

कौन कहता है कि स्वप्नों को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें अपनी उमर, अपने समय में,
और तू कर यत्न भी तो, मिल नहीं सकती सफलता,
ये उदय होते लिए कुछ ध्येय नयनों के निलय में,
किन्तु जग के पंथ पर यदि, स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो, सत्य का भी ज्ञान कर ले।
पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले।

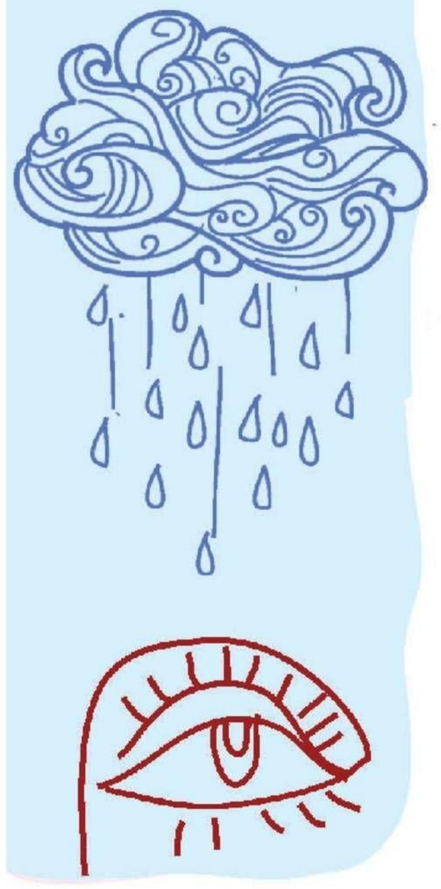
स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग-कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को, ललकती उन्मुक्त छाती,
रास्ते का एक कांटा, पांव का दिल चीर देता,
रक्त की दो बूंद गिरतीं, एक दुनिया डूब जाती,
आंख में हो स्वर्ग लेकिन, पांव पृथ्वी पर टिके हों,
कंटकों की इस अनोखी सीख का सम्मान कर ले।
पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले।

यह बुरा है या कि अच्छा, व्यर्थ दिन इस पर बिताना,
अब असंभव छोड़ यह पथ दूसरे पर पग बढ़ाना,
तू इसे अच्छा समझ, यात्रा सरल इससे बनेगी,
सोच मत केवल तुझे ही यह पड़ा मन में बिठाना,
हर सफल पंथी यही विश्वास ले इस पर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने चित्त का अवधान कर ले।
पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले।



तीन घटनाएं

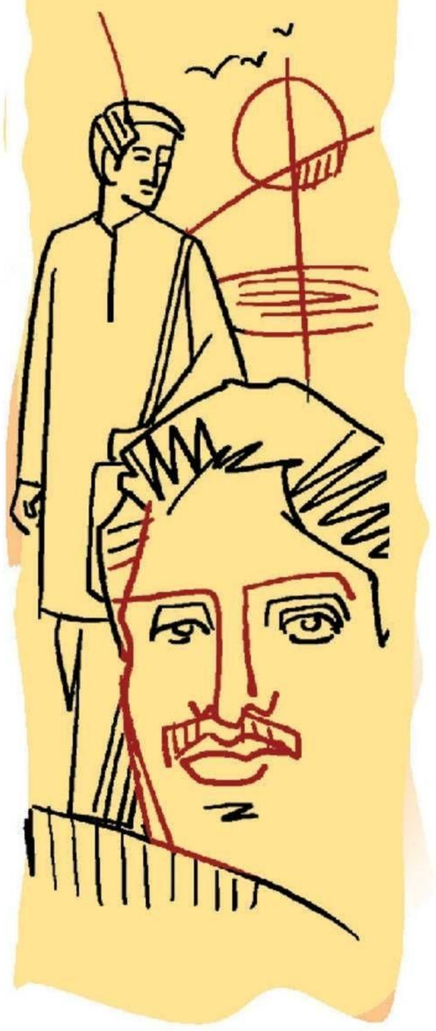
– जानकीबल्लभ पट्टनायक



मैं खिड़की की सांस से
बग़ीचा देख रहा था
एकाएक तीन घटनाएं
एक साथ घटीं।
आकाश में छाए
घनघोर बादलों से
पानी की दो-तीन बूंदें
टपक पड़ीं।
जैसे कोई
महायक्ष धनी आदमी
बड़ी मुश्किल से
दो पैसे दान करता है।
अड़हुल के पौधे से
खिलने को आई
एक लाल कली
झड़ गई।
जिस तरह यौवन की
सारी आभा
जीवन के सारे सपने
संजोकर आने वाला
कोई नवीन किशोर
जीवन पथ पर असमय ही
झड़ जाता है।
झाऊं के पेड़ पर
बैठे तीन तोते
जो कि पेड़ के रंग से
मिल गए थे
तपाक् से
एक साथ नीचे गिरने लगे
तीन हरे फलों की तरह
लेकिन पुनः आधे रास्ते से उड़ गए।
इतनी-सी सूचना देकर कि
जीवन हारने के लिए नहीं
गिरकर-उठकर अपना
प्राप्य पाने के लिए है।

उस दिन जब जीवन के पथ में

– जयशंकर प्रसाद



उस दिन जब जीवन के पथ में,
छिन्न पात्र ले कंपित कर में,
मधु-भिक्षा की रटन अधर में,
इस अनजाने निकट नगर में,
आ पहुंचा था एक अकिंचन।

उस दिन जब जीवन के पथ में,
लोगों की आंखें ललचाईं,
स्वयं मांगने को कुछ आईं।
मधु सरिता उफनी अकुलाईं,
देने को अपना संचित धन।

उस दिन जब जीवन के पथ में,
फूलों ने पंखुरियां खोलीं,
आंखें करने लगीं ठिठोली;
हृदय ने न सम्हाली झोली,
लुटने लगे विकल पागल मन।

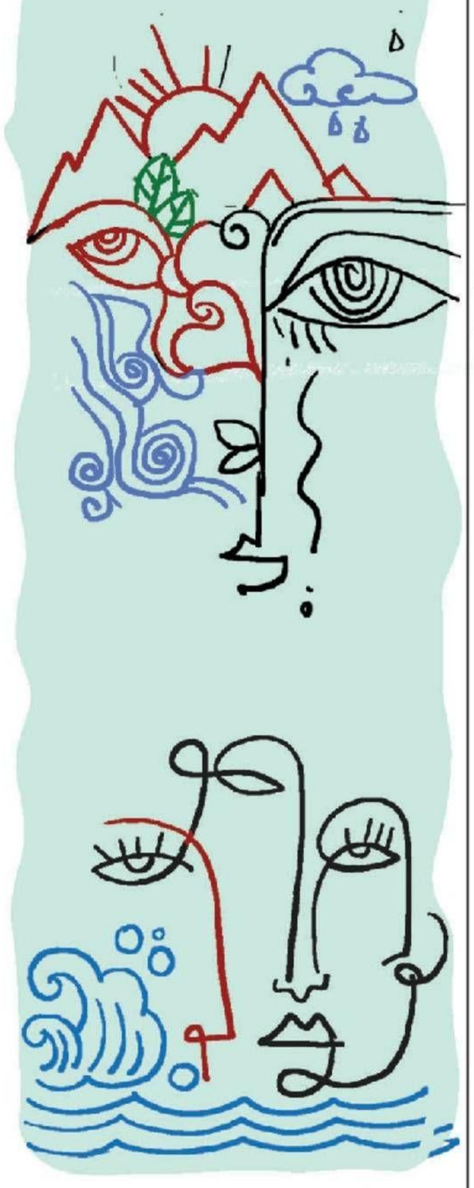
उस दिन जब जीवन के पथ में,
छिन्न पात्र में था भर आता–
वह रस बरबस था न समाता;
स्वयं चकित-सा समझ न पाता
कहां छिपा था, ऐसा मधुबन!

उस दिन जब जीवन के पथ में,
मधु-मंगल की वर्षा होती,
कांटों ने भी पहना मोती,
जिसे बटोर रही थी रोती-
आशा, समझ मिला अपना धन।

अनुवाद : राजेंद्र प्रसाद मिश्र

जा रहा हूं जीवन की खोज में

– दूधनाथ सिंह



जा रहा हूं जीवन की खोज में
सम्भवत: मृत्यु मिले
सम्भवत: मिले एक सभ्य
सुसंस्कृत जीवन-व्यवहार
सांझ मिले बांझ
आंच न मिले
जीवन की राख मिले
दसों-दिशाओं में।
क्या ऐसा नहीं हुआ कई बार
कई तथागतों के साथ
कई शताब्दियों में
निरंतर!

जब भी वह निकला उल्लास
लास भौतिक जीवन पर इठलाता
मिली उसे निरी उदासीनता
मिला उसे कठिन कंकाल
मिला उसे भव्य अंतराल।
क्या वह नहीं लौटा
विकल-विकल लिए
हाथों में अपना ही तरल रक्त
क्या उसकी आंखों से नहीं
टूटा, निपट उदास टिमटिमाता
सितारा एक?
पृथ्वी थोड़ी और
समृद्ध क्या नहीं हुई
उसके बाद!

मैं अनंत पथ में लिखती जो

– महादेवी वर्मा



मैं अनंत पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें
उनको कभी न धो पायेंगी
अपने आंसू से रातें!

उड़-उड़ कर जो धूल करेगी
मेघों का नभ में अभिषेक
अमिट रहेगी उसके अंचल-
में मेरी पीड़ा की रेख!

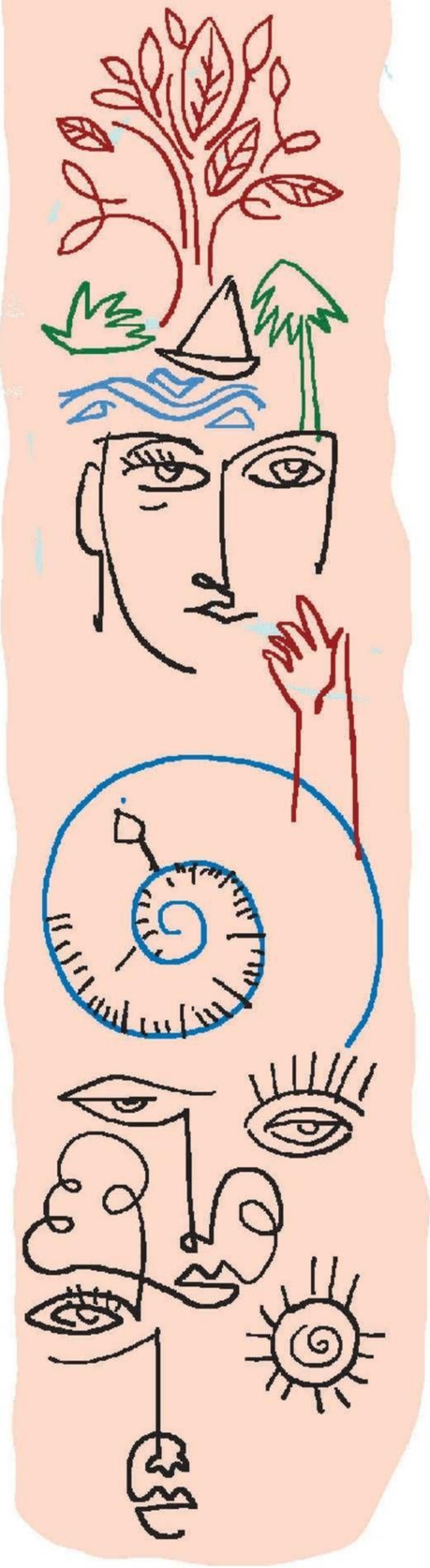
तारों में प्रतिबिंबित हो
मुस्काएंगी अनंत आंखें,
हो कर सीमाहीन, शून्य में
मंडराएंगी अभिलाषाएं!

वीणा होगी मूक बजाने-
वाला होगा अंतर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आ कर
लौटेंगे सौ सौ निर्वाण!

जब असीम से हो जाएगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल!

जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है

– केदारनाथ अग्रवाल



जो जीवन की धूल चाट कर
बड़ा हुआ है
तूफ़ानों से लड़ा और
फिर खड़ा हुआ है
जिसने सोने को खोदा
लोहा मोड़ा है
जो रवि के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा
जो जीवन की आग जला कर
आग बना है
फ़ौलादी पंजे फैलाए
नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा
शासन मोड़ा है
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा।

संसार देने और पाने के गणित से चलता है, लेकिन...

यह 'इस हाथ दे उस हाथ ले' का मामला नहीं है। यहां ज़रूरी है सिर्फ़ लौटाना।

देने वाले को लौटाएं या किसी और को, किसी भी रूप में कितना ही प्रदान करें, पर...

ऐसा करें ज़रूर। इससे दुनिया का हिसाब बराबर रहता है।

यही इस गणित का सौंदर्य है...



देना-पावना के बीच जीना

– सीताराम गुप्ता

समकालीन प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य तथा भाषा विषयक लेख, व्यंग्य, कथा-साहित्य, कविताएं व लेख नियमित रूप से प्रकाशित। उन्होंने 'मन द्वारा उपचार' नामक पुस्तक लिखी है।



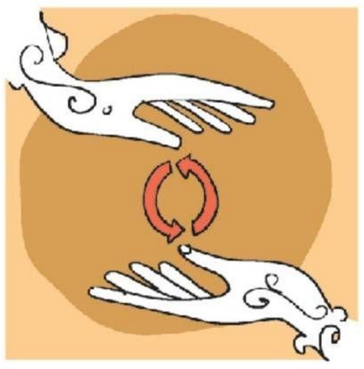
सोशल मीडिया पर किसी का संदेश पढ़ रहा था। संदेश अंग्रेज़ी में था- इफ समवन मेक्स यू हैप्पी, मेक देम हैप्पीअर। यदि कोई आपको प्रसन्न करता है तो उसे और अधिक प्रसन्न कीजिए। बहुत अच्छी बात है। आजकल बच्चों के जन्मदिन पर जो बच्चे उपहार लेकर आते हैं उन्हें भी रिटर्न गिफ्ट्स दिए जाते हैं। यदि कोई हमें कुछ देता है तो हमें भी उसे अवश्य ही कुछ न कुछ देना चाहिए। कुछ अधिक दे सकें तो और भी अच्छी बात है। जो हमें ख़ुशी दे उसे ख़ुशी दें। जो हमें मिठाई खिलाए उसे हम भी मिठाई खिलाएं। जितनी उसने खिलाई है उससे भी अधिक खिलाएं।

यदि हमें मिठाई खिलाने वाला मधुमेह से पीड़ित है तो क्या फिर भी उसे मिठाई खिलाएं औऱ ख़ूब मिठाई खिलाएं? और जो हमें प्रसन्नता न पहुंचा सकें अथवा हमारी मदद न कर सकें उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए?



प्रेरणा... देना-पावना के बीच जीना... जारी

श्रीगणेश का जिम्मा आपका है



यदि कोई हमें हमारी पसंद की कोई वस्तु देकर अथवा किसी अवसर पर सहायता करके हमारी प्रसन्नता में वृद्धि करता है और हम केवल उसे वही चीज़ें लौटाते हैं तो ये आपसी लेन-देन अथवा उधार चुकाने जैसा ही है। हालांकि यदि कोई ऐसा भी नहीं करता तो वो तो संसार का निकृष्टतम व्यक्ति है इसमें संदेह नहीं। यदि कोई हमारे साथ अच्छा व्यवहार करता है जिससे हमारी प्रसन्नता में वृद्धि होती है तो हमें भी उसके साथ उससे भी अच्छा व्यवहार करना चाहिए, लेकिन क्या अन्य लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करना चाहिए? क्या हम स्वयं अच्छा व्यवहार करने का शुभारंभ नहीं कर सकते? कई लोग प्रायः कहते सुने जाते हैं कि हमारे साथ जो जैसा व्यवहार करेगा हम भी उसके साथ बिल्कुल वैसा ही व्यवहार करेंगे। दूसरे लोग भी तो ये बात कह या कर सकते हैं। ऐसे में यदि हम ऐसे लोगों से अच्छा व्यवहार करेंगे तो वे भी संभवतः हमारे साथ अच्छा व्यवहार ही करेंगे। यदि हम दूसरों को प्रसन्न होने का अवसर देंगे तो उसके लौटकर आने की संभावना भी कम नहीं है।

अंकों का जोड़ नहीं है जीवन



एक पैंतालीस साल पुरानी घटना याद आ रही है। एक शादी में एक युवक भी सम्मिलित हुआ था। उसने शगुन के तौर पर एक सौ पैंतीस रुपये दिए। उस समय शगुन के लिफ़ाफे प्रचलन में नहीं आए थे। शगुन के पैसे इकट्ठे करने के लिए किसी समझदार व्यक्ति को बिठा दिया जाता था। जिन्हें जो भी देना होता सीधे उस व्यक्ति के हाथ में दे देते और वो एक कॉपी में अथवा किसी काग़ज़ पर लिखता जाता। लोग प्रायः ग्यारह, इक्कीस, इक्यावन, एक सौ ग्यारह, एक सौ इक्यावन अथवा दो सौ एक रुपये देते थे। ऐसे में, एक सौ पैंतीस रुपये देखकर आसपास बैठे सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक सज्जन ने पूछ लिया, 'अरे भई ये एक सौ पैंतीस रुपये किस हिसाब से दिए?' लड़के ने झट से जवाब दिया, 'पांच साल पहले मेरी बहन की शादी में इन्होंने एक सौ एक रुपये दिए थे। ग्यारह-ग्यारह रुपये अलग से दो बार और दिए थे। इस हिसाब से हुए कुल एक सौ तेईस रुपये। मेरी मां ने कहा था कि इनके जितने रुपये आए हुए हैं उनसे दस-बारह रुपये ज़्यादा दे आना, इसलिए एक सौ तेईस में बारह और जोड़कर एक सौ पैंतीस रुपये दे दिए।'

इस प्रकार का लेन-देन हमें घोर व्यावसायिक बना देता है जिससे व्यक्तित्व में उदात्त जीवन मूल्यों का समावेश नहीं हो पाता व संबंधों में आत्मीयता नहीं आ पाती। किसी अवसर पर हमें ग्यारह सौ रुपये देने हों तो उतने न होने पर कम भी दिए जा सकते हैं। किसी ने हमें सौ रुपये दिए हैं तो सौ ही लौटाना ज़रूरी नहीं। ज़्यादा भी लौटा सकते हैं। लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते। एक सिस्टम होता है उसी के अनुसार चलना पड़ता है। हम बहुत व्यवहारकुशल होते हैं। यही अति व्यवहारकुशलता हमारी वास्तविक प्रसन्नता में सबसे बड़ी बाधक होती है। कोई हमें प्रसन्नता का अवसर प्रदान करता है तो ये बड़ी अच्छी बात है, लेकिन उसे उसी श्रेणी में थोड़ी-सी अधिक प्रसन्नता कैसे लौटाई जा सकती है? प्रसन्नता कोई ऐसी चीज़ तो है नहीं जिसे किसी कैप्सूल में बंद करके किसी को दे दिया जाए। प्रसन्नता तो एक आंतरिक भाव है, एक आदत है, एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। फिर भी भौतिक जगत में हम एक-दूसरे को प्रसन्न करने का प्रयास करते रहते हैं।

एक का क़र्ज़ दूसरे को लौटाएं



प्रायः ऐसा होता है कि यदि कोई हमें खाना खिला देता है तो हम भी उसे खाना खिलाने का कोई न कोई अवसर तलाशते रहते हैं और इच्छा न होने पर भी उसे ज़बरदस्ती खिलाकर ही मानते हैं। हम रोटी खिलाकर जिसका क़र्ज़ उतारने की कोशिश करते हैं उसे उसकी ज़रूरत ही नहीं होती, जबकि पास ही किसी अन्य व्यक्ति को उसकी सख़्त ज़रूरत होती है। किसी दुर्घटना में घायल होने पर यदि कोई व्यक्ति हमारी मदद करता है तो क्या हमें उसका बदला उतारने की कोशिश में रहना चाहिए या फिर ये संकल्प लेना चाहिए कि मैं जहां कहीं भी किसी घायल व्यक्ति को देखूंगा हर हाल में उसकी मदद करूंगा?

कोई हमारी मदद करता है अथवा हमें प्रसन्नता का अवसर प्रदान करता है तो हम उसके बजाय किसी अन्य को भी प्रसन्नता प्रदान करने अथवा उसकी मदद करने का प्रयास कर सकते हैं। यदि कोई भी हमारी मदद नहीं करता अथवा हमारे जीवन में प्रसन्नता के क्षण लाने का प्रयास नहीं करता तो भी हमें दूसरों की मदद करने अथवा दूसरों के जीवन में प्रसन्नता के क्षण लाने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि इसी में वास्तविक प्रसन्नता निहित है। जिसने हमारी मदद की, लोग प्रायः करते ही रहते हैं, यदि उसको हमारी मदद की ज़रूरत नहीं है तो उसकी बेवजह मदद करने के बजाय किसी अन्य ज़रूरतमंद की सहायता करना बेहतर होगा। अन्य की कोई परिभाषा अथवा सीमा नहीं होती। यदि प्रसन्नता का ये चक्र एक बार प्रारंभ हो जाता है तो एक दिन सारा समाज प्रसन्नता से सराबोर हो जाएगा। जब सारा समाज प्रसन्नता से सराबोर हो जाएगा तो कोई ताक़त नहीं जो हमें प्रसन्न होने से रोक दे।

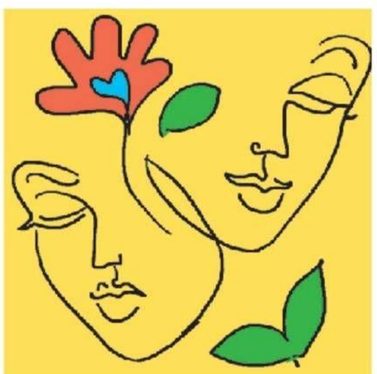
कोई हमें प्रसन्नता प्रदान करता है तो हम उसे भी प्रसन्नता लौटाएं इसका विरोध नहीं किया जा रहा है, लेकिन हम स्वयं भी क्यों नहीं प्रसन्नता बांटने की पहल करें? यदि संसार में सबसे प्रसन्न व्यक्ति हैं तो वे ही हैं जो दूसरों के चेहरों पर मुस्कान लाने का कार्य करते हैं।

बिखेरते रहें प्रसन्नता के बीज



अमेरिका के कर्नल ऑल्कार्ट के साथ मिलकर थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना करने वाली रूसी महिला हेलन पेत्रोव्ना ब्लावात्स्की की याद आ रही है— हेलन पेत्रोव्ना ब्लावात्स्की ने पूरी दुनिया की सैर की और इस घुमक्कड़ी में एक थैला हमेशा उनके साथ होता था। उनके इस थैले में रंग-बिरंगे, ख़ुशबूदार फूलों के बीज भरे होते थे। मैडम ब्लावात्स्की जहां कहीं से भी गुज़रतीं और ख़ाली ज़मीन पातीं वहीं वे फूलों के कुछ बीज मिट्टी में दबा देतीं। लोग उनसे पूछते कि जब ये बीज उगेंगे तथा पौधे बड़े होकर फूलों से लद जाएंगे तब उन फूलों की ख़ुशबू और रंगों का आनंद लेने के लिए तो आप यहां नहीं होंगी। मैडम ब्लावात्स्की जवाब देतीं, 'यदि मैं इन फूलों को देखकर आनंदित नहीं हो पाऊंगी तो क्या? आप सब तो इन फूलों को देखकर अवश्य प्रसन्न होंगे। अन्य जो लोग उस समय यहां आएंगे वे तो आनंदित होंगे। फूल तो सब लोगों के लिए खिलेंगे और अपनी सुगंध बिखेरेंगे।' दूसरों के जीवन में आनंद भर देने का निरंतर प्रयास करने वाले व्यक्ति को लोग कभी नहीं भुला सकते।

लेना पड़ेगा और लौटाना भी



हमें भी यदि वास्तविक प्रसन्नता चाहिए तो संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठकर अस्तित्व को विराट बनाना होगा व अपने पोषित अहंकार को नष्ट करना होगा। कोई किसी भी रूप में हमारी सहायता करता है तो उसके प्रति कृतज्ञता का भाव तो होना चाहिए, लेकिन उसको उतारने व कुछ ज़्यादा देने के अहंकार से हमें पूर्णतः मुक्त होना चाहिए और जिनको हमारी सहायता की ज़रूरत है उनके लिए हमें बिना भेदभाव के आगे आना चाहिए।

जहां तक किसी से प्राप्त सहायता अथवा व्यवहार द्वारा प्रसन्नता की बात है ये प्रसन्नता स्थायी नहीं हो सकती। परिस्थितियों के बदलते ही प्रसन्नता का लोप होना भी स्वाभाविक है। जब हम स्वयं में दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने की भावना विकसित कर लेते हैं तो हमारे अंदर प्रसन्नता का अजस्र स्रोत प्रवाहित होने लगता है। इसलिए कोई हमें सहयोग करे या न करे, किसी से हमें प्रसन्नता मिले या न मिले, हमें दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने के अवसरों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। इसी में निहित है वास्तविक प्रसन्नता का सूत्र।

पंडित जी को पैसे लौटाने थे, वे इसके लिए आतुर थे। यजमान को लेने थे, पर वे इच्छुक न थे। सांसारिक दृष्टि से मामला ही उल्टा हो गया था। तिस पर बीच में आ गया एक झूठ, जिसने 'झूठे' की इज़्ज़त बढ़ा दी...

यह कालजयी कहानी इस सार्वकालिक सत्य की अनुभूति कराती है कि अच्छाई का आनंद अनूठा होता है।



– सुदर्शन

• **जन्म :** 1895 • **निधन :** 1967 • **वास्तविक नाम :** पं. बद्रीनाथ भट्ट।

सुधारवादी दृष्टिकोण रखने वाले सुदर्शन ने अपनी कहानियों में प्राय: समस्याओं का आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया है। उनकी लिखी 'हार की जीत' कहानी बहुत लोकप्रिय है। उन्होंने कई फिल्मों की पटकथा और गीत भी लिखे।



अलबम

पंडित शादीराम ने ठंडी सांस भरी और सोचने लगे- क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा? वे निर्धन थे, परंतु दिल के बुरे न थे। वे चाहते थे कि चाहे जिस भी प्रकार हो, अपने यजमान लाला सदानंद का रुपया अदा कर दें। उनके लिए एक-एक पैसा मोहर के बराबर था। अपना पेट काटकर बचाते थे, परंतु जब चार पैसे इकट्ठे हो जाते तो कोई ऐसा ख़र्च निकल आता कि सारा रुपया उड़ जाता। शादीराम के हृदय पर बर्छियां चल जाती थीं। उनका हाल वही होता था जो उस डूबते हुए मनुष्य का होता है जो हाथ-पांव मारकर किनारे तक पहुंचे और किनारा टूट जाए। उस समय उसकी दशा कैसी करुणाजनक, कैसी हृदयबेधक होती है। वह प्रारब्ध को गालियां देने लगता है। यही दशा शादीराम की थी।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए, शादीराम ने पैसा बचा-बचाकर अस्सी रुपये जोड़ लिए। उन्हें लाला सदानंद को पांच सौ रुपये देने थे। इन अस्सी रुपये की रक़म से ऋण उतारने का समय निकट प्रतीत हुआ। आशा धोखा दे रही थी। एकाएक उनका छोटा लड़का बीमार हुआ और लगातार चार महीने बीमार रहा, पैसा-पैसा करके बचाए हुए रुपये दवा-दारू में उड़ गए। पंडित शादीराम ने सिर पीट लिया। अब चारों ओर फिर अंधकार था। उसमें प्रकाश की हल्की-सी किरण भी दिखाई न देती थी। उन्होंने ठंडी सांस भरी और सोचने लगे- क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा?

लाला सदानंद अपने पुरोहित की विवशता जानते थे और न चाहते थे कि वह रुपये देने का प्रयत्न करें। उन्हें इस रक़म की रत्तीभर भी परवाह न थी। उन्होंने इसके लिए कभी तक़ाज़ा तक नहीं किया, न कभी शादीराम से इस विषय की बात छेड़ी। इस बात से वे इतना डरते थे मानो रुपये स्वयं उन्हीं को देने हों, परंतु शादीराम के हृदय में शांति न थी। प्रायः सोचा करते कि ये कैसे भलेमानस हैं जो अपनी रक़म के बारे में मुझसे बात तक नहीं करते। ख़ैर, ये कुछ नहीं करते सो ठीक है, परंतु इसका तात्पर्य यह थोड़े ही है कि मैं निश्चिंत हो जाऊं।

उन्हें लाला सदानंद के सामने सिर उठाने का साहस न था। उन्हें ऋण के बोझ ने नीचे झुका दिया था। यदि लाला सदानंद ऐसी सज्जनता न दिखाते और शादीराम को बार-बार तक़ाज़ा करके तंग करते तो उन्हें ऐसा मानसिक कष्ट न होता। हम अत्याचार का सामना सिर उठाकर कर सकते हैं, परंतु भलमनसी के सामने आंखें नहीं उठतीं।

एक दिन लाला सदानंद किसी काम से पंडित शादीराम के घर गए और उनकी अलमारी में से कई सौ बांग्ला, हिंदी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं की मासिक पत्रिकाएं देखकर बोले- 'यह क्या!'

पंडित शादीराम ने पैर के अंगूठे से ज़मीन कुरेदते हुए उत्तर दिया-'पुरानी पत्रिकाएं हैं। बड़े भाई को पढ़ने का बड़ा चाव था। वे प्रायः मंगवाते रहते थे। जब जीते थे तो किसी को हाथ न लगाने देते थे। अब इन्हें कीड़े खा रहे हैं।'

'रद्दी में क्यों नहीं बेच देते?'

कथा विरासत... अलबम... जारी...



'इनमें चित्र हैं। जब कभी बच्चे रोने लगते हैं तो एक साथ निकालकर देता हूं। इससे उनके आंसू थम जाते हैं।'

लाला सदानंद ने आगे बढ़कर कहा– 'दो-चार परचे दिखाओ तो।'

पंडित शादीराम ने कुछ परचे दिखाए। हरएक परचे में कई-कई सुंदर और रंगीन चित्र थे। लाला सदानंद कुछ देर तक उलट-पुलटकर देखते रहे। सहसा उनके हृदय में एक विचित्र विचार उठा। चौंककर बोले– 'पंडित जी!'

'कहिए।'

'ये चित्र कला-सौंदर्य के अति उत्तम नमूने हैं। अगर किसी शौक़ीन को पसंद आ जाए तो हज़ार, दो हज़ार रुपये कमा लो।

पंडित शादीराम ने एक ठंडी सांस लेकर कहा– 'ऐसे भाग्य होते तो यों धक्के न खाता फिरता।'

लाला सदानंद बोले– 'एक काम करो।'

'क्या?'

'आज बैठकर इन पत्रिकाओं में जितनी अच्छी-अच्छी तसवीरें हैं सबको छांटकर अलग कर लो।'

'बहुत अच्छा।'

'जब यह कर चुको तो मुझे बता देना।'

'आप क्या करेंगे?'

'मैं इनका अलबम बनाऊंगा और तुम्हारी ओर से विज्ञापन दे दूंगा। संभव है, यह विज्ञापन किसी शौक़ीन के हाथ पड़ जाए, और तुम चार पैसे कमा लो।'

पंडित शादीराम को यह आशा न थी कि कोयलों में हीरा मिल जाएगा। घोर निराशा ने आशा के द्वार चारों ओर से बंद कर दिए थे। वे उन हतभाग्य मनुष्यों में से थे जो संसार में असफल और केवल असफल रहने के लिए उत्पन्न होते हैं। सोने को हाथ लगाते थे तो वह भी मिट्टी हो जाता था। उनकी ऐसी धारणा ही नहीं, पक्का विश्वास था कि यह प्रयत्न भी कभी सफल न होगा। परंतु लाला सदानंद के आग्रह से दिनभर बैठकर तस्वीरें छांटते रहे।

न मन में लगन थी, न हृदय में चाव। परंतु लाला सदानंद की बात को टाल न सके। शाम को देखा, दो सौ एक-से-एक बढ़िया चित्र हैं। उस समय उन्हें देखकर वे स्वयं उछल पड़े। उनके मुख पर आनंद की आभा नृत्य करने लगी, जैसे फेल हो जाने का विश्वास करके अपने प्रारब्ध पर रो चुके विद्यार्थी को पास हो जाने का तार मिल गया। उस समय वह कैसा प्रसन्न होता है। चारों और कैसी विस्मित और प्रफुल्लित दृष्टि से देखता है। यही अवस्था पंडित शादीराम की थी। वे उन चित्रों की ओर इस तरह से देखते थे मानो उनमें से प्रत्येक दस-दस का नोट हो। बच्चों को उधर देखने न देते थे। वे सफलता के विचार से ऐसे प्रसन्न हो रहे थे, जैसे सफलता प्राप्त हो चुकी हो, यद्यपि वह अभी कोसों दूर थी। लाला सदानंद की आशा उनके मष्तिष्क में निश्चय का रूप धारण कर चुकी थी।

लाला सदानंद ने चित्रों को अलबम में लगवाया और कुछ उच्च कोटि के समाचार पत्रों में विज्ञापन दे दिया। अब पंडित शादीराम हर समय डाकिये की प्रतीक्षा करते रहते थे। रोज़ सोचते थे कि आज कोई चिट्ठी आएगी।

दिन बीत जाता, और कोई उत्तर न आता था। रात को आशा सड़क की धूल की तरह बैठ जाती थी, परंतु दूसरे दिन लाला सदानंद की बातों से टूटी हुई आशा फिर बंध जाती थी, जिस प्रकार गाड़ियां चलने से पहले दिन की बैठी हुई धूल हवा में उड़ने लगती है। आशा फिर अपना चमकता हुआ मुख दिखाकर दरवाज़े पर खड़ा कर देती थी, डाक का समय होता तो बाज़ार में ले जाती और वहां से डाकख़ाने पहुंचती थी। इस प्रकार एक महीना बीत गया, परंतु कोई पत्र न आया। पंडित शादीराम सर्वथा निराश हो गए। परंतु फिर भी कभी-कभी सफलता का विचार आ जाता था, जिस प्रकार अंधेरे में जुगनू की चमक निराश हृदयों के लिए कैसी जीवनदायिनी, कैसी हृदयहरिणी होती है। इसके सहारे भूले हुए पथिक मंज़िल पर पहुंचने का प्रयत्न करते और कुछ देर के लिए अपना दुःख भूल जाते हैं। इस झूठी आशा के अंदर सच्चा प्रकाश नहीं होता, परंतु यह दूर के संगीत के समान मनोहर अवश्य होती है। इसमें वर्षा की नमी हो या न हो, इससे काली घटा का जादू कौन छीन सकता है। आख़िर एक दिन शादीराम के भाग्य जागे। कलकत्ता के एक मारवाड़ी सेठ ने पत्र लिखा कि अलबम भेज दो, यदि पसंद आ गया तो ख़रीद लिया जाएगा। मूल्य की कोई चिंता नहीं, चीज़ अच्छी होनी चाहिए। यह पत्र उस करवट के समान था जो सोया हुआ मनुष्य जागने से पहले बदलता है और उसके पश्चात उठकर बिस्तर पर बैठ जाता है। यह किसी पुरुष की करवट न थी, किसी स्त्री की करवट न थी, यह भाग्य की करवट थी। पंडित शादीराम दौड़ते हुए लाला सदानंद के पास पहुंचे और उन्हें पत्र दिखाकर बोले– 'भेज दूं?'

लाला सदानंद ने पत्र को अच्छी तरह देखा और उत्तर दिया– 'रजिस्टर्ड कराकर भेज दो। शौक़ीन आदमी है, ख़रीद लेगा।'

'और मूल्य?'

'लिख दो, एक हज़ार रुपये से कम पर सौदा न होगा।'

कुछ दिन बाद उन्हें उत्तर में एक बीमा मिला। पंडित शादीराम के हाथ-पैर कांपने लगे। परंतु हाथ-पैरों से अधिक उनका हृदय कांप रहा था। उन्होंने जल्दी से लिफ़ाफ़ा खोला और उछल पड़े। उसमें सौ-सौ रुपये के दस नोट थे। पहले उनके भाग्य ने करवट बदली थी, अब वह पूर्ण रूप से जाग उठा। पंडित शादीराम खड़े थे, बैठ गए। सोचने लगे– अगर दो हज़ार रुपये लिख देता तो शायद उतने ही मिलते।

सायंकाल के समय वे लाला सदानंद के पास गए और पांच सौ रुपये के नोट सामने रखकर बोले– 'परमात्मा का धन्यवाद है कि मुझे इस भार से छुटकारा मिला। आपने जो दया और सज्जनता दिखाई है उसे मैं मरणपर्यंत न भूलूंगा।'

लाला सदानंद ने विस्मित होकर पूछा– 'पंडित जी! क्या सेठ ने अलबम ख़रीद लिया?'

'जी हां! नहीं तो मुझ निर्धन ब्राह्मण के पास क्या था जो आपका ऋण चुका देता? परमात्मा ने मेरी सुन ली।'

'मैं पहले भी कहना चाहता था, परंतु हिचकिचाता था कि आपके हृदय को ठेस न पहुंचे। पर अब यह भय नहीं है क्योंकि रुपये आपके हाथ हैं। मेरा विचार है कि आप रुपये अपने पास रखें। आपका यजमान हूं। मेरा धर्म है कि मैं आपकी सेवा करूं।'

पंडित जी की आंखों में आंसू आ गए, दुपट्टे से पोंछते हुए बोले– 'आप जैसे सज्जन संसार में बहुत थोड़े हैं। परमात्मा आपको चिरंजीवी रखें। अब तो मैं ये रुपये न लूंगा। इतने वर्ष आपने मांगे तक नहीं, यह उपकार कोई थोड़ा नहीं है। मुझे इससे उऋण होने दीजिए। ये पांच सौ रुपये देकर मैं हृदय की शांति ख़रीद लूंगा।'

निर्धन ब्राह्मण की यह उदारता और सच्चरित्रता देखकर सदानंद का मन-मयूर नाचने लगा। उन्होंने नोट ले लिए। मनुष्य रुपये देकर भी ऐसा प्रसन्न हो सकता है, इसका अनुभव उन्हें पहली ही बार हुआ। पंडित जी के चले जाने के बाद उन्होंने अपनी आंखें बंद कर लीं और किसी विचार में मग्न हो गए। इस समय उनके मुखमंडल पर एक विशेष आत्मिक तेज था।

छह मास बीत गए।

लाला सदानंद बीमार थे। ऐसे बीमार वे सारी आयु में न हुए थे। पंडित शादीराम उनके लिए दिन-रात माला ही फेरा करते थे। वे वैद्य न थे, डॉक्टर न थे। वे ब्राह्मण थे, उनकी औषधि माला फेरना थी, और यह काम वे आत्मा की पूरी शक्ति, अपने मन की पूरी श्रद्धा से करते थे। उन्हें औषधि की अपेक्षा आशीर्वाद और प्रार्थना पर अधिक भरोसा था।

एक दिन लाला सदानंद चारपाई पर लेटे थे। उनके पास उनकी बूढ़ी मां उनके दुर्बल और पीले मुख को देख-देखकर अपनी आंखों के आंसू अंदर पी रही थीं। थोड़ी दूर पर एक कोने में उनकी नवोढ़ा स्त्री घूंघट निकाले खड़ी थी और देख रही थी कोई काम ऐसा तो नहीं जो रह गया हो। पास पड़ी हुई चौकी पर बैठकर पंडित शादीराम रोगी को भगवद्गीता सुना रहे थे।

एकाएक लाला सदानंद बेसुध हो गए। पंडित जी ने गीता छोड़ दी और उठकर उनके सिरहाने बैठ गए। स्त्री गर्म दूध लेने के लिए बाहर दौड़ी और मां अपने बेटे को घबराकर आवाज़ देने लगी। इस समय पंडित जी को रोगी के सिरहाने के नीचे कोई कड़ी-सी चीज़ चुभती हुई जान पड़ी। उन्होंने नीचे हाथ डालकर देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही, वह सख़्त चीज़ वही अलबम थी, जिसे किसी सेठ ने नहीं, बल्कि स्वयं लाला सदानंद ने ख़रीद लिया था।

पंडित शादीराम इस विचार से बहुत प्रसन्न थे कि उन्होंने सदानंद का ऋण उतार दिया है। परंतु यह जानकर उनके हृदय पर चोट-सी लगी कि ऋण उतारा नहीं, बल्कि पहले से दूना हो गया है।

उन्होंने अपने बेसुध यजमान के पास बैठे-बैठे एक सांस भरी और सोचने लगे– क्या यह ऋण कभी न उतरेगा?

कुछ देर बाद लाला सदानंद को होश आया। उन्होंने पंडित जी से अलबम छीन लिया और कहा– 'यह अलबम सेठ साहब से अब मैंने मंगवा लिया है।'

पंडित जी जानते थे कि यजमान जी झूठ बोल रहे हैं। परंतु वे उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक सज्जन, अधिक उपकारी और अधिक ऊंचा समझने लगे थे।



मज़ाक़ नहीं हैं चुटकुले

लतीफ़े हंसाते हैं और सुकून का एहसास कराते हैं। जीवन की जड़ता, एकरसता और तनाव को एक झटके में तोड़ डालते हैं ये। इनमें हंसने-हंसाने के ढेर सारे व्यक्तिगत और सामाजिक लाभ निहित हैं। इतनी ख़ूबियां होना कोई मज़ाक़ की बात नहीं है।

- डॉ. लोकेन्द्रसिंह कोट

जीवन कभी-कभार भारी-भरकम भी हो जाता है। इसलिए उसे समय-समय पर हल्का करना आवश्यक है, नहीं तो तनाव और दबाव उत्पन्न होता है। तनाव और दबाव न हटे तो उसका भार हमें धीरे-धीरे असंवेदनशील, एकाकी और जड़वत कर देता है। हमें गुदगुदाकर, हंसाकर तनाव और जड़ता को दूर करने का माद्दा रखते हैं चुटकुले।

1 जुलाई को चुटकुलों का अंतरराष्ट्रीय दिवस है। इस मौक़े पर आइए, मानव जाति के लिए इनकी ज़रूरत और अहमियत पर एक नज़र डालते हैं।



मखमल वाली छड़ी से चोट

सोलहवीं सदी के ब्रिटिश दार्शनिक थॉमस हॉब्स का कहना था कि लतीफ़ों का हास्य-व्यंग्य असल में कमज़ोर का मज़ाक़ उड़ाना और अपनी श्रेष्ठता दिखाना होता है। हालांकि अब दुनिया बदल गई है और अधिकांश विशेषज्ञ की थ्योरी से इत्तेफ़ाक़ नहीं रखते। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक एवनर ज़िव ने हास्यबोध पर किताब लिखी है- 'पर्सनैलिटी एंड सेंस ऑफ ह्यूमर'। वे कहते हैं कि कॉमेडी के ज़रिए मज़ाक़-मज़ाक में समाज में सुधार की कोशिश की जाती है। ईरानी मूल की अमेरिकी कॉमेडियन नेगिन फरसाद एवनर अपनी किताब 'हाऊ टू मेक पीपुल लाफ़' में लिखती हैं कि समाज के बुरे चलन का मज़ाक़ बनाकर, उस पर व्यंग्य से कड़ी चोट करके बदलाव का रास्ता निकाला जा सकता है। व्यंग्यात्मक लतीफ़े इसी विधा का उच्चतर स्तर हैं जहां मखमल लपेटी छड़ी से व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति पर हंसी-मज़ाक़ में चोट की जाती है।

इस विषय में शोधकर्ता न्यूरोसाइंटिस्ट स्कॉट वीम्स कहते हैं कि चुटकुलों के माध्यम से हंसी-मज़ाक़ ऐसा ज़रिया है जिससे हम इंसानों को हर बार दूसरे को छड़ी से मारने की ज़रूरत नहीं पड़ती। हम मज़ाक़ उड़ाकर उसे सता लेते हैं। वो बताते हैं कि हमारे दिमाग़ का जो हिस्सा हंसी-मज़ाक़ को समझता है, वह बहुत पेचीदा और घुमावदार आयामों को समझने का भी काम करता है। यानी मज़ाक़ करना और मज़ाक़ समझना कोई हंसी-खेल नहीं! हंसी-मज़ाक़ के ज़रिए हम मुश्किल बातों या ख़यालों के जाल से निकलने की कोशिश करते हैं।

बहुत फ़ायदे की है हंसी

लंदन के यूनिवर्सिटी कॉलेज की प्रोफ़ेसर सोफ़ी स्कॉट कहती हैं कि चुटकुले सुनकर हंसी के ज़रिए हमारा अवचेतन मन ये संकेत देता है कि हम सुकून में हैं और सुरक्षित महसूस कर रहे हैं। शोध बताते हैं कि जब हमारा दिमाग़ सुकून में होता है तो हमारे ज़ेहन में ज़्यादा अच्छे विचार आते हैं। हम खुलकर काम करते हैं और बेहतर नतीजे देते हैं, हम ज़्यादा रचनात्मक भी हो जाते हैं। एक रिसर्च के दौरान कुछ लोगों को कॉमेडियन रॉबिन विलियम्स का मज़ाक़िया वीडियो दिखाया गया। इसके बाद देखा गया कि उन लोगों ने दूसरे ग्रुप के मुकाबले एक पहेली अधिक आसानी से हल कर ली।

अमेरिका की वेंडरबिल्ट यूनिवर्सिटी का अनुसंधान बताता है कि अगर आप हर रोज़ 10 से 15 मिनट तक खुलकर हंसते हैं तो 10 से 40 फ़ीसद तक कैलोरी बर्न हो जाती हैं। इसी तरह इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमर रिसर्च के मुताबिक़ यदि कोई व्यक्ति दिन में 30 मिनट हंस ले तो जिम जाने फ़ायदे उसे ऐसे ही मिल जाएंगे। ऐसा भी कहा जाता है कि हृदय के लिए कोई विशेष व्यायाम नहीं है, लेकिन हंसने से दिल की एक्सरसाइज़ होती है और रक्त संचार बेहतर होता है। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के मनोवैज्ञाकिन रॉबिन डनबर कहते हैं, हंसने पर हमारे फेफड़े फूलते-पिचकते हैं। ऐसा होने पर पर मस्तिष्क के एंडॉर्फिन सिस्टम पर सकारात्मक असर पड़ता है। नतीजा, इंसान ख़ुद को काफ़ी आरामदेह स्थिति में पाता है। तनाव हॉर्मोन में भी कमी आती है और तनाव घटने लगता है।

समूह में सुनना ज़्यादा मज़ेदार

चुटकुलों का केंद्रीय उद्देश्य है हंसी। हास्य की भावना सबसे महत्वपूर्ण गुणों में से एक है। जो लोग मज़ाक़ करने और लोगों को हंसाने में सक्षम हैं वे अपने और दूसरों के लिए दर्दनिवारक बाम की तरह हैं। यह एक विशिष्ट मानवीय पहचान है, क्योंकि मोटे तौर जानवर भी वह सब कर लेते हैं जो इंसान करता है, बस, वे खुलकर हंस नहीं सकते।

हंसी वास्तव में संक्रामक बीमारी की तरह है। आदमी के दिमाग़ की जांच से यह भी पता चलता है कि हंसी फैलती है। यहां तक कि जब कोई किसी बेवजह की बात पर भी हंसता है तो इसमें उसका दिमाग़ भी सक्रिय हो जाता है और आस-पड़ोस में बैठे अनजान लोग भी हंस देते हैं। यदि किसी ठहाका मारकर हंसते हुए व्यक्ति को आप देखते हैं तो आपकी ग्रंथियां सक्रिय हो उठती हैं और आपके होंठों पर कम से कम मुस्कराहट तो खिल ही उठती है। यही कारण है कि लतीफ़े पढ़कर अकेले में हंसने के बजाय समूह के साथ उन्हें सुनना ज़्यादा मज़ेदार अनुभव होता है।

दरअसल, चुटकुले सुनाना भी एक कला है, जिसमें आवाज़ का उतार-चढ़ाव और बॉडी लैंग्वेज मायने रखती है। कई बार चुटकुले में दम नहीं होता है परंतु उसे सुनाने का ढंग मज़ेदार होता है तो वही चुटकुला सार्थक हंसी उत्पन्न कर देता है।

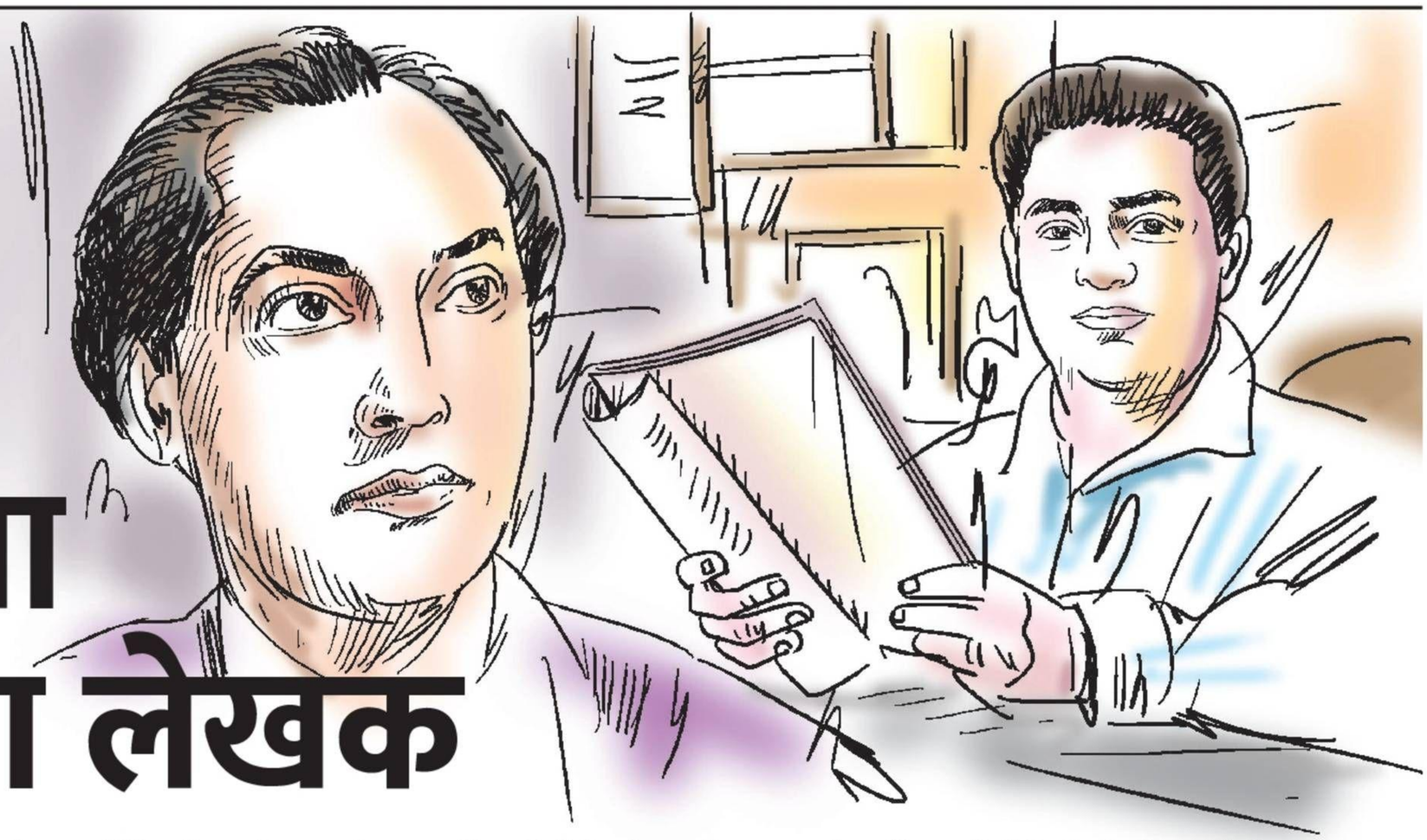
चुटकुलों की दुनिया हमारे बाक़ी के कार्य-व्यापार के साथ-साथ, समानांतर चल रही है, बढ़ रही है और निरंतर क़ायम है। इसे मनोरंजन के किसी भी अन्य माध्यम से कोई ख़तरा नहीं है। सबसे पुरानी प्रचलित जोक बुक फिलोजेलोस (ग्रीक फॉर द लाफ्टर-लवर) है, जो 265 चुटकुलों का एक संग्रह है, जो चौथी या पांचवीं शताब्दी ईस्वी के यूनान में लिखा गया है।

हम चाहे जितनी भी तकनीकी तरक़्क़ी कर लें, हंसने का कार्य तो हम वैसे ही करेंगे। हमें गंभीर ही नहीं बने रहना है, बल्कि ज़िंदगी से कुछ लम्हे चुराकर हंसना-हंसाना है, हास्य-रस का लुत्फ़ उठाना है तो निश्चय ही चुटकुले हमारे मनोरंजन के सबसे बड़े और सर्वसुलभ साथी सिद्ध होंगे।

फिल्म निर्माता और पटकथा लेखक के बीच 'अच्छी कहानी' के प्रश्न पर हाथापाई हो गई और अंतत: निर्माता को लेखक की बात माननी पड़ी।

बॉलीवुड की पुरानी परतें खोलता एक अनोखा प्रसंग...

— अजय कुमार शर्मा



जब निर्माता से लड़ गया लेखक

1937 का दौर। तब बॉम्बे टॉकीज़, न्यू थियेटर्स और प्रभात फिल्म कंपनी ही देश की सर्वश्रेष्ठ फिल्म कंपनियां समझी जाती थीं। प्रसिद्ध निर्माता, निर्देशक, लेखक और अभिनेता किशोर साहू अपने आरंभिक दिनों में सभी स्टूडियो के चक्कर लगाने के बाद निराश होकर जब बॉम्बे टॉकीज़ पहुंचे तो उसका स्तर देखकर चकरा गए। मलाड के पास स्थित स्टूडियो का पूरा परिसर ऊंची-ऊंची दीवारों से घिरा हुआ था। जगह-जगह क्यारियां थीं जिनमें गुलाब सहित कई मौसमी फूल लगे हुए थे। पूरा परिसर सात एकड़ का था। दक्षिण में स्टूडियो था और पूर्व की तरफ़ एक दुमंज़िला आलीशान बंगले में इस कंपनी के मालिक हिमांशु राय रहते थे और वहीं उनका दफ़्तर था। दफ़्तर भी बहुत आधुनिक और सुंदर था। फिल्म कंपनी में हिमांशु राय के अलावा उनकी पत्नी देविका रानी (नायिका), अशोक कुमार (नायक) भी थे।

आख़िर यह जगह किशोर साहू को भा गई। उन्होंने तुरंत ही तय किया कि वे बॉम्बे टॉकीज़ में ही काम हासिल करेंगे। पर कैसे? किसी तरह उन्होंने हिमांशु राय से मुलाक़ात की जिनकी उम्र उस समय लगभग 45 वर्ष थी। एक घंटे चली इस पहली भेंट में सामान्य बातचीत हुई और राय ने उन्हें 20 दिन बाद आकर मिलने को कहा। हां, उन्होंने किशोर साहू के इस निवेदन को मान लिया कि वे बंबई में अकेले हैं और उनके पास कुछ ख़ास काम नहीं है, सो अगर उन्हें एक पास जारी कर दिया जाए तो वे प्रतिदिन स्टूडियो घूम सकते हैं। लौटते समय अचानक उनकी मुलाक़ात अशोक कुमार से हो गई और मध्य प्रांत का होने के कारण इस पहली मुलाक़ात में ही उनका अच्छा परिचय हो गया। आने वाले दिनों में यह परिचय और प्रगाढ़ हुआ। दोपहर में वे उनके साथ कैंटीन चले जाते। इस दौरान आते-जाते उनकी देविका रानी से भी कई मुलाक़ातें हुईं।

इस समय बॉम्बे टॉकीज़ की फिल्म 'नई कहानी' रिलीज़ हुई थी जो कि बहुत अच्छी नहीं चली थी। इस बीच कई हफ़्ते गुज़र गए, पर हिमांशु राय ने उनसे जो बातचीत का वादा किया था उसके लिए नहीं बुलाया। इसी दरम्यान वहां एक पौराणिक कथा 'सावित्री' पर फिल्म बनाने का निर्णय लिया गया। देविका रानी सावित्री और अशोक कुमार सत्यवान की भूमिका कर रहे थे। इस फिल्म में किशोर साहू ने भी एक छोटा-सा रोल किया। इस बीच ख़ाली समय में वे कविताएं और कहानी लिखते रहे। फिल्म के लिए कहानी भी सोचते रहते थे और एक पटकथा भी लिखने लगे। लिखने का शौक़ उन्हें कॉलेज के समय से ही था। सावित्री फिल्म भी असफल रही। इस तरह 'अछूत कन्या' के बाद बॉम्बे टॉकीज की तीन-चार फिल्में लगातार फ्लॉप हो गईं। इससे हिमांशु राय और अन्य मालिक राय बहादुर चुन्नीलाल चिंतित हो गए। फिर तय किया गया कि स्टूडियो से जुड़े कहानी के स्थायी लेखक निरंजन पाल पर निर्भर न रहकर बाहर से कहानी ली जाए। इसी दौरान हिमांशु राय ने किशोर साहू से कहा कि देविका रानी बता रही थी, तुम्हारे पास कोई कहानी है। किशोर ने तुरंत ही उन्हें अपने पास तैयार रखी पटकथा पढ़ने को दे दी। एक हफ़्ते बाद देविका रानी ने उनसे हंसते हुए कहा कि गोल को (हिमांशु राय का नाम गुलाब था। देविका उन्हें विलायत के पुराने दिनों में पहले तो 'गोलाब दा', फिर 'गोल दा' और फिर ब्याह हो जाने पर 'गोल' कहा करती थीं।) तुम्हारी कहानी पसंद आ गई है और अगला चित्र शायद तुम्हारी कहानी पर ही बनेगा।

किशोर साहू ने अपनी आत्मकथा में इस घटना के बारे में बताया है कि दो दिन बाद हिमांशु राय ने उन्हें अपने दफ़्तर बुला भेजा। कहानी की क़ीमत के बदले किशोर ने कहा, 'कुछ नहीं सिर्फ़ आपका आशीर्वाद!' मुस्कराते हुए राय ने उन्हें हिदायत दी कि अभी यह बात किसी को बताना नहीं वरना स्टूडियो में तहलका मच जाएगा। बाहर निकलने पर देविका रानी और अशोक कुमार ने उन्हें कहानीकार कहकर बधाई देते हुए मिठाई लेकर आने को कहा। तीसरे दिन दोपहर को जब किशोर साहू हिमांशु राय के दफ़्तर में उनसे मिलने पहुंचे तो अचानक उनके कमरे से ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं। गरम मिज़ाज हिमांशु राय महीने, दो महीने में किसी न किसी पर बिगड़ते तो उनकी ऐसी आवाज़ें आती थीं। मगर आज दो व्यक्ति चिल्ला रहे थे।

आधे घंटे के बाद कमरे से राय और निरंजन पाल बाहर निकले। दोनों ग़ुस्से से लाल थे। दोनों के कपड़े जगह-जगह से फट रहे थे। दोनों तुरंत ही मोटर में बैठकर बाहर चले गए। बाद में राय के सेक्रेटरी परेरा और चपरासियों से पता चला कि दोनों में हाथापाई भी हुई थी। झगड़े का कारण किशोर साहू की कहानी का चुना जाना था जो निरंजन पाल को खटक गया था। निरंजन वहां के नियमित कहानी और संवाद लेखक थे। इस घटना के एक सप्ताह बाद हिमांशु राय ने किशोर साहू को फिर बुलाया। इस बार दफ़्तर में नहीं अपने घर पर बुलाया, रात के आठ बजे। उन्होंने उनसे सीधी बात कही कि निरंजन पाल से मेरी पुरानी दोस्ती है। हम लोग विलायत से एक-दूसरे को जानते हैं। मेरे निर्मित कई चित्रों की कहानी उन्होंने लिखी है। उन्होंने मेरा उस वक़्त साथ दिया जब मेरे पास पर्याप्त धन न था। किशोर साहू ने पूछा कि इस बात का मतलब क्या है, तब उन्होंने कहा कि निरंजन पाल से उस दिन की काफ़ी कहा-सुनी के बाद समझौता इस बात पर हुआ कि मैं उन्हें एक मौक़ा और दूं। उन्होंने तीन दिन की मोहलत मांगी और कहा कि इन तीन दिनों के भीतर वे एक नई कहानी लिखकर देंगे। अगर वह मुझे पसंद नहीं आए तो मैं किसी की भी कहानी लेकर फिल्म बना सकता हूं।

किशोर साहू ने धड़कते हुए दिल से पूछा, 'तो उन्होंने जो कहानी लिखकर दी क्या वह पसंद आई?' उधर से जवाब आया, 'हां, तुम्हारी कहानी के मुकाबले यह कहानी अच्छी है।' यह कहकर राय ने एक फाइल जिस पर 'जीवन प्रभात' लिखा हुआ था, उन्हें पकड़ा दी और कहा कि तुम इसे घर ले जाओ, रात में पढ़ डालो और सुबह मुझे बताओ कि तुम्हें भी यह पसंद आई या नहीं, कहीं मैं तुम्हारे साथ कोई गुनाह तो नहीं कर रहा? किशोर साहू ने रात में ही उस पटकथा को पढ़ डाला। उन्हें पाल की कहानी अपनी कहानी से अच्छी लगी। उनके दिल को तसल्ली हुई। वे चैन की नींद सोए और अगले दिन जब स्क्रिप्ट लौटाने पहुंचे तो हिमांशु राय का पहला सवाल यही था कि तुम्हें कहानी पसंद आई? इसे पसंद करके मैंने तुम्हारे साथ तो कोई अन्याय नहीं किया?

'जी नहीं!' किशोर का यह जवाब सुन हिमांशु राय के चहरे पर सुकून का भाव आया।

किशोर साहू जब अपनी मायूसी दबाते हुए वहां से चलने लगे तो हिमांशु राय ने उनसे कहा, 'तुम्हारी उम्र अभी कम है, इस बात को अपने दिल पर मत लेना। ज़िंदगी में ऐसे अनेक अवसर आएंगे। वैसे तुम्हें इसमें नंदलाल का चरित्र कैसा लगा?' दरअसल, इस कहानी का नायक नंदलाल ही था। साहू द्वारा 'अच्छा' कहने पर अचानक हिमांशु राय बोले, 'क्या तुम यह रोल करोगे?'

किशोर साहू चौंक गए और बोले, 'जी नंदलाल तो पिक्चर का हीरो है!'

'हां, तुम हीरो का रोल करोगे?'

'आप देंगे?'

'अगर तुम चाहो तो...'

इस तरह किशोर साहू एक कहानीकार बनते-बनते फिल्म के हीरो बन गए वह भी देविका रानी के। साढ़े तीन महीने में 'जीवन प्रभात' बनकर तैयार हो गई। फिल्म का प्रीमियर बंबई के मिनर्वा थिएटर में धूमधाम से हुआ। फिल्म सफल रही और देश के कई शहरों में इसने जुबली मनाई।



(हाल ही में अजय कुमार शर्मा की पुस्तक बॉलीवुड के अनकहे क़िस्से (संधि प्रकाशन) आई है। यह क़िस्सा उन्होंने पुस्तक से इतर, ख़ासतौर पर अहा! ज़िंदगी के लिए भेजा है। किताब में ऐसे ही रोचक, अनसुने प्रसंग हैं।)

उसी से ठंडा, उसी से गर्म

देश के राष्ट्रपति रहे डॉ. ज़ाकिर हुसैन ने बच्चों के लिए कहानियां भी लिखी हैं। उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है 'उसी से ठंडा, उसी से गर्म' उसमें एक लकड़हारा हाथों को गर्म करने के लिए फूंकता है और गर्म आलू को ठंडा करने के लिए भी फूंकता ही है। ये दोनों दैनिक जीवन की साधारण घटनाएं हैं, परंतु क्या बड़ों को भी कभी जिज्ञासा हुई कि फूंक के ऐसे परस्पर विपरीत प्रभाव क्यों होते है?





– या.ई. पेरेलमान

याकोव इसिदोरोविच पेरेलमान। रूसी लेखक, जिन्होंने विज्ञान को रुचिकर बनाने के लिए क़रीब दर्जनभर पुस्तकें और सैकड़ों लेख लिखे। 4 दिसंबर, 1882 को जन्म और 16 मार्च, 1942 को मृत्यु। उनकी तमाम पुस्तकों के हिंदी सहित विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हुए।

पंखा झलने पर निस्संदेह शीतलता का अनुभव होता है। कमरे में स्थित अन्य लोगों के लिए यह बिल्कुल हानिकर नहीं है। उल्टा, लोग ठंडी हवा के लिए आपके कृतज्ञ ही होंगे। अब देखें कि यह कहां तक सही है। पंखा झलने पर हमें शीतल क्यों लगता है? हमारे चेहरे के निकट की हवा धीरे-धीरे गर्म हो जाती है। फिर यह अदृश्य नक़ाब चेहरे को 'गर्म' करने लगती है, अर्थात शरीर से ताप- हानि की क्रिया मंद करने लगती है। यदि हमारे गिर्द हवा स्थिर है तो चेहरे के पास स्थित हवा की गर्म परत ठंडी व भारी हवा द्वारा बहुत धीरे-धीरे ऊपर की ओर विस्थापित होती है। जब हम पंखा झलते हैं तो चेहरे के पास की गर्म हवा दूर हो जाती है और दूसरी जगह की ठंडी हवा चेहरे को स्पर्श करने लगती है और हमारे शरीर की गर्मी दूर ले जाने लगती है। शीतलता की अनुभूति का यही कारण है। इसका मतलब है कि पंखा झलकर हम अपने शरीर के पास की गर्म हवा को अपेक्षाकृत ठंडी हवा द्वारा विस्थापित करते रहते हैं। पंखा हवा के स्थानांतरण की क्रिया को तेज़ कर देता है, जिससे कमरे में शीघ्र ही हवा का तापक्रम एक जैसा हो जाता है। इसका मतलब है कि पंखा वाला व्यक्ति आपने लाभ के लिए दूसरे लोगों को घेरकर रखने वाली ठंडी हवा का इस्तेमाल करता है। पंखे के सार्थक प्रभाव के लिए एक और बात का महत्व है, जिसके बारे में हम अभी बताने जा रहे हैं।

हवा में ठंड क्यों लगती है?

सभी जानते हैं कि बर्फ़ीली ठंड सहन करना आसान है, यदि हवा नहीं बह रही हो। पर सभी इसका सही कारण नहीं समझते। तेज़ हवा में अधिक ठंड की अनुभूति सिर्फ़ सजीव प्राणियों को ही होती है, थर्मामीटर का पारा हवा लगने से नीचे नहीं उतरता। बर्फ़ीली ठंड में हवा बहने पर तेज़ी से ठंडक लगने का कारण यह है कि शरीर से (विशेषकर उसके खुले भागों से) कहीं अधिक गर्मी निकलकर वातावरण में लीन हो जाती है, बनिस्बत कि शांत मौसम में जब शरीर द्वारा गर्म की गई हवा नई ठंडी हवा से इतनी जल्द विस्थापित नहीं हो पाती। हवा जितनी ही तेज़ होगी, प्रति मिनट उसकी उतनी ही अधिक मात्रा शरीर की सतह को स्पर्श करती हुई निकलेगी और इसके फलस्वरूप शरीर से प्रति मिनट ताप-हानि की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। तेज़ ठंड की अनुभूति के लिए यही पर्याप्त है।

जारी... आगामी अतीत

लेकिन एक कारण और है। हमारी चमड़ी से वाष्प के रूप में हमेशा आर्द्रता निकलती रहती है। वाष्पीकरण के लिए ताप चाहिए; वह हमारे शरीर से मिलता है और हमारे शरीर की निकटवर्ती हवा की परत से (यदि हवा स्थिर है तो) वाष्पीकरण बहुत मंद होता है, क्योंकि चमड़ी के पास की हवा वाष्प से जल्द ही संतृप्त हो जाती है (आर्द्रता से संतृप्त हवा में वाष्पीकरण की क्रिया तीव्र नहीं होती)। पर यदि हवा प्रवाहमान है और चमड़ी को स्पर्श करती हुई नई-नई हवा गुज़रती रहती है तो वाष्पीकरण की गति अपनी प्रचंडता बनाए रखती है, वह मंद नहीं होती। और इसके लिए अधिक ताप ख़र्च होता है, जो हमारे शरीर से ही खींचा जाता है। हवा की शीतकारी शक्ति कितनी बड़ी है? वह हवा के वेग और तापक्रम पर निर्भर करती है और जितना लोग सोचते हैं, उससे कहीं अधिक प्रचंड है। एक उदाहरण देता हूं, ताकि आपको इस शक्ति का कुछ अंदाज़ा मिल सके। मान लें कि हवा का तापक्रम +4° है और वह शांत है। इस परिस्थिति में हमारी चमड़ी का तापक्रम 31° होता है। यदि हल्की हवा चले, जो पताके में सिहरन-सी गति उत्पन्न करे, पर पत्तियों को नहीं हिलाए (जब हवा का वेग 2 मीटर प्रति सेकंड हो) तो चमड़ी का तापक्रम 7° नीचे उतर आता है। यदि पताका फहर रही हो, अर्थात हवा का वेग 6 मीटर प्रति सेकंड हो तो चमड़ी के तापक्रम में 22° की कमी आ जाती है; उसका तापक्रम 9° हो जाता है! ये तथ्य नि. नि. कालीचिन की पुस्तक 'चिकित्साशास्त्र में वातावरण की भौतिकी के उपयोग का आधार' से लिए गए हैं। इसमें आप अनेक रोचक बातें जान सकते हैं। अतः कितनी ठंड लग रही है, यह केवल तापक्रम पर ही नहीं, हवा के वेग पर भी निर्भर करता है।

एक ही तापक्रम पर मॉस्को की अपेक्षा लेनिनग्राद में अधिक ठंड महसूस होती है, क्योंकि वहां बाल्टिक सागर के तट पर हवा का वेग 5-6 मीटर प्रति सेकंड होता है। मॉस्को में हवा औसत वेग सिर्फ़ 4.5 मीटर प्रति सेकंड है। बैकाल झील पार ठंड सहन करना और सरल है क्योंकि वहां हवा का वेग सिर्फ 1.3 मीटर प्रति सेकंड होता है।



पानी आग क्यों बुझाता है?

इस सरल प्रश्न का उत्तर सभी नहीं जानते, इसलिए यदि मैं संक्षेप में बता दूं तो आशा है पाठक बुरा नहीं मानेंगे। प्रथमतः, पानी जलती वस्तु के संसर्ग में आकर वाष्प में परिणत हो जाता है और इस क्रिया में वह जलती वस्तु से ताप का बहुत बड़ा अंश लेकर ख़र्च कर देता है। खौलते पानी को पूरी तरह वाष्प में परिणत करने के लिए पांच गुना अधिक ताप की आवश्यकता पड़ती है, बनिस्बत कि ठंडे पानी को सौ डिग्री तक गर्म करने में।

और दूसरे : इस विधि से उत्पन्न वाष्प उसे जन्म देने वाले पानी से सैकड़ों गुना अधिक आयतन रखता है। वह जलती वस्तु को घेरकर उसके चारों तरफ़ की हवा को विस्थापित कर देता है और बिना हवा के कोई भी वस्तु नहीं जल सकती । पानी की अग्निशामक शक्ति बढ़ाने के लिए कभी-कभी उसमें बारूद मिला दिया करते हैं। पढ़कर आपको आश्चर्य होता होगा, पर बात काफ़ी बुद्धिमानी की है : बारूद बहुत जल्द जल जाती है और ढेर सारी अदहनशील गैसें बना देती है। ये गैसें जलती वस्तु को आवृत करके जलने की क्रिया में बाधा डालने लगती हैं।

मरु का ऊष्म उच्छवास

पिछले हिस्से को पढ़ने के बाद शायद पाठक कहेंगे: 'इसका मतलब कि हवा बहने पर कड़ी गर्मी में भी शीतलता का अनुभव होना चाहिए। फिर मरुभूमि के यात्री मरु के उच्छवास बात क्यों करते हैं?'

इस विरोधाभास का कारण है कि उष्णकटि की जलवायु में हवा हमारे शरीर से अधिक गर्म होती है। अतः आश्चर्य नहीं होना चाहिए वहां हवा बहने पर लोगों को शीतलता के बजाय और अधिक गर्मी महसूस होती है। वहां ताप हमारे शरीर से हवा में नहीं जाता, बल्कि उल्टा हवा से हमारे शरीर में आता है। इसीलिए हमारे शरीर की सतह को प्रति मिनट जितनी ही अधिक हवा स्पर्श करेगी, हम उतनी ही अधिक गर्मी अनुभव करेंगे। ऐसी स्थिति में शरीर से आर्द्रता के वाष्पीकरण की क्रिया तीव्र हो जाती है। पर इस क्रिया में जितना ताप ख़र्च होता है, उससे कहीं अधिक ताप शरीर को हवा से मिलता रहता है। ताप आगमन को रोकने के लिए ही मरु इलाक़े के वासी, जैसे तुर्कमान, गर्म लबादा और फर की टोपी पहनकर घूमते हैं।



झीने घूंघट से गर्मी?

दैनिक जीवन एक और प्रश्न प्रस्तुत करता है भौतिकी के लिए। स्त्रियों का कहना है कि घूंघट या परदे से गर्मी मिलती है और उनके बिना चेहरे में ठंड लगती है। पर घूंघट के महीन झीने कपड़े को देखकर, जिसमें अक्सर बड़े-बड़े छेद होते हैं, पुरुषों को विश्वास नहीं होता। वे सोचते हैं कि यह सब कल्पना का खेल है। पर यदि आप ऊपर कही गई बातों को याद करें, तो आपको इस पर संदेह नहीं होगा। छिद्र कितने भी बड़े क्यों न हों, कपड़ा हवा के आवागमन पर रोकथाम ज़रूर लगाता है। चेहरे की त्वचा को स्पर्श करने वाली हवा की परत धीरे-धीरे गर्म हो जाती है और घूंघट उसे उड़ने नहीं देता। इसीलिए जब स्त्रियां कहती हैं कि घूंघट से ठंड कम लगती है, विशेषकर जब ठंड अधिक न हो और हवा मंद हो तो इस पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं होता ।

घड़े में शीतल होता जल

यदि आपने ऐसे घड़ों को देखा नहीं होगा तो इनके बारे में पढ़ा या सुना अवश्य होगा। कच्ची मिट्टी के बने इन बरतनों की यह विशेषता है कि इनमें ढाला गया पानी कालांतर में आसपास की वस्तुओं की अपेक्षा ठंडा हो जाता है। दक्षिणी देशों में और हमारे यहां भी (क्रिम में) ऐसे बरतनों का काफ़ी प्रचलन है और अलग-अलग जगहों पर ये अलग-अलग नामों से पुकारे जाते हैं, जैसे स्पेन में इन्हें 'आलकारासा' कहा जाता और मिस्र में 'गाउला'। इन घड़ों के शीतकारी प्रभाव का रहस्य सरल है : भीतर का द्रव मिट्टी की दीवार से रिसकर बाहरी सतह पर आता है और वाष्पित होने लगता है। इस वाष्पीकरण के लिए ताप (वाष्पीकरण के गुप्त ताप) की आवश्यक मात्रा बरतन और पानी से ली जाती है, इसीलिए पानी ठंडा होने लगता है। पर यह सही नहीं है कि इन बरतनों में पानी बहुत ठंडा हो जाता है। दक्षिणी देशों के यात्री अपने वर्णन में कुछ बढ़ा-चढ़ाकर लिख दिया करते हैं। बहुत अधिक शीतन संभव ही नहीं है। ठंडा होने की क्रिया अनेक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। हवा जितनी गर्म होगी, द्रव बरतन की बाह्य सतह से उतनी ही जल्दी और उतनी ही अधिक मात्रा में वाष्पित होगा और इसके फलस्वरूप बरतन में स्थित द्रव उतना ही अधिक ठंडा होगा। शीतन परिवेशी हवा की आर्द्रता पर भी निर्भर करता है। अधिक आर्द्रता में वाष्पन मंद हो जाता है, जिससे पानी कम ठंडा होता है। इसके विपरीत, शुष्क हवा में वाष्पन तेज़ हो जाता है और इसके कारण पानी जल्दी ठंडा होने लगता है। तेज़ हवा भी वाष्पन की क्रिया को तीव्र करके पानी अधिक ठंडा कर देती है।

(लेखक की पुस्तक मनोरंजक भौतिकी- भाग 2 से साभार।)



बीमारी से बड़ा उसका 'बी'

हिपेटाइटिस बी का हौव्वा ऐसा है कि वायरस के अन्य प्रकारों से होने वाले हिपेटाइटिस पर बात कम ही हो पाती है।

इसको लेकर डर भी ज़्यादा फैलाया जाता है, जबकि इसके 0.1% मामलों में ही स्थिति चिंताजनक होती है।

...तो 28 **जुलाई को हिपेटाइटिस दिवस** पर अच्छा ही होगा कि इस रोग के बारे में सीधे-साफ़ शब्दों में काम की बातें जान लें।

– डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

प्रख्यात व्यंग्यकार और विख्यात चिकित्सक। प्रथम उपन्यास, भारतीय चिकित्सा-शिक्षा और व्यवस्था पर आधारित 'नरक-यात्रा' बेहद चर्चित हुआ। 'बारामासी', 'मरीचिका', 'हम न मरब' और 'स्वांग' को भी पाठकों और आलोचकों दोनों से बराबर मान मिला।

यूं तो हर बीमारी ख़राब होती है परंतु कुछ बीमारियों को मीडिया, चिकित्सा जगत और डॉक्टरी में व्याप्त बाज़ारी शक्तियों ने 'कल्ट फिगर' जैसा बना डाला है। हिपेटाइटिस बी का रुतबा भी ऐसा ही है। इसने पीलिया की बीमारी को अलग ही पहचान दे दी। आमजन अब पीलिया को लेकर और ज़्यादा कन्फ्यूजिया गया है।

हिपेटाइटिस बी का नाम मानो उसे डराने के काम ज़्यादा आता है। कोई इसके बारे में साफ़-साफ़ बताता नहीं, डराते सब हैं। प्रस्तुत आलेख में हिपेटाइटिस बी के बारे में कुछ साफ़-साफ़ बताने का प्रयास रहेगा। इसलिए हम तकनीकी विस्तार में न जाकर हिपेटाइटिस बी के बारे में कुछ प्रैक्टिकल बातें करेंगे।

आपके जीवन में हिपेटाइटिस बी का प्रश्न दो स्थितियों में आएगा...

एक स्थिति तो ये हो सकती है कि आप एकदम स्वस्थ थे, परंतु जांच में हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव निकल आया। पर स्वस्थ थे तो जांच ही क्यों कराई यार? हुआ यूं कि आपने रक्तदान की सोची। रक्तदाता की ख़ून जांच में पता चला कि ख़ून तो चढ़ाने लायक़ ही नहीं है क्योंकि आप हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव हैं। कहानी यह भी हो सकती है कि ऑफिस में हेल्थ चेकअप हुआ या किसी छोटी-मोटी सर्जरी से पहले आपके ख़ून की रुटीन जांचें हुईं और उसमें हिपेटाइटिस बी निकल आया। अब आप उलझ गए हैं कि मैं तो एकदम ठीक था, यह जांच करा के फालतू में फंस गया! डॉक्टर लोग डरा रहे हैं और भी टेस्ट की कह रहे हैं जबकि मुझे न तो पीलिया है, न और कोई तकलीफ़!... समझने की बात ये है कि बिना पीलिया के भी हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव निकल सकता है। आपको जाने-अनजाने कभी इस वायरस का इन्फेक्शन हुआ, परंतु आपकी इम्यूनिटी (रोग प्रतिरोधक क्षमता) इतनी बढ़िया थी कि वायरस लिवर में पहुंचकर भी हिपेटाइटिस पैदा नहीं कर पाया। अभी जो पॉज़िटिव टेस्ट आया उसका मतलब बस ये है कि बी हिपेटाइटिस वायरस आपके लिवर में मौजूद है, पर सुप्त पड़ा है, मौक़े के इंतज़ार में पड़ा हो मानो।

जारी... ताना-बाना

अब आप रिपोर्ट लेकर भटक रहे हैं कि आगे क्या करें?

कोई ठीक से गाइड ही नहीं कर रहा है तो मेरी गाइडेंस ये है कि आप अभी बीमार नहीं हैं, इस बीमारी के 'कैरियर' हैं। कैरियर का मतलब? मतलब यही कि आप बीमार न होते हुए भी यह बीमारी दूसरों को फैला सकते हैं। कैसे? रक्तदान से, संभोग के दौरान वीर्य द्वारा। तो आप भूलकर भी रक्तदान न करें, और अपने सेक्स पार्टनर का टेस्ट ज़रूर करा लें, निगेटिव निकले तो उसे हिपेटाइटिस बी का टीका ज़रूर लगवा दें। एक बात और, अब से कभी डॉक्टर को दिखाएं तो सबसे पहले यह बता दें कि हमें हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव बताया गया है। और यह भी याद रखें कि हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव केस के साथ खाना खाने, सोने, हाथ मिलाने, साथ रहने आदि से दूसरे को बीमारी नहीं फैलती।

हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव आदमी और क्या करे?

मैं कहूंगा कि वो बिल्कुल परेशान न हो। उसके शरीर में बी वायरस घुस तो गया है, परंतु वो अभी इतनी कम संख्या में है कि लिवर का कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। वहां चुपचाप पड़ा रहेगा। अभी कोई बीमारी पैदा नहीं होगी। आप हर साल ख़ून की जांच कराते रहें कि निगेटिव हुए या नहीं? एक प्रतिशत बी पॉज़िटिव केस हर साल निगेटिव होते जाते हैं। हां, एक आशंका हमेशा आपके सर पर टंगी है कि यह वायरस एक्टिव न हो उठे। तब आप हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव कैरियर नहीं रह जाते, बल्कि क्रॉनिक हिपेटाइटिस बी के केस हो जाते हैं जो एक गंभीर बीमारी है। इसका पता कैसे चलेगा? जब किसी बी पॉज़िटिव कैरियर का अकारण ही वज़न गिरने लगे, उसे हल्का बुख़ार बना रहे, जोड़ों में दर्द होने लगे, और भूख बिल्कुल न रह जाए तो वह सतर्क हो जाए। जांच कराए। डॉक्टर तय करेगा कि ये लक्षण सुप्त पड़े बी वायरस के सक्रिय हो जाने के तो नहीं? शरीर में उनकी संख्या में बढ़ोतरी तो नहीं हो रही?

और हिपेटाइटिस बी से बचने के लिए इसका वैक्सीनेशन?

हां, यह वैक्सीनेशन आजकल यूनिवर्सल वैक्सीनेशन का भाग है और बचपन में ही इसका टीका लगवाने की सलाह दी जाती है। आपको न भी लगा हो तो बाद की उम्र में कभी भी डॉक्टरी सलाह लेकर लगवा लें।

डॉक्टर कैसे यह तय करेगा?

डॉक्टर आपको आगे की कुछ और जांचें लिखेगा। ये जांचें आपके अंदर बैठे बी वायरस पर नज़र रखने वाली जांचें हैं। सबसे पहले तो वह तय करेगा कि लिवर को नुक़सान हो रहा है या नहीं? इसके लिए ख़ून की कॉमन-सी सस्ती जांचें करवाई जाती हैं -SGOT तथा SGPT। इनमें कुछ ख़राबी मिली, लिवर सेल नष्ट होने के प्रमाण मिले तो डॉक्टर आपको आगे eAg वग़ैरह किंचित महंगी जांचें लिखेगा जिनसे पता चलेगा कि ये वायरस लिवर में और भी वायरस तो पैदा नहीं कर रहे? आपके शरीर में बी वायरस की संख्या बढ़ने के प्रमाण मिले तो विशिष्ट महंगी दवाएं देनी पड़ जाएंगी और DNA वग़ैरह की जांच भी लग सकती है जो और भी महंगी है। डॉक्टर जैसी सलाह दे, जांचें कराएं। ये सक्रिय हुए वायरस लिवर को इस तरह नष्ट करते हैं कि आदमी को लिवर सिरोसिस और लिवर कैंसर जैसी असाध्य बीमारियां पैदा हो सकती हैं। तो क्रॉनिक हिपेटाइटिस के ये टेस्ट ज़रूर करा लें क्योंकि अब सवाल जीवन-मरण का है। यही राहत की बात है कि आजकल इस बीमारी का प्रभावी इलाज उपलब्ध है।

एक और ज़रूरी बात...

क्रॉनिक हिपेटाइटिस की इन जांचों को हर डॉक्टर नहीं समझ पाता। कितनी और कौन-सी जांचें करानी हैं यह किसी विशेषज्ञ डॉक्टर को ही तय करने दें जो इस बीमारी को जानता हो। अपने आसपास के किसी जनरल प्रैक्टिशनर या पैथालॉजी सेंटर से इसका पता करते न फिरें। राहत की बात ये है कि हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव के 0.1% केसेज ही क्रॉनिक हिपेटाइटिस में तब्दील होते हैं। बाक़ी केसेज जीवनभर स्वस्थ कैरियर बने रहते हैं। दूसरी स्थिति वो है कि आप बीमार पड़ गए हैं और पता चला है कि यह हिपेटाइटिस बी का इन्फेक्शन है, उसी से पीलिया हो गया है। क्या लक्षण होंगे? पेशाब पीली, आंखें पीली, भूख ख़त्म, बुख़ार और उल्टियां भी हो सकती हैं। यह सब हुआ तो आपने जांचें कराईं, उनसे पता चला कि यह कोई साधारण पीलिया नहीं, हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव पीलिया है। इस पीलिया से ठीक हो जाने के बाद आदमी हिपेटाइटिस बी पॉज़िटिव केस होकर इसका कैरियर बने रह सकता है। क्या करे वो? वहीं सब करे जो हमने उपरोक्त पहली स्थिति में समझाया था। हर साल देखे कि निगेटिव हुआ कि नहीं? वैसे ही क्रॉनिक हिपेटाइटिस के लक्षणों पर निगाह रखे और डॉक्टर द्वारा बताई जांचें कराता रहे।

बी से बड़ी है गिनती!

हिपेटाइटिस बी का वो रुतबा बन गया है कि लोग अन्य की बात ही नहीं करते। वरना हिपेटाइटिस और पीलिया पैदा करने वाले तो कुल पांच वायरस होते हैं- ए, बी, सी, डी, ई। ये सब पीलिया कर सकते हैं और मरीज़ के लक्षणों से आमतौर पर नहीं बताया जा सकता है कि पीलिया किस वायरस के कारण है। सभी में बुख़ार, पेटदर्द, जी मितलाना, कभी उल्टी या दस्त आदि हो सकता है, साथ में पीलिया भी।

परंतु जांच करके पता करना ज़रूरी है कि पीलिया किस वायरस से हुआ है। यह इसीलिए क्योंकि बी और सी हिपेटाइटिस में क्रॉनिक हिपेटाइटिस और बाद में लिवर सिरोसिस तक हो सकता है और ये दोनों वायरस ही रक्तदान, नशेड़ियों द्वारा साझा निडिल के इस्तेमाल, असुरक्षित यौन संबंध से फैलते हैं। जबकि, हिपेटाइटिस ए दूषित भोजन, गंदे पानी द्वारा फैलता है। साफ़ पानी की बुनियादी सुविधा न होने और गंदे हाथों से खान-पान तैयार करने, परोसने में हाइजीन का ख़याल न रखने से हिपेटाइटिस ए फैलता है।

हिपेटाइटिस बी और ए यदि एक ही व्यक्ति में पॉज़िटिव आ जाएं तो ऐसा पीलिया तेज़ी से बिगड़ सकता है और जानलेवा साबित हो सकता है। इनके अलावा पीलिया जैसे लक्षण इंफ्लूएंजा आदि वायरस में भी हो सकते हैं, हल्का पीलिया भी आ सकता है परंतु तेज़ी से ठीक भी हो जाता है।

पीलिया को अलग भी देखिए

पीलिया केवल वायरल हिपेटाइटिस के कारण ही नहीं होता। उसके और भी कारण हो सकते हैं : दवाइयों, कुछ कैमिकल्स ख़ासकर टीबी की कुछ दवाओं से। फिर, दारू की आदत वाले क्रॉनिकल एल्कोहलिक्स में भी पीलिया हो सकता है। पैदायशी (जेनेटिक) एनीमियाज़ में भी पीलिया हो सकता है। इनको हीमोलिटिक एनीमिया कहते हैं। निरंतर ख़ून नष्ट होने के कारण इनको एनीमिया और हल्का पीलिया हो जाता है। लंबे समय से विटामिन बी-12 की कमी वाले कितने ही लोगों में हल्का पीलिया-सा लगता है। ये लोग पीलिया की ग़लत डायग्नोसिस लेकर सालों इस भ्रम में रहते हैं कि उनका लिवर कमज़ोर है, उनको बार-बार पीलिया हो जाता है- यह पीलिया होता ही नहीं।

तो याद रहे कि हर पीलिया हिपेटाइटिस नहीं होता और हर हिपेटाइटिस, हिपेटाइटिस बी नहीं होता।

ख़तरे की ज़द में कौन हैं?

-कौन हैं जिनको हिपेटाइटिस बी की आशंका ज़्यादा होती है?

अस्पताल का हर कर्मचारी, ख़ासकर सर्जन, ओटी स्टाफ, ब्लड बैंक के लोग, नर्सें, इंजेक्शन से नशा लेने वाले, अप्राकृतिक यौन संबंध रखने वाले, हिपेटाइटिस बी कैरियर के सेक्स पार्टनर, क्रॉनिक एल्कोहलिक, वे कमज़ोर लोग जिनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो आदि- इन्हें हिपेटाइटिस बी का वैक्सीनेशन अवश्य करा लेना चाहिए।

-कौन हैं जिनको हिपेटाइटिस ए की ज़्यादा आशंका होती है?

वे बच्चे (या बड़े) जो हॉस्टल जैसी जगहों पर रहते हैं, मैस या होटलों में खाना खाते हैं। इन लोगों को हिपेटाइटिस ए होने का बड़ा ख़तरा होता है। वो यूं कि हमारे कॉलेज मैस आदि में फूड हाइजीन अक्सर संतोषजनक नहीं होती। वहां रसोइयों की नियमित स्वास्थ्य जांचें नहीं होतीं। जांचों की ख़ानापूर्ति होती हैं। वे हाथ ठीक से साफ़ नहीं करते, उनका पानी का स्रोत ज़्यादातर साफ़ नहीं होता। इन सबको प्राथमिकता के आधार पर हिपेटाइटिस ए का वैक्सीनेशन करा लेना चाहिए।



कैसा हो खान-पान?

इसे लेकर भी बड़े भ्रम हैं। कहा जाता है कि मरीज़ को हल्दी मत दो, मसाले एकदम न दो, उबला ही खिलाओ, फीकी ब्लेंड डाइट खिलाओ। यह सही नहीं। हिपेटाइटिस के ये मरीज़ लगभग सब खा सकते है, बस, (जैसा कि हम हर इन्फेक्शन में सलाह देते हैं, ख़ासकर पेट के इंफेक्शन में) खाना हल्का हो तो बेहतर।

बुनियादी सिद्धांत यह है कि जिस भोजन को मरीज़ स्वाद लेकर खा और पचा सके, वह भोजन दिया जा सकता है। परंतु रोगी को यदि भूख बिल्कुल भी न हो, वह बहुत ही कम खा रहा हो तो मिठाई वग़ैरह से कैलोरीज़ ले सकते हैं (मिठाई में कैलोरीज़ ख़ूब रहती हैं।) या इस तरह के मरीज़ों को ग्लूकोज़ बोतल चढ़वाने को कहा जा सकता है।

संक्षेप में यह समझें कि पीलिया रोगी लगभग सबकुछ खा सकता है, वह बस भारी खाने से बचे।

डाकघर में डालिए पैसा

– कौशल वर्मा
फाइनेंशियल जर्नलिज़्म में क़रीब डेढ़ दशक का अनुभव रखती हैं।



आम आदमी के लिए बचत और निवेश का पर्याय रहे हैं बैंक।
लेकिन कभी चिट्ठी और तार तक सीमित रहे डाकघर भी अब अपने बुनियादी कामों के साथ बैंक की तरह सुविधाएं दे रहे हैं- और कई मामलों में उससे बेहतर लाभ भी।



पच्चीस साल की सुधा एक निजी फर्म में मैनेजर के पद पर काम करने वाली जागरूक महिला हैं जो अपने वित्तीय निर्णय ख़ुद ही लेती हैं। उनका मानना है कि जो भी कमाई करता है उसका अपनी बचत और निवेश पर पूरा नियंत्रण होना चाहिए। बक़ौल सुधा, अगर किसी भी व्यक्ति को केवल कमाना आता है, उसे जोड़ना या सही तरीक़े से निवेश करना नहीं आता तो उसका कमाना वैसा ही है जैसे बिना तली की बाल्टी में पानी भरना। इसलिए वे बचत और निवेश योजनाओं के बारे में जानकारी बढ़ाने के साथ उनके बीच तुलना भी करती रहती हैं। इस प्रक्रिया में उन्होंने जाना कि फिक्स्ड डिपॉज़िट, रेकरिंग डिपॉज़िट, डिजिटल गोल्ड जैसी बैंक से जुड़ी तमाम योजनाओं के अलावा पोस्ट ऑफिस से भी अच्छा-ख़ासा लाभ पूरी सुरक्षा के साथ अर्जित किया जा सकता है।

सामान्यतः बैंक के मुकाबले कम ही लोग डाकघर की योजनाओं से वाकिफ़ हैं। सुधा की अपनी बचत के बदले बेहतर रिटर्न्स के लिए अन्य विश्वसनीय माध्यम ढूंढने वाले निवेशक भी ज़्यादा नहीं हैं। ऐसा भी नहीं है कि पोस्ट ऑफिस की संख्या कम है या इसकी सुविधाओं के फॉर्म ऑनलाइन उपलब्ध नहीं हैं, बस कमी जानकारी और जागरूकता की है।

सुधा ने जाना कि पोस्ट ऑफिस में निवेश करने पर बैंक से अधिक रिटर्न्स मिलते हैं और साथ ही इनकम टैक्स में भी फ़ायदा मिलता है।

दरअसल, भारतीय डाक विभाग आम लोगों की विभिन्न ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कई निवेश विकल्प प्रदान करता है। सभी पोस्ट ऑफिस बचत योजनाएं रिटर्न की गारंटी देती हैं, क्योंकि इन्हें भारत सरकार की गारंटी प्राप्त है। इसके अलावा, कई पोस्ट ऑफिस सेविंग स्कीम धारा 80C के तहत कर-मुक्त हैं और कुछ स्कीम पर डेढ़ लाख रुपये तक की राशि पर कोई टैक्स नहीं लगेगा। डाकघर बचत खाता, पांच -वर्षीय डाकघर आवर्ती जमा खाता (आरडी), डाकघर सावधि जमा खाता (टीडी), डाकघर मासिक आय योजना खाता (एमआईएस), वरिष्ठ नागरिक बचत योजना (एससीएसएस), 15 वर्षीय सार्वजनिक भविष्य निधि खाता (पीपीएफ), सुकन्या समृद्धि खाता, राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र (एनएससी), किसान विकास पत्र (केवीपी), महिला सम्मान बचत पत्र, प्रधानमंत्री बाल केयर योजना जैसी तमाम तरह की सुरक्षित बचत और निवेश योजनाएं हैं।

फिलहाल बात उन मुख्य योजनाओं की जो सबसे लोकप्रिय हैं एवं वे जिन पर रिटर्न्स भी अपेक्षाकृत ज़्यादा मिलते हैं।

डाकघर बचत खाता (बचत बैंक)

इस योजना में एकल या संयुक्त खाते पर 4.0% की वार्षिक दर से ब्याज दिया जाता है। इसमें खाता खोलने के लिए न्यूनतम राशि 500 रुपये है। नाबालिग़ की ओर से अभिभावक खाता खोल सकते है। आयकर अधिनियम 80TTA के तहत सभी बचत बैंक खातों पर 10,000 रुपये तक के ब्याज को कर योग्य आय से छूट दी गई है।

जारी... गुल्लक

पांच-वर्षीय डाकघर आवर्ती जमा

इस खाते (आरडी) पर ब्याज दर 6.7% प्रतिवर्ष (त्रैमासिक चक्रवृद्धि) है। खाता खोलने के लिए न्यूनतम राशि 100 रुपये प्रतिमाह या 10 रुपये के गुणकों में कोई राशि हो सकती है, जिसमें कोई अधिकतम सीमा नहीं है। इस खाते को एकल वयस्क, संयुक्त खाते में 3 वयस्क तक, नाबालिग़ की ओर से एक अभिभावक खोल सकते हैं। इसकी अवधि खाता खोलने की तिथि से 5 वर्ष (60 मासिक जमा) है। संबंधित डाकघर में आवेदन देकर खाते को आगे 5 वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकता है। इस विस्तार के दौरान लागू ब्याज दर वह ब्याज दर होगी जिस पर मूल रूप से खाता खोला गया था। आरडी खाते को परिपक्वता की तारीख़ से 5 साल तक बिना जमा के भी रखा जा सकता है।

डाकघर मासिक आय योजना (एमआईएस)

इस खाते की ब्याज दर 7.4% प्रतिवर्ष है एवं खाता खोलने के लिए न्यूनतम राशि 1,000 रुपये है। एकल वयस्क इस खाते को खोल सकता है। संयुक्त खाते को 3 वयस्क तक खोल सकते हैं। एक व्यक्ति एमआईएस में अधिकतम 9 लाख का निवेश कर सकता है (संयुक्त खातों में उसका हिस्सा भी शामिल है) जबकि संयुक्त खाते में 15 लाख की सीमा है। संयुक्त खाते में सभी संयुक्त धारकों के निवेश में समान हिस्सेदारी होगी। ब्याज संबंधित डाकघर या इलेक्ट्रॉनिक क्लीयरेंस सेवा (ईसीएस) में उपलब्ध बचत खाते से ऑटो क्रेडिट के माध्यम से निकाला जा सकता है। एमआईएस खाता यदि कोर बैंकिंग सॉल्यूशन (सीबीएस) डाकघर में हो तो मासिक ब्याज को किसी भी सीबीएस डाकघर में खोले गए बचत खाते में जमा किया जा सकता है।

वरिष्ठ नागरिक बचत योजना (एससीएसएस)

यह योजना सामान्यतः वरिष्ठ नागरिकों के लिए ही बनाई गई है। इसमें ब्याज दर 8.2% प्रतिवर्ष है। खाता खोलने के लिए न्यूनतम राशि 1000 रुपये है। इस खाते में अधिकतम राशि 30 लाख से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस खाते को 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति खोल सकते हैं, लेकिन कुछ ख़ास परिस्थितियों में 50 से 60 वर्ष के व्यक्तियों को भी योजना का लाभ दिया जा सकता है, जैसे- 50 वर्ष से अधिक आयु के सेवानिवृत्त रक्षा कर्मचारी। शर्त यही है कि सेवानिवृत्ति लाभ की प्राप्ति के 1 महीने के भीतर निवेश किया जाए। खाता व्यक्तिगत क्षमता के रूप में या केवल पति या पत्नी के साथ खोला जा सकता है। ब्याज हर तिमाही के पहले दिन जुड़ता है। निवेश की परिपक्वता अवधि 5 वर्ष है। योजना की अवधि पूरी होने के बाद इसको 3 साल तक बढ़ाया जा सकता है। इस योजना के तहत निवेश आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80 सी के तहत टैक्स लाभ के योग्य है।

राष्ट्रीय बचत पत्र (एनएससी)

इसमें 7.7% वार्षिक चक्रवृद्धि दर से ब्याज परिपक्वता पर दिया जाता है। इसमें न्यूनतम राशि 1000 है एवं कोई अधिकतम सीमा नहीं है। ये खाता एकल बालिग़ एवं संयुक्त खाता (3 बालिग़ तक) खुलवा सकते हैं। योजना के तहत कितने भी खाते खोले जा सकते हैं। जमा की तिथि से 5 वर्ष पूर्ण होने पर जमा धन परिपक्व हो जाएगा।

सुकन्या समृद्धि खाता

इस योजना में ब्याज दर 8.2% वार्षिक है। एक वित्तीय वर्ष में



न्यूनतम 250 रुपये और अधिकतम 1,50,000 रुपये जमा किए जा सकते हैं। एकमुश्त राशि भी जमा की जा सकती है। एक माह में या एक वित्तीय वर्ष में जमा की संख्या पर कोई सीमा नहीं है।

ये खाता 10 वर्ष से कम आयु की बालिका के नाम पर अभिभावक द्वारा खोला जा सकता है। भारत में डाकघर या किसी भी बैंक में बालिकाओं के नाम पर केवल एक खाता खोला जा सकता है। एक परिवार में अधिकतम दो लड़कियों के लिए यह खाता खोला जा सकता है। जमा आयकर अधिनियम की धारा 80 सी के तहत कटौती के लिए अर्हता प्राप्त करते हैं।

परिपक्वता पर बंद

(i) खाता खोलने की तारीख से 21 साल बाद (ii) या 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद लड़की की शादी के समय (शादी की तारीख़ से 1 महीने पहले या 3 महीने बाद)।

किसान विकास पत्र

इसमें वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज दर 7.5% तय की गई है। खाता खोलने के लिए न्यूनतम राशि 1000 रुपये है। इसमें निवेश की गई राशि 115 माह (9 वर्ष एवं 7 माह) में दुगनी होती है। इसमें एकल वयस्क खाता खोल सकता है। संयुक्त खाता (3 वयस्क तक) भी खोला जा सकता है। संबंधित पोस्ट ऑफिस में निर्धारित आवेदन पत्र गिरवी रखने वाले के पत्र के साथ जमा कर किसान विकास पत्र को सुरक्षा के रूप में गिरवी या स्थानांतरित किया जा सकता है।

महिला सम्मान बचत पत्र

जैसा कि नाम से स्पष्ट है ये खाता एक महिला ही अपने लिए खोल सकती है। अवयस्क लड़की की ओर से अभिभावक खोल सकते हैं। इसमें न्यूनतम जमा राशि एक हज़ार रुपये है। एक खाते में दो लाख रुपये की अधिकतम सीमा है। इस खाते के लिए ब्याज दर प्रतिवर्ष 7.5 प्रतिशत है। ब्याज त्रैमासिक रूप से जोड़ा जाएगा और खाते में जमा किया जाएगा और खाता बंद करने के समय भुगतान किया जाएगा।

पोस्ट ऑफिस में निवेश के फ़ायदे

डाकघर बचत खाता किसी बैंक खाते की तरह ही होता है, जिसे एक से दूसरी शाखा में स्थानांतरित भी किया जा सकता है। इसमें इंटरनेट बैंकिंग सुविधा भी है। पोस्ट ऑफिस में निवेश करने के कई लाभ हैं, जो इसे एक अच्छा निवेश विकल्प बनाते हैं।

— पोस्ट ऑफिस में निवेश करना सुरक्षित होता है क्योंकि यह सरकार द्वारा संचालित है। भारत सरकार की गारंटी से इसे एक विश्वसनीय निवेश का रूप प्राप्त होता है। यहां ब्याज दरें 4% से 8.2% के मध्य हैं।

— डाकघर शाखाएं गांवों और छोटे शहरों में मौजूद हैं, जिससे लोगों को निवेश करने में आसानी होती है। यहां काग़ज़ी कार्यवाही भी न्यूनतम होती है।

— यदि आपने बचत खाते के साथ चेकबुक की सुविधा नहीं ली है तो खाते में न्यूतम शेष राशि महज़ 50 रुपये भी रखी जा सकती है। चेक वाले खाते के लिए यह 500 रुपये है।

— पोस्ट ऑफिस में निवेश के लिए विभिन्न विकल्प उपलब्ध हैं। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और वित्तीय लक्ष्यों के अनुसार चुनाव कर सकता है।

— कुछ योजनाओं में जमा राशि के लिए धारा 80C के तहत करों में छूट है, जबकि सुकन्या समृद्धि योजना, पीपीएफ वगैरह में ब्याज राशि कर-मुक्त होती है।



बिछ गई है बिसात

महज़ एक छोटे-से चौकोर तख़्ते पर खेले जाने वाले खेलों का आकर्षण इतना प्रबल है कि सदियों से पीढ़ियां इनसे बंधी हुई हैं।

भाग्य से लेकर युद्ध जैसी रणनीतियों के प्रयोग तक, इन्होंने मनोरंजन के साथ-साथ हमारा ज्ञानवर्धन भी किया है।

आज डिजिटल स्क्रीन पर पहुंच चुके बोर्ड गेम्स की विकास यात्रा रोमांचित करती है।

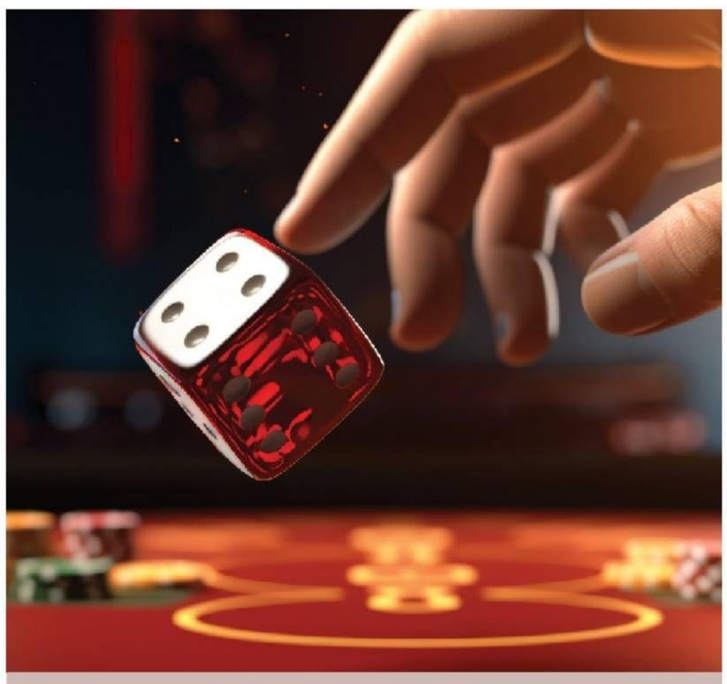
– ज्योत्स्ना पंत श्रीवास्तव



बोर्ड गेम का नाम सुनते ही शतरंज, सांप-सीढ़ी, लूडो, मोनोपोली, चेकर्स, स्क्रैबल्स, ओथेलो जैसे नाम याद आते हैं। ये टेबलटॉप गेम होते हैं, जिनमें आमतौर पर मोहरों या गोटियों का इस्तेमाल किया जाता है, जिन्हें पहले से चिह्नित गेमबोर्ड पर रखा जाता है। इन्हें दो से अधिक लोग खेल सकते हैं। इनमें टेबल, कार्ड, रोल-प्ले और मिनिएचर भी शामिल होते हैं। बोर्ड गेम को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है: रेस गेम (जैसे- पचीसी), स्पेस गेम (नॉट्स एंड क्रॉस), चेज़ गेम (हनीफैटफ्ल) और विस्थापन के गेम (जैसे- शतरंज)।

क्रीड़ांगन... बिछ गई है बिसात... जारी...





बड़ा पुराना है पासा

बोर्ड गेम का सबसे अहम टूल है पासा, जो मनुष्य द्वारा ज्ञात सबसे पुराने गेमिंग उपकरणों में से एक है। दक्षिण-पूर्वी ईरान में एक खुदाई के दौरान, पुरातत्वविदों ने पासों का एक 3,000 साल पुराना सेट खोजा था। चाहे हड्डी में उकेरा गया हो या प्लास्टिक में ढाला गया हो, पासा बिंदुओं से भरा एक घनाकार है, जो खिलाड़ी की चाल तय करता है।

- दुनिया का सबसे ज़्यादा खेला जाने वाला बोर्ड गेम शतरंज है, हालांकि 1999 में 50 करोड़ लोगों ने मोनोपोली खेलकर इस खेल का नाम गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में दर्ज करवा दिया है।

- बच्चे हों या बड़े, हर वर्ग के लोग बोर्ड गेम्स खेलना पसंद करते हैं। यही वजह है कि वर्ष 2022 तक वैश्विक बोर्ड गेम का बाज़ार 9.92 खरब रुपये था।





साढ़े पांच हज़ार साल का इतिहास

बोर्ड गेम को प्राचीन सभ्यता से जोड़ते उदाहरण हमें 5,500 साल पहले मेसोपोटामिया और मिस्र की ओर ले जाते हैं। पहले ये गेम शाही परिवारों द्वारा खेले जाते थे। 'उर का शाही खेल', सबसे पुराने ज्ञात बोर्ड गेम्स में से एक है, जो 4,600 ईसा पूर्व खेला जाता था। यह वर्तमान इराक के पुराने सुमेरियन शहर उर की क़ब्रों में मिला था। यह खेल दो सेट्स- एक काले और एक सफ़ेद मोहरे के साथ खेला जाता था, जिसमें सात मार्कर और तीन टेट्राहेड्रल पासे (चार-पक्षीय) होते थे। प्राचीन मिस्र का एक अन्य खेल है, 'सेनेट' जो 3100 ईसा पूर्व खेला जाता था। सेनेट के अलावा 'मेहेन' नाम का खेल भी है, जो मिस्र के सर्प देवता के नाम पर 3000 ईसा पूर्व से 2600 ईसा पूर्व तक खेला जाता था। 'हाउंड्स और जैकल्स', प्राचीन मिस्र का एक अन्य बोर्ड गेम है, जो लगभग 2000 ईसा पूर्व सामने आया। यह खेल मेसोपोटामिया और काकेशस में भी लोकप्रिय था।

रणनीतिक कौशल का समावेश

मध्य युग के आते-आते बोर्ड गेम रणनीतिक समझ के साथ विकसित होने लगे। हमारे देश में, छठी शताब्दी के आसपास 'चतुरंग' का खेल उभरा, जिसे आधुनिक 'शतरंज' का अग्रदूत माना जाता है। चतुरंग की रणनीतिक गहराई और जटिलता ने इसे कुलीन वर्ग और सैन्य रणनीतिज्ञों का पसंदीदा बना दिया। यहां से यह फ़ारस, यूरोप पहुंचा और विकसित होता गया। पूर्वी एशिया में 2,500 साल से भी पहले चीन में 'गो' खेला जाता था। बौद्धिक खोज का आधार यह क्लासिक खेल आज भी लोकप्रिय है। इसके साथ ही बच्चों के लोकप्रिय खेल 'सांप-सीढ़ी' की शुरुआत संभवतः 16वीं शताब्दी में भारत में हुई।

अंग्रेज़ों के विरासती संग्रह में हैड्रियन की दीवार (रोमन प्रांत ब्रितानिया के एक पूर्व रक्षात्मक क़िले) के साथ 689 गेमिंग काउंटर (मोहरे या गोटियां) और 11 खंडित गेमिंग बोर्ड संगृहीत हैं। इन्हें खेलने के लिए चमकीले कांच, चिकने पत्थर, हड्डी या मिट्टी के टुकड़े आदि को गोटियों की तरह इस्तेमाल किया जाता था। रोमनकाल का एक अन्य चर्चित बोर्ड गेम है, 'मेरिल्स' या 'नाइन मेंस मॉरिस'। रणनीतिक गेम को दो लोग खेलते हैं। इसकी शुरुआत लगभग 5,000 साल पहले भूमध्यसागर या मध्य पूर्व में हुई थी। इसमें बोर्ड पर मिल्स (तीन की लाइन) बनाकर प्रतिद्वंद्वी के काउंटर को ज़ब्त करना होता है। यह पूरे मध्य युग में, मेरिल पश्चिमी यूरोप में खेले जाने वाले सबसे लोकप्रिय खेलों में से एक था जो आज भी खेला जाता है।

पुनर्जागरण में बढ़ी लोकप्रियता

यूरोप में पुनर्जागरण काल में बोर्ड गेम ने लोकप्रियता के नए आयाम छुए। समय के साथ शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा तो बोर्ड गेम्स को भी इसका फ़ायदा मिला। कई क्लासिक गेम मध्यमवर्ग में लोकप्रिय हुए। ऐसा ही एक खेल था, 'बैकगैमौन' जिसे प्राचीन रोम खेल 'लुडस डओडेसिम स्क्रिप्टोरम' से प्रेरित होकर बनाया गया था। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटली में शुरू हुए 'द गेम ऑफ़ द गूज़' जैसे रेस गेम मनोरंजक होने के साथ नैतिक पाठ और रणनीति सिखाने वाले भी थे। यूरोप में बोर्ड गेमिंग के सबसे पुराने रिकॉर्ड होमर के इलियड (8वीं शताब्दी ईसा पूर्व में लिखे गए) से मिलते हैं, जिसमें उन्होंने प्राचीन ग्रीक गेम 'पेटिया' का उल्लेख किया है। पेटिया का यह खेल बाद में रोमन 'लुडस लैट्रुनकुलोरम' में विकसित हुआ। इस खेल में चेकरबोर्ड जैसा पैटर्न था, जिसमें बोर्ड को शहर और हर मोहर को डॉग कहा जाता था।

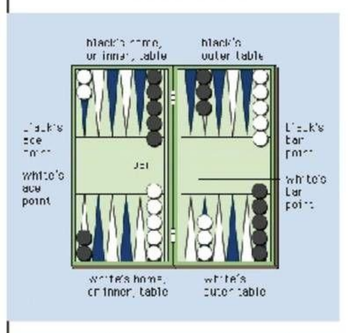
तकनीक के साथ आया स्वर्णयुग

19वीं शताब्दी में बड़े पैमाने पर उत्पादन तकनीकों के आगमन ने बोर्ड गेम को व्यापक दर्शकों के लिए सुलभ बनाया। बोर्ड गेम बनाने वाली पहली कंपनी के मालिक अमेरिकी व्यवसायी मिल्डन ब्रैडली थे, जो 1860 में 'द चेकर्ड गेम ऑफ़ लाइफ़' लेकर आए। यह ख़ासा लोकप्रिय हुआ और इसी से बना 'गेम ऑफ़ लाइफ़', जिसे आज भी खेला जाता है। मिल्टन ब्रैडली कंपनी ने 'डाउनफॉल', 'हंग्री हिप्पोस' और 'कनेक्ट 4' जैसे कई लोकप्रिय गेम प्रकाशित किए।

1930 के दशक में एक और बोर्ड गेम चर्चा में आया, 'मोनोपोली'। अमेरिकी टॉय एवं गेम बनाने वाले भाइयों पार्कर ब्रदर्स ने 'द लैंडलॉर्ड गेम' के अधिकार ख़रीदे और उसमें बदलाव करके बनाया मोनोपोली। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका महामंदी के दौर से गुज़र रहा था। ऐसे में यह गेम उस समय की आर्थिक वास्तविकताओं और आकांक्षाओं को दर्शाते हुए, अब तक के सबसे ज़्यादा बिकने वाले बोर्ड गेम में से एक बन गया। इसके बाद पार्कर ब्रदर्स ने 1800 से अधिक गेम प्रकाशित किए। 19वीं शताब्दी का एक अन्य लोकप्रिय बोर्ड गेम रहा, 'द मेंशन ऑफ हैप्पीनेस' पहला व्यावसायिक बोर्ड गेम, जिसे इंग्लैंड 1800 में जॉर्ज फॉक्स ने बनाया था। इस दौर में बोर्ड गेम्स के ज़रिए बच्चों को शिक्षित करने के विचार ने ज़ोर पकड़ा। 20वीं सदी बोर्ड गेम्स का स्वर्ण युग कहलाई। इस अवधि में 'सेटलर्स ऑफ़ कैटन' (1995) और 'कारकासोन' (2000) ने 'यूरोगेम्स' की अवधारणा को पेश किया।

कुछ चर्चित प्राचीन बोर्ड गेम्स

बैकगैमौन



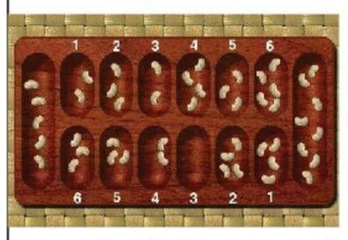
उर के शाही खेल के बाद यह दुनिया का सबसे पुराना बोर्ड गेम है, जो कौशल और भाग्य का एक जीवंत मिश्रण है। इसे दो लोग पासा फेंककर खेलते हैं। बैकगैमौन बोर्ड को चार भागों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें टेबल कहा जाता है, प्रत्येक में छह संकीर्ण वैजेज़ यानी पॉइंट्स होते हैं। दोनों खिलाड़ियों के पास 15-15 टुकड़े होते हैं, जिन्हें चेकर्स के रूप में जाना जाता है।

द मेंशन ऑफ हैप्पीनेस



18वीं सदी में आए इस खेल में खिलाड़ियों के मोहरे 67 ख़ानों के चक्रीय ट्रैक पर दौड़ते हैं, जिसमें गुण और दोष दर्शाए जाते हैं और उनका लक्ष्य ट्रैक के अंत में हैप्पीनेस की हवेली पर पहुंचना होता है। गुण स्थानों पर निर्देश लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाते हैं, जबकि बुरे स्थानों पर निर्देश उन्हें पीछे हटने के लिए मजबूर करते हैं।

वारी



पश्चिमी अफ्रीका का खेल वारी दुनिया के अन्य हिस्सों में भी लोकप्रिय है। गणना और रणनीति पर आधारित इस खेल को मनकाला के नाम से भी जाना जाता है। खेल का उद्देश्य अपने प्रतिद्वंद्वी के मोहरे पकड़ना और उन्हें उनके छह ख़ानों से होते हुए अपनी तरफ़ ले जाना है। यह बोर्ड गेम सिएरा लियोन में बनाया गया था। इस खेल को काग़ज़ के एक टुकड़े पर छह वृत्तों की दो पंक्तियां बनाकर खेल सकते हैं, जिसके प्रत्येक छोर पर एक अंडाकार हो, और मोहरों के रूप में 48 मार्बल, मोती, कंकड़ का भी उपयोग कर सकते हैं।

सुगोरोकू



8वीं शताब्दी में चीन से जापान में आया सुगोरोकू एक जटिल खेल था। इसे दो लोग पासों की एक जोड़ी और पंद्रह मोहरों के साथ खेलते थे। जापानी अभिजात वर्ग के बीच लोकप्रिय इस खेल को लकड़ी के ब्लॉक पर प्रिंट किया गया। इसमें 18वीं शताब्दी की प्रचलित पदानुक्रम स्थिति को व्यापारी से कारीगर, किसान और योद्धा तक आरोही क्रम में दर्शाया गया था। हर वर्ग में एक अलग व्यवसाय चित्रित किया गया था। इसमें खिलाड़ी व्यापारी वर्ग से शुरू करके केंद्र में सबसे बड़े वर्ग तक पहुंचता है, जिसमें एक समुराई का धनुष खींचता हुआ चित्र है।

पचीसी



भारत में सदियों से खेला जाने वाला प्रमुख बोर्ड गेम है पचीसी। इसे धन चिह्न (+) जैसे दिखने वाले बोर्ड पर खेला जाता है। इस खेल का नाम हिंदी शब्द पचीस से लिया गया है, जिसका अर्थ है पच्चीस- एक फेंक के साथ सबसे बड़ा स्कोर, जहां कोई भी टुकड़ा उल्टा नहीं गिरता है।

लेखाकार का लेखा-जोखा

प्राय: लोगों को लगता है कि चार्टर्ड एकाउंटेंट का काम आयकर जमा करने और टैक्स बचाने में मदद करना है।

परंतु उनका योगदान इससे कहीं बढ़कर है, इतना कि वे देश की आर्थिक नींव कहलाते हैं।

व्यावसायिक पारदर्शिता और नियम पालन उन्हीं के बूते संभव है।

1 जुलाई, सीए दिवस के मौक़े पर जानिए, सीए के संघर्षों का सफ़र।

– मुकेश राजपूत

लेखक, प्रेरक वक्ता और स्टूडेंट्स कॉउंसलर। पेशे से चार्टर्ड एकाउंटेंट है। अपनी संघर्ष गाथा पर 'सीए पास : द रियल स्टोरी' नामक पुस्तक लिखी है। कई स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़ाव। भोपाल में निवास।

भोपाल स्थित गोविंदपुरा औद्योगिक क्षेत्र के कारख़ाने में था एक चौकीदार। उसका पांचवीं के बाद से ही पढ़ाई से नाता टूट ही गया था, पर एक दिन ऐसी लाग जागी कि उसने दसवीं कक्षा का फॉर्म ओपन पत्राचार पाठ्यक्रम से भर दिया। हालांकि वह लगातार तीन बार विफल रहा, लेकिन फिर चौथे प्रयास में उसने सफलता पा ही ली। आगे नौकरी की तलाश करते हुए मारवाड़ी रोड पर एक फर्म में लोडिंग ऑटो ड्राइवर के रूप में काम में लग गया। एक दिन मालिक ने उसे कुछ दस्तावेज़ ऑडिट के लिए हमीदिया रोड स्थित सीए मनोज खरे के ऑफ़िस में देकर आने को कहा। पहली बार एक सुंदर-से दफ़्तर में उसने सोने की अंगूठी पहने हुए सीए को बैठा देखा। बस! उसी दिन से सीए बनने का मन बना लिया। क़सम खा ली कि जल्द ही सीए बनकर चरण स्पर्श करने उनके पास लौटेगा।

ये कोई कहानी नहीं, बल्कि इन पंक्तियों के लेखक के जीवन की हक़ीक़त है। लेखाकार यानी चार्टर्ड एकाउंटेंट (सीए) बनना एक सपना था जो अंतत: साकार भी हुआ। शुरुआत में भले ही पेशे की चमक-दमक देखकर सपना जागा था, परंतु फिर धीरे-धीरे पता चला कि सीए का कार्य देश और समाज के लिए कितना महत्वपूर्ण है, तो अपने चयन पर गर्व की अनुभूति भी हुई।

अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ हैं

सीए हमारे समाज और देश की आर्थिक नींव कहलाते हैं। ये वित्तीय नियोजन, टैक्सेशन, अकाउंटिंग और ऑडिटिंग के माध्यम से कंपनियों तथा विभिन्न संस्थानों को आर्थिक रूप से स्थिर और पारदर्शी बनाने में मदद करते हैं। साथ ही व्यापार में भी नैतिकता और पारदर्शिता सुनिश्चित करते हैं। सीए के कार्यों के बिना, व्यवसायों के लिए अपनी वित्तीय स्थिति को सही तरीक़े से संभालना और करों का उचित रीति से भुगतान करना असंभव हो सकता है। ये टैक्स नियमों और विनियमों के जानकार के रूप में न केवल कंपनियों बल्कि व्यक्तिगत करदाताओं की भी 'टैक्स प्लानिंग' और कर अनुपालन में सहायता करते हैं। सीए इंटरनेशनल अकाउंटिंग स्टैंडर्ड के अनुसार कार्य करते हैं, जिससे हमारे देश की कंपनियां और व्यवसाय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकें। ये वैश्विक बाज़ार में देश की साख बढ़ाने में सहायक होते हैं। सरकारें भी समय-समय पर कर बदलावों और संशोधनों से बाज़ार पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर सीए से विचार-विमर्श करती रहती हैं।



परीक्षा बड़ी सो चुनौती भी

चार्टर्ड एकाउंटेंट केवल पेशा नहीं, बल्कि देश और समाज की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक संरचना को मज़बूत करने का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। हर वो छात्र जो वाणिज्य (कॉमर्स) विषय चुनता है, कभी न कभी सीए बनने का सपना ज़रूर देखता है। हां, ये बात अलग है कि फिर राह में आती चुनौतियों को देखकर अधिकतर बच्चे दूसरे विकल्प ढूंढ लेते हैं। जबकि यही चुनौतियां हैं जो सही रणनीति के साथ उम्मीदवार का सुनहरा भविष्य गढ़ती हैं।

माध्यम का चयन...

सामान्यत: सीए की किताबें अंग्रेज़ी भाषा में उपलब्ध रहती हैं। ऐसे में हिंदी माध्यम छात्र के लिए चुनौतियां और भी बढ़ जाती है। साथ ही अंग्रेज़ी माध्यम छात्र के लिए उच्चतम अंग्रेज़ी भाषा सीखना चुनौती बन जाता है। मैं स्वयं हिंदी माध्यम का छात्र रहा। पहले अंग्रेज़ी किताबों को पढ़कर उनका अनुवाद करके हिंदी में मानक भाषा में नोट्स बनाता और विषय पर अच्छी पकड़ बनी रहे इसलिए लिख-बोलकर पढ़ता था। यह तकनीक कारगर साबित हुई है, आप इसे आज़मा सकते है।

दूसरी समस्या विस्तृत पाठ्यक्रम...

सीए परीक्षा का पाठ्यक्रम बहुत ही विस्तृत और गहन है। इसमें फाइनेंशियल एकाउंटिंग, कॉस्ट एकाउंटिंग, टैक्सेशन, ऑडिटिंग, कॉर्पोरेट लॉ और वित्तीय प्रबंधन जैसे विषय शामिल हैं। मुझे याद है मेरी आर्टिकलशिप के दौरान यस बैंक ऑडिट पर बैंक मैनेजर ने कहा था, यदि समस्याएं बड़ी हों तो हल करते समय उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ लेना चाहिए। मैंने विस्तृत अध्ययन को छोटे-छोटे अध्यायों में बांटकर टाइम टेबल बनाया, दो-दो घंटे के पीरियड बनाकर अध्ययन किया। एक बात याद रखनी चाहिए- अध्ययन रोज़ करना चाहिए, भले ही कभी-कभी निर्धारित घंटे से कम हो, लेकिन इसमें नियमितता होनी चाहिए।

आर्टिकलशिप और पढ़ाई साथ-साथ...

सीए के ऑफिस में कामकाज का व्यावहारिक ज्ञान लेने के साथ में पढ़ाई भी करना छात्र के लिए बड़ी चुनौती होती है। आर्टिकलशिप का मुख्य उद्देश्य होता है थ्योरी के साथ-साथ प्रैक्टिकल ट्रेनिंग। इसीलिए सीए के छात्रों को अपनी आर्टिकलशिप पूरी लगन और ईमानदारी से करनी चाहिए, इससे पेशेवर दुनिया में आपका काम पहचाना जाएगा।

ट्यूशन क्लास की उपयोगिता...

ट्यूशन/कोचिंग क्लासेस आज के दौर का चलन है। सीए का छात्र चाहे तो ऐसी क्लास से जुड़ सकता है- परंतु एक बार पूरा पाठ्यक्रम अपने स्तर पर पढ़ लेने के बाद ही। इससे ट्यूशन/कोचिंग से वास्तविक लाभ होने की संभावना बढ़ जाती है। आपको जो आता है उसका रिविज़न होता है और जो नहीं आता उसे सीखने का मौक़ा मिलता है। दोबारा पढ़ना, संदेहों का निवारण होना विषय-वस्तु को गहनता से समझने का मौक़ा देता है।

उच्च मानक और कठिनतम स्तर...

इस परीक्षा का स्तर पाठ्यक्रम और प्रश्नपत्र दोनों ही मायनों में ऊंचा होता है। लंबे प्रश्नपत्र को सीमित समय सीमा में हल करना छात्रों के लिए एक बड़ी चुनौती होती है, लेकिन इससे निपटा जा सकता है। पाठ्यक्रम पूरा होने के बाद और परीक्षा से दो माह पहले ही आपको हर विषय के कम से कम हज़ार प्रश्नों को ज़रूर पढ़ और समझ लेना चाहिए। इससे आपमें प्रश्नों को सहजता से समझने और सुलझाने की कला विकसित होगी।

समानुपातिक सफलता दर...

सीए की परीक्षा में सफलता दर बहुत कम होती है, जो इसे और अधिक चुनौतीपूर्ण बनाती है। अधिकतर उम्मीदवारों को कई बार प्रयास करना पड़ता है। परीक्षा की तैयारी के दौरान अनुशासन और समर्पण की आवश्यकता होती है। नियमित अध्ययन और दृढ़ संकल्प के बिना परीक्षा पास करना मुश्किल हो सकता है। इन चुनौतियों के बावजूद, सही रणनीति, समय प्रबंधन और मानसिक दृढ़ता से उम्मीदवार सफलता हासिल कर सकते हैं।

सफलता के दस सूत्र





1 सफल होने वाले साथियों से मार्गदर्शन...

इस दिशा में मुझे वे सभी दोस्त मार्गदर्शक बनकर मिले, जिनके एक या दो ग्रुप निकल चुके थे। उनसे प्रार्थना की कि आप पास होने के कुछ तरीक़े बताएं और उनका धन्यवाद भी किया।

2 प्रेरक पुस्तकें पढ़ना...

उत्साह बनाए रखने के लिए अच्छी प्रेरणादायक पुस्तकें पढ़ने का निश्चय किया। शिव खेड़ा और स्वेट मार्डन की किताबें पढ़ीं। उस समय एक कमी बहुत खली कि किसी सीए की कोई ऐसी किताब बाज़ार में उपलब्ध नहीं थी या मुझे नहीं मिली, जिसमें सीए बनने के अपने संघर्ष, अपनी मुश्किलों का या पढ़ाई में आने वाली परेशानियों और उनसे पार पाने के तरीक़ों का उल्लेख किया गया हो। इसी बात ने मुझे आगे चलकर पुस्तक लिखने को प्रेरित किया।

3 सुझाव हेतु उत्तरपुस्तिका...

यह जानने के लिए कि प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार से देने हैं, मॉडल उत्तरपुस्तिका ख़रीदी। साथ ही इससे प्रेजेंटेशन का मतलब भी समझ में आया और परीक्षक क्या चाहता है इसका पता भी चला।

4 रिविज़न टेस्ट पेपर्स तथा सुझाए उत्तर का उपयोग...

इस बार सुझाए उत्तर के साथ RTP को भी पढ़ाई में शामिल किया। रिविज़न टेस्ट पेपर्स ICAI द्वारा परीक्षा से 30 दिन पूर्व जारी किए जाते हैं। यदि कोर्स में कोई बदलाव हुआ हो तो उसकी जानकारी भी इनके माध्यम से मिल जाती है।

5 क्रैश कोर्स करना...

पाठ्यक्रम पूर्ण हो जाने के साथ ही क्रैश कोर्स किया और इससे बहुत लाभ मिला। क्रैश कोर्स परीक्षा से 40 दिन पहले ही जॉइन करना अधिक लाभप्रद होता है।

6 दोस्तों का समूह बनाना...

दोस्तों का स्टडी ग्रुप बनाया। समूह में दोस्त एक-दूसरे को पढ़ाते, इससे कॉन्सेप्ट क्लियर होते और वाद-विवाद से विषय लंबे समय तक याद रहता।

7 उत्तर का ढांचा बनाना...

पहले उत्तर का एक स्ट्रक्चर तैयार करें। मसलन, सबसे पहले उत्तर को एक सही शीर्षक दें जो उत्तर की विषय-वस्तु को प्रकट करता हो। फिर शीर्षक का अर्थ स्पष्ट करें, ज़रूरी तथ्यों की व्याख्या करें और अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत करें। इसके लिए आवश्यक है कि प्रश्न पढ़ते ही उत्तर लिखना न शुरू कर दें। पहले यह जानने की कोशिश करें कि पूछा क्या जा रहा है। यदि यह पूछा जा रहा है कि प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति कैसे की जाती है, तो आपके उत्तर का स्ट्रक्चर कुछ यूं होगा-

- **सबसे पहले शीर्षक...** प्रथम अंकेक्षक नियुक्ति की धारा।
- **फिर परिभाषा...** प्रथम अंकेक्षक की परिभाषा दीजिए।
- **फिर व्याख्या...** यदि प्रश्न बड़ा है, तो उसकी व्याख्या कीजिए।
- **फिर निष्कर्ष...** प्रश्न का जो निर्णय मांगा है, उस पर लिखें।

निष्कर्ष वाले प्रश्नों को इसी प्रकार हल करें। अन्य प्रश्नों में निष्कर्ष को छोड़ा जा सकता है।

8 उत्तर को बिंदुओं में बांटना...

उत्तर को सीधे लिखते चले जाने से प्रस्तुति ग़लत हो सकती है। बेहतर है कि उत्तर को छोटे-छोटे प्रभावशाली बिंदुओं में बांटें। इससे ज़्यादा और अच्छे तरीक़े से लिख पाएंगे। बिंदुओं में लिखने से आपकी प्रस्तुति प्रभावशाली और स्पष्ट नज़र आती है, इससे अंक कटने की गुंजाइश बहुत कम रह जाती है।

9 विशिष्ट शब्दों का प्रयोग...

तकनीकी विषय में तकनीकी शब्दावलियों का प्रयोग ज़्यादा से ज़्यादा करें। यदि क़ानून या अधिनियम से संबंधित प्रश्न हो तो धाराओं तथा विधिक शब्दों का प्रयोग करें। लेखांकन के प्रश्नपत्र में डीआर., सीआर. अमाउंट, आरएस. आदि का प्रयोग करें।

10 लिखावट की जांच...

परीक्षा में लिखावट का बहुत महत्व होता है। आपका सही लिखा हुआ भी नंबर नहीं दे पाएगा यदि परीक्षक को उत्तर पढ़ने में परेशानी हो रही है। इसीलिए अपनी हस्तलिपि की जांच पहले ही अपने किसी परिचित करा लें।

ये दस सूत्र इस लेखक के अनुभवों से निकले हैं, जिनकी मदद से वर्ष 2010 में चार्टर्ड एकाउंटेंट बनने में सफलता मिली। ये परीक्षा चुनौतीपूर्ण है, परंतु इसमें सफलता के बाद कठिनाइयां ख़त्म नहीं होतीं। सीए बन जाने के बाद भी लगातार अध्ययन करना करना होता है, बदलते नियमों पर नज़र रखनी होती है और नित नई चुनौतियों से निपटना पड़ता है।

जीवन-दृष्टि है विवेक



यह जो हमने पिछले कुछ लाख वर्षों के ज्ञात इतिहास में संसार का सर्कस फैलाया है।

इस सर्कस में अतीत और भविष्य के दो खंभों पर वर्तमान की रस्सी तनी हुई है, जिस पर हमें कर्म के एक लंबे बांस को लेकर चलना है...

विवेक ही वह तत्व है जिससे हम इस रस्सी पर संतुलन बनाने का कौशल साध सकते हैं।



– डॉ. सत्यम् सम्राट आचार्य
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर में राजनीति विज्ञान के सहायक प्राध्यापक, कालिदास साहित्य के अध्येता एवं कैलिग्राफर।

प्रजापिता ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पश्चात मानव की रचना की। अस्थियों के ढांचे, पेशियों और रक्त वाहिकाओं के ऊपर चर्म का आवरण पहनाकर अंगों से सुसज्जित मांसल शरीर बनाया गया। उसमें चेतना के प्राण फूंकने से पूर्व देवताओं के परीक्षणार्थ स्वर्ग के बीचों-बीच रखा गया। मानव देह के उस सनातन प्रारूप का अवलोकन करने सभी देवता आए। पर्यावरण की अनुकूलता लिए सुघड़ त्वचा, मध्यम आकार की क़द-काठी, मूक होकर भी भावनाओं की भाषा बोलतीं आंखें, संसार की सुमन सुवासित सुरभि का आनंद लेने वाले दो घ्राण रंध्र और स्वाद के रसपूर्ण कोष्ठों से बनी जिह्वा को लिए सुंदर मुख, दैनिक अनुष्ठानों को संपन्न करने वाले दो कर्मरत हाथ और लक्ष्य की ओर अग्रसर दो धर्मरत पैर। अरे यह क्या? अंदर भी विधाता की सृष्टि चेतना का संचार करेगी। जैसे कोई लोहे के सुदृढ़ संदूक़ में स्यमंतक मणि छुपाए हो वैसे मज़बूत कपाल के पीछे रूई के फाहे-सा संवेदी मस्तिष्क। पसलियों के पीछे छुपा रक्तावेष्ठित हृदय। कुल मिलाकर विधाता की सबसे सुंदर रचना। सभी देवताओं ने उस मानव प्रारूप का अवलोकन किया और प्रजापिता ब्रह्मा की प्रशस्ति गाई। लेकिन प्रजापालक विष्णु ने बहुत देर तक एक जिज्ञासु की भांति उस प्रारूप की जांच की। ब्रह्मा ने पूछा- हे लक्ष्मिपति नारायण क्या मुझसे इस नर की समष्टि में कोई त्रुटि हो गई है? क्या इस संरचना का कोई भाग अशेष रह गया है?

भगवान विष्णु ने कहा– हे प्रजापिता! आपकी यह कृति हर दृष्टि से पूर्ण है। लेकिन इस मानव संरचना में एक कमी रह गई है। आपने इसके भीतर भावनाओं के आरोह-अवरोह का संपूर्ण सार सन्निवेशित किया है, लेकिन इसके मस्तिष्क में विवेक की दिव्य-दृष्टि डालना भूल गए हैं। और विवेक के बिना व्यवहार के आरोह-अवरोहों के बीच समायोजन करना यह मनुष्य सीख नहीं पाएगा, भावनाओं के उद्वेगों को सह नहीं पाएगा।

प्रजापिता चतुर्मुख ब्रह्मा ने एक मंद मुस्कान भरी, और बोले- हे पद्मनाभ! मैंने जानबूझकर मानव मन में विवेक की दिव्य दृष्टि का निवेश नहीं किया। क्योंकि यही एकमात्र ऐसी दृष्टि है जिसका अर्जन मनुष्य को स्वयं करना होगा। सही मायने में अस्थि, रक्त और चर्म से बनी यह देह तभी मानव कहलाएगी, जब वह विवेक/ बुद्धि/ विनय/ मेधा को स्वयमेव अर्जित करेगी। भगवान विष्णु ने उस चेतनाहीन मानव देह को देखकर कहा- तथास्तु!

बोधरस... जीवन-दृष्टि है विवेक... जारी...

पूर्वजों से प्राप्त स्यमंतक मणि

प्रसिद्ध इतिहासविद् युआल नोआ हरारी मानव जाति के इतिहास को संज्ञानात्मक क्रांति से आरंभ हुआ मानते हैं। इसके पूर्व हम प्रकृति की खाद्य-शृंखला का एक हिस्सा भर थे। जंगलों में घूमती एक शिकारी प्रजाति जो अपने प्रतिद्वंद्वी चौपायों के मुक़ाबले दो पैरों पर खड़ी हो सकती थी। फिर एक दिन वही दोपायी नस्ल प्रकृति के प्रताप से, या कहें प्रजापालक विष्णु के उसी वरदान से अपनी अस्मिता का ज्ञान प्राप्त करते-करते जंगलों से निकलकर, क़बीलों, प्राथमिक समूहों, क़स्बों, शहरों, समाजों, राष्ट्र-राज्यों में सभ्यताओं में प्रवेश करने लगी। उसे जैसे-जैसे अपने अस्तित्व का संज्ञान होता गया वो आगे बढ़ती गई, बढ़ती जा रही है और निश्चित ही बढ़ती रहेगी।

यह तो बात हुई विवेक की उत्पत्ति की। लेकिन प्रश्न यह है कि आज के इंसान ने अपने पूर्वजों की यह स्यमंतक मणि सुरक्षित रखी है या नहीं?

दरअसल, इंसान जैसे-जैसे तरक़्क़ी करता गया, वैसे-वैसे उसका विवेक भी बढ़ता ही चला गया। पर मानव सभ्यता का यह आरोहण कभी-कभी अवरोहित भी होता रहा है। अब्राहमिक धर्मों की धर्म-पुस्तकों में एक पौराणिक वृत्तांत आता है- सृष्टि रचना के छठे दिन के किसी शनिवार को ईश्वर ने मनुष्य में प्राण फूंके और उसे स्वर्ग के एक सुरम्य-उद्यान में भेज दिया। अदन के बाग़ीचे में घूमते हुए आदम के लिए उसी की पसलियों से बनी एक औरत ईव को भेजा गया। और ईश्वर ने उन्हें अमरता की अंतिम इच्छा तक स्वर्ग में टहलने का वरदान दे दिया। इस शर्त पर कि बाग़ीचे के बीचों-बीच लगे ज्ञान के वृक्ष से विवेक का फल वे किसी भी स्थिति में नहीं खाएंगे। कथा आगे कहती है कि स्वर्ग के उद्यान में निर्वसन घूमते अबोध मानव-युगल ने किसी अदैवीय प्रकृति के बहकावे में आकर ज्ञान के वृक्ष पर लगा बुद्धि का फल खा लिया और उसके प्रभाव में उनके अबोध मन में विवेक का बोध पैदा हुआ। शर्त टूट चुकी थी और ईश्वर क्रोधित थे, परिणाम यह हुआ कि आदम और ईव को स्वर्ग से निष्कासित कर दिया गया और विवेकवानों की बनी दुनिया में मृत्युपर्यंत रहने का शाप दे दिया।

जिससे अंतर स्पष्ट होता है

यह मानव-मन का अवरोहण था, जिसने दुनिया में व्यक्तिगत झगड़ों, सामुदायिक फ़सादों, धार्मिक संघर्षों, राजनीतिक युद्धों और आर्थिक प्रतिस्पर्धाओं को जन्म दिया। विवेक मनुष्य को और अधिक मनुष्य बनने के लिए प्रेरित करता है और इसकी विस्मृति मनुष्य को और अधिक पाशविक बनाती जाती है। सही और ग़लत, अच्छा और बुरा, पाप और पुण्य, मानव जीवनपर्यंत द्वैत के इस द्वंद्व में दौलायमान रहता है। विवेक ही वह ठौर है जो उसे स्थिर रखता है। द्वैत के संघर्ष में से सर्वोत्तम विकल्प को चुनने की प्रेरणा हमें विवेक से ही मिलती है।

उलूक रात के समय हमसे बेहतर देख सकता है, तेंदुआ और चीता स्थल मंडल पर हमसे तेज़ गति से दौड़ सकते हैं, कछुआ और मछली हमसे बेहतर तैराक हैं, चील और कौवे हमसे बेहतर उड़ान भर सकते हैं। खाद्य-जाल के हमारे सहजन्मा स्तनपायी पशुओं और हममें केवल विवेक ही वह धुरी है जो अंतर स्पष्ट करती है। वरना दो आंखें, दो कान और एक दिल तो गदहे के पास भी है। लेकिन उसके पास वह विवेक नहीं है जो संघर्ष के समय संतुलन, बहुविकल्पी प्रयासों के समय निर्णयन और मृत्यु के समय जीवन की दृष्टि देता है।

पर विवेक आता कैसे है?



में जहां ईश्वरीय ज्ञान का सार लिखित है, वहीं वेद का ऋषि गायत्री छंद उस सविता-शक्ति से 'धि' अर्थात विवेक देने की प्रार्थना करता है (धियो यो नः प्रचोदयात्॥)। उपनिषदों का ऋषि उसी प्रार्थना के स्वर में कहता है कि ईश्वरीय उपस्थिति को केवल विवेकवान चेतनाशील हृदय ही अनुभूत कर सकता है (कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/11)।

स्वयं ईश्वर लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के रूप में गीता में कहते हैं –

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥
(गीता 3.38)

अर्थात – जैसे धुएं से अग्नि और मैल से दर्पण ढक जाता है तथा जैसे जेर से गर्भ ढका रहता है, ऐसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान (विवेक) ढका हुआ है।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
(गीता 4.40)

अर्थात – विवेकहीन और श्रद्धारहित संशयात्मा मनुष्य का पतन हो जाता है।

तीर्थंकर भगवान महावीर ने उस विवेक को तप की संज्ञा दी है जो सत और असत पदार्थों में से असत को त्यागने की दिव्य-दृष्टि प्रदान करता है। बुद्ध ने अपने धम्म को विवेक पर अवलंबित बताया है। तो तुलसी ने कहा है कि धैर्य, धर्म और विवेक विपरीत परिस्थितियों में हमारे सहायक बनते हैं। रहीम कहते हैं कि यदि व्यक्ति की प्रकृति यानी उसका विवेक उत्तम है तो फिर कुसंगति भी कुछ नहीं कर सकती। कबीर उसी विवेक तत्व को इस प्रकार से व्याख्या करते हैं कि – फूटी आंख विवेक की लखै न संत-असंत।

एक संस्कृत सुभाषित में कहा गया है कि विद्या से विवेक आता है, विवेक से पात्रता आती है, पात्रता से धन आता है और फिर धर्म की निष्पत्ति होती है। पंचतंत्र की नीति कथाओं से बौद्ध और जैन साहित्य की जातक कथाओं तक महाभारत और रामायण जैसे पौराणिक कथा-साहित्य में भी विवेक हर प्रकार के दर्शन-विमर्श का सार बनकर सामने आता है।

कुल मिलाकर विवेक की कथा का सार भी यही है कि यह मनुष्य की बुद्धि का परिमार्जन करके उसे सत्य और असत्य के संघर्ष में से सत्य की ओर, प्रकाश और तम के संघर्ष में से प्रकाश की ओर, मृत्यु और अमरता के संघर्ष में से अमरता की ओर ले जाता है। हमारे पूर्वजों ने भी ईश्वर से यही प्रार्थना की है –

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय॥
(बृहदारण्यकोपनिषद् 1.3.28)

आंसू को पहले-पहल पारिभाषित करने वाले संसार के उस सबसे पहले कवि का कोई न कोई वंशज ज़रूर होगा, जिसे इसका कारण मालूम हो।

ईश्वर के आंसू

– सत्यम्

जैसे कोई आधा भरा हुआ पानी का लोटा खंगालता है, ईश्वर ने भी कुछ इसी तरह धरती को खंगाला और पाया कि सातों समुद्र पहले की तरह ही भरे हुए थे। हड़बड़ाते हुए ईश्वर ने दुनिया की सारी नदियों के स्रोतों को जांचा, नल की टोटी को ठीक करने वाले प्लंबर की तरह उसने देखा कि सारी नदियां अपने पूरे शबाब पर बह रही थीं। लेकिन ईश्वर अब भी परेशान था...

अचरज के साथ ईश्वर ने ख़ुद से पूछा कि दुनिया के सारे जलस्रोत लबालब भरे हैं, यहां तक कि घड़ियालों की क्रूर आंखों में भी पानी है। फिर अचानक ऐसा क्या हुआ कि दुनिया के सारे इंसानों ने रोना बंद कर दिया है, उनकी आंखों का पानी सूख चुका है? दरअसल ईश्वर को यही चिंता थी कि मनुष्य की आंखों के अश्रु-रंध्रों से वह पारदर्शी खारा द्रव्य क्यों नहीं बह रहा, जिसे दुनिया के किसी पहले कवि ने 'आंसू' की संज्ञा दी थी।

ख़ैर, उसने मनुष्य से इसका कारण पूछने की ज़हमत नहीं उठाई। क्योंकि उसे पता था कि अपने विज्ञानजनित अहं और तर्कसम्मत लफ़्फ़ाज़ियों से इंसान, आंसू न आने के तमाम कारण बताकर बच निकलेगा। ईश्वर को याद आया कि आंसू को पहले-पहल पारिभाषित करने वाले संसार के उस सबसे पहले कवि का कोई न कोई वंशज ज़रूर होगा, जिसे इसका कारण मालूम हो।

ब्रह्मा के बही-खातों से संसार के सारे कवियों की वंशावलियों को तलाशता हुआ ईश्वर, बेतवा नदी के किनारे पर बैठे एक कवि के पास पहुंचा। उसने देखा कि मनुष्य जैसे दिखने वाले कवि की आंखों में 'आंसू' थे। उस स्थिति में जब ईश्वर को संवेदना प्रकट करनी चाहिए थी, उसने कवि के सामने जिज्ञासा प्रकट की और पूछ लिया कि- तुम्हारी आंखों में ये जो आंसू हैं, वे संसार के बाक़ी मनुष्यों में क्यों नहीं?

कवि ने प्रत्युत्तर दिया कि- आंसू शब्दहीन कविता है, और प्रेम अर्थहीन भावना है! जैसे हम अर्थ खो देते हैं तो शब्द नहीं तलाश पाते, ठीक वैसे ही इस प्रेमहीन संसार में आप आंसू ढूंढ रहे हैं।

वास्तव में, अब तक ईश्वर दोलायमान समुद्रों और प्रवाहमान सरिताओं की गति और स्थैर्यता के भौतिक नियमों से, बांस की पर्वसंधियों और घड़ियाल के जैविक मापकों के पूर्वानुमानों से मानव की आंखों में आंसू तलाश रहा था। कवि ने इशारा किया कि- आंसू कोई हॉर्मोनिकल इफेक्ट नहीं है, न ही यह कोई बायोलॉजिकल डिफेक्ट है।...

...यह तो हृदय की अंतर्संधि में भावनाओं के उद्दीपन का परिणाम है जो आंखों के अश्रु-रंध्रों पर जब झलकता है तो रोने वाले के हृदय के छायाचित्र को उसकी आंखों की पुतलियों पर उकेर देता है। और तो और, इसे देखने वाले के हृदय तक भी उन्हीं संवेदनाओं की तरंग पहुंच जाती है।

ईश्वर ने जाना कि- भाव के बिना कविता, अर्थ के बिना शब्द और प्रेम के बिना आंसू नहीं मिल सकते।

मनुष्य जैसे दिखने वाले उस कवि ने उस दिन ईश्वर को रोते हुए देखा। ईश्वर की आंखों में आंसू छलक आए थे और उसकी पुतलियों पर उसके हृदय का छायाचित्र उभर आया था, जिस पर लिखा था- प्रेम।



हिंदी फिल्मों की सबसे क्यूट और चुलबुली दादी कहलाने वाली ज़ोहरा मुमताज़ का जीवन नृत्य और अभिनय की साधना में समर्पित रहा।

अमिताभ बच्चन जहां उन्हें सौ साल की बच्ची कहते थे तो वहीं प्रख्यात लेखक और निर्देशक ख़्वाजा अहमद अब्बास ने उन्हें भारत की इज़ाडोरा डंकन कहा।

अगर बात हिंदी सिनेमा की करें तो उन्होंने सात दशक के अपने कॅरियर में फिल्मी दुनिया की चार पीढ़ियों यानी पृथ्वीराज कपूर से लेकर रणबीर कपूर तक के साथ काम किया।

जीवन को एक उत्सव के रूप में जीने की हिमायती।

कठोर परिश्रम और आजीवन उत्साह के दुर्लभ संयोग से बनी शख़्सियत ज़ोहरा सहगल की ज़िंदगी की किताब के पन्ने खुल रहे हैं आज आपके सामने।

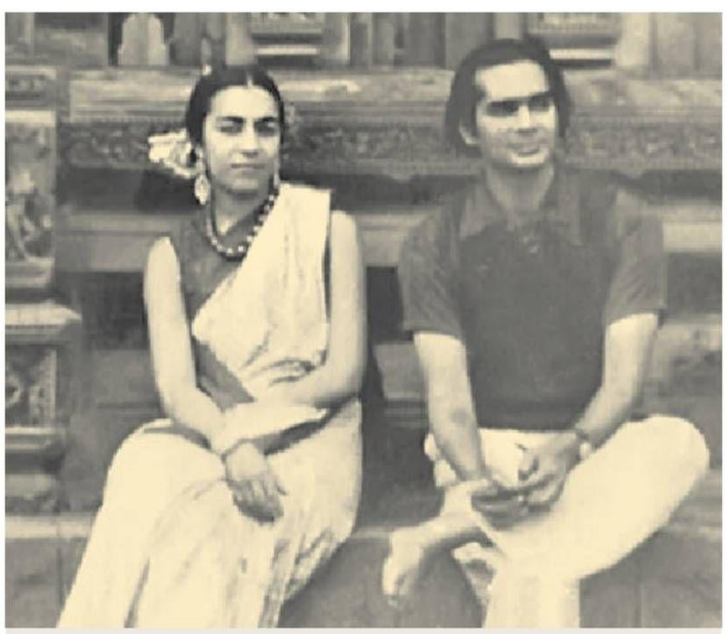
ज़िंदादिल ज़ोहरा

– अजय कुमार शर्मा

भारतीय जनसंचार संस्थान, दिल्ली से हिंदी पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता से निरंतर जुड़ाव, वृत्तचित्रों और टेली सीरियल के लिए पटकथा लेखन और निर्देशन सहयोग।







बड़े पर्दे पर कमाल

ज़ोहरा की पहली फिल्म 'धरती के लाल' थी, जिसका निर्माण इप्टा ने किया था और इसके निर्देशक थे ख़्वाज़ा अहमद अब्बास। इस दौरान उन्होंने कई फिल्मों में नृत्य निर्देशन का कार्य भी किया जिनमें प्रमुख थीं - बाज़ी, सीआईडी, नौ दो ग्यारह आदि। आवारा का ड्रीम सिक्वेंस भी उनके द्वारा ही निर्देशित था। चेतन आनंद की फिल्म 'नीचा नगर' में भी उन्होंने काम किया, जिसे कांस फिल्म फेस्टिवल में पुरस्कृत किया गया।

क़िस्मत और कला की एक आवाज़ पर सारी नैमतें ठोकर में उड़ा, एक राजकुमारी चल निकली सड़क पर चोर बनने, चुराने को ज़िंदगी से ज़िंदादिली...

सपनों के पीछे भागती राजकुमारी

ज़ोहरा मुमताज़ुल्लाह बेगम का जन्म 27 अप्रैल 1912 में तत्कालीन संयुक्त प्रांत (वर्तमान में उत्तर प्रदेश) के सहारनपुर में हुआ। उनके पिता रामपुर के मो. मुमताजुल्लाह ख़ान एक पठान सरदार थे, जिनकी जड़ें अफ़ग़ानिस्तान से जुड़ी थीं। ज़ोहरा की मां नातिका बेगम नजीबाबाद के संस्थापक और नवाब नजीबुद्दौला के ख़ानदान से थीं। ज़ोहरा अपने माता-पिता की तीसरी संतान थीं। उनकी पैदाइश के समय उनके पिता ब्रिटिश प्रांतीय सेवा में बड़े अधिकारी थे और उन्हें ख़ान साहब की उपाधि दी गई थी। साढ़े सात साल की उम्र में ज़ोहरा की मां नहीं रहीं, लेकिन उनकी आख़िरी ख़्वाहिश को ध्यान में रखते हुए ज़ोहरा और उनकी बहन को अच्छी शिक्षा के लिए लाहौर के क्वीन मैरीज़ कॉलेज में पढ़ने भेजा गया जो उस वक़्त के लिहाज़ से बहुत बड़ी बात थी। ये स्कूल प्रमुख रियासतों के शाही परिवार की लड़कियों की पढ़ाई के लिए ही जाना जाता था।

हुनर जो हर नज़र को क़ायल कर गया

19 अक्टूबर 1919 को ज़ोहरा बेगम ने यहां प्रवेश लिया, अपनी बड़ी बहन हाज़रा के साथ। पढ़ाई में श्रेष्ठ होने के बाद भी उन्हें दसवीं क्लास में ढाई साल तक रोका गया, क्योंकि स्कूल के नियमानुसार 15 साल की उम्र के बाद ही मैट्रिक परीक्षा देने की अनुमति थी। यहां रहकर वे कई नाटकों का हिस्सा बनीं। यहीं उनके भीतर की अदाकारा को सराहा गया। यहीं उनके मन में अभिनय का बीज फूटा।

पर, क्वीन मैरीज़ कॉलेज के सूत्र वाक्य 'सादगी के साथ सेवा' के बाद भी इस जगह ने उन्हें अंग्रेज़ीदां घमंडी लड़की में बदल दिया था। जब उन्होंने 1929 में स्कूल छोड़ा तो अपने ही देश के बारे में उनकी जानकारी काफ़ी कम थी।

कला में ही खिली, कला में ही बिखरी

पढ़ाई ख़त्म होते ही इंग्लैंड में रह रहे उनके बड़े भाई ने उन्हें चिट्ठी लिखकर पहली भारतीय महिला पायलट बनने के बारे में पूछा। वे तैयार हो गईं किंतु अब्बाजान की भावुकता के चलते बात नहीं बनी। इसी दौरान उनके मामा कार से यूरोप यात्रा के बारे में सोच रहे थे। अभिनय में ज़ोहरा की रुचि को देखते हुए उन्होंने इंग्लैंड के ड्रामा स्कूलों के बारे में बताकर साथ चलने की बात कहीं। सफ़र की मुश्किलों के बावजूद ज़ोहरा ने हामी भर दी। अक्टूबर 1930 में देहरादून से एक खुली डॉज टूअरर में यह सफ़र शुरू हुआ जो काफ़ी मुश्किलों के बाद लेबनान पहुंचा। वहां से उनके कारवां में उनके मामू का बेटा महमूद (ऑक्सफोर्ड) और मिस बेनेडिक्टा हासलंड (ओस्लो) जो एक वास्तुकार थीं, शामिल हुए। ज़ोहरा के नृत्य हुनर को देख महमूद ने उन्हें डांसर बनने के लिए प्रेरित किया। उन दिनों वे डांसर इज़ाबेला डंकन की आत्मकथा 'माई लाइफ़' पढ़ रही थीं और उनसे काफ़ी प्रभावित भी थीं। बस फिर ड्रामा छोड़, उन्होंने आगे नृत्य का प्रशिक्षण लेने का अपना इरादा ज़ाहिर किया और इंग्लैंड जाने की बजाय नृत्य सीखने जर्मनी के ड्रेसडेन पहुंचीं। यहां उन्होंने मैरी विग टांज स्कूल में दाख़िला लिया। और अपना नाम ज़ोहरा मुमताज़ुल्लाह ख़ान से सिर्फ़ ज़ोहरा मुमताज़ कर लिया। उन्होंने बच्चों को डांस सिखाने का शैक्षणिक पाठ्यक्रम चुना और तीन साल का पाठ्यक्रम ढाई साल में ही पूरा कर लिया। यहां प्रशिक्षण के दौरान सीखे व्यायाम, मंच पर प्रदर्शन के लिए 14-14 घंटे निरंतर चलने वाली शारीरिक गतिविधियों ने उन्हें बाद में बुढ़ापे में सक्रिय और स्वस्थ रहने में काफ़ी मदद की। भारत वापसी के समय उनका मन भारतीय नृत्य सीख पूर्व और पश्चिम की नृत्यशैली को मिलाकर एक नई नृत्य शैली विकसित करने का था, जिसका प्रशिक्षण वे स्कूलों में दे सकें।

भारत लौटते ही वे काम की तलाश में लग गईं। कई यूनिवर्सिटी और कॉलेज में कोशिश करने के बाद वे प्रिंसिपल मिस कोक्स के आग्रह पर अपने ही स्कूल में पढ़ाने लगीं। यहां उन्हें डांस नहीं 'म्यूज़िकल ड्रिल' की शिक्षिका के रूप में रखा गया। लेकिन उनकी डांस सिखाने की बात ज़्यादा दिन छुपी नहीं रह सकी। दूसरे ही साल उन्हें उनके भाई ने एक विज्ञापन भेजा, जिसमें देश के मशहूर नर्तक उदय शंकर ने अमेरिका जाने वाले डांस टूर के लिए अच्छे घरों के उम्मीदवारों को शामिल होने के लिए आमंत्रित किया था। ज़ोहरा उदय शंकर से पहले से परिचित थीं। 1935 की गर्मियों में उनके लाहौर दौरे पर वे उनसे मिलीं और डांस ग्रुप में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की। उदय शंकर ने उस समय की व्यस्तता के चलते अपने छोटे भाई के पास उनका पता छोड़ने को कहा। ज़ोहरा को लगा शायद उदय शंकर बहुत शिष्टता के साथ उन्हें टाल रहे हैं, लेकिन फिर भी वे उनके छोटे भाई को स्कूल और घर का पता दे आईं।

दादा उदय शंकर के साथ-साथ

जब ज़ोहरा अपने अब्बू के पास पौड़ी (गढ़वाल) में थीं, तभी उन्हें एक तार मिला- 'जापान के लिए 11 अगस्त को रवानगी। क्या तुम फ़ौरन शामिल हो सकती हो- उदय शंकर।' उनकी ख़ुशी का ठिकाना ही नहीं था। अपने अब्बू से अनुमति लेकर वे इस नए सफ़र पर चल दीं। केवल ग्यारह दिन में उन्होंने नृत्य सीखा और 8 अगस्त 1935 को कलकत्ता के सबसे लोकप्रिय थियेटर 'द न्यू एंपायर' में वे मंच पर पहली बार उतरीं। उस समय उदय शंकर एक स्विस मूर्तिकार मिस एलिस बोनेर के साथ डांस मंडली चला रहे थे। यह विदेशी दौरा उनकी कला की दृष्टि से काफ़ी सफल रहा, लेकिन व्यावसायिक नज़र से यह उतना फ़ायदेमंद नहीं रहा और तय समय से पहले ही भारत लौट आया। जनवरी 1936 में पूरी मंडली बॉम्बे से पानी के जहाज़ से फिर रवाना हुई। इस बार चार महीने का उनका सफ़र कई ख़ूबसूरत देशों से होकर गुज़रा। इसी दौरे में मशहूर सरोदवादक उस्ताद अल्लाउद्दीन ख़ान के साथ बहुत ही प्रतिभाशाली युवा कथकली डांसर माधवन नायर और ज़ोहरा की छोटी बहन उज़रा भी दल में शामिल हुए। यात्रा सफल रही। अमेरिका में इस दल का बेहद गर्मजोशी से स्वागत हुआ। उदय शंकर को वहां अथाह प्यार और इज़्ज़त मिली। हॉलीवुड की कई मशहूर हस्तियों को क़रीब से जानने का मौक़ा उन्हें मिला। पर मई 1938 में बाली के दौरे में एक-एक करके मुसीबतें सामने आने लगीं और इसके चलते दल 16 जुलाई 1938 को ही वापस कलकत्ता आ गया।

भारत लौटकर शंकर दादा अपनी कलाकार मंडली के लिए एक स्थायी जगह ढूंढ रहे थे, जहां वे अपनी ख़ास डांस शैली पर काम कर सकें। इस हेतु अल्मोड़ा की एक जगह चुनी गई और उदय शंकर सांस्कृतिक केंद्र खोला गया। पिछले दो सालों में बिछड़े सभी लोगों को बुलाया गया। इस तरह मार्च 1939 में इस स्कूल की विधिवत शुरुआत हुई। पहले सत्र में दस छात्रों ने दाख़िला लिया। धीरे-धीरे केंद्र की ख्याति बढ़ती गई और बड़े-बड़े घरानों के लोग यहां प्रशिक्षण पाने आने लगे। उस समय केंद्र में आने वाले महत्वपूर्ण लोगों में विजयलक्ष्मी पंडित की दो बेटियां भी शामिल थीं। बाद में वहां गुरुदत्त भी पहुंचे।

जारी... ज़िंदगी की किताब...



ज़ोहरा को पढ़ना, जी भर के सांस लेने जैसा है। वे अपने काम, ईमान, रिश्तों और उम्र, हर एक पहलू में ख़ूबसूरत रहीं। बालों की सफ़ेदी हो या क़िस्मत की उलझन... उन्हें कभी तोड़ नहीं पाई।

हसरत, हुनर और हिम्मत की ज़ोहरा

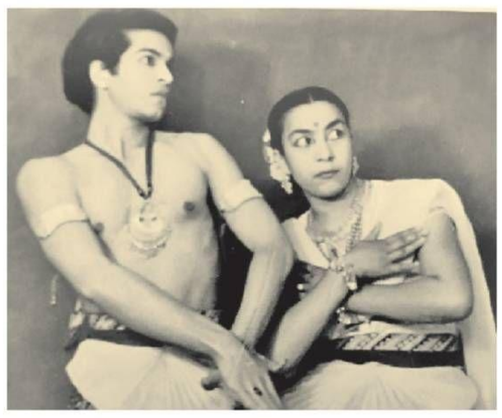
कामेश्वर सहगल इंदौर के आर्ट्स कॉलेज से आए पेंटिंग के विद्यार्थी थे। हंसी-मज़ाक़ की ज़बरदस्त समझ के अलावा उनकी बहुत-सी प्रतिभाओं ने उदय शंकर सहित ज़ोहरा को भी प्रभावित किया। मंच, पोशाक और बाक़ी चीज़ों के डिज़ाइन और तैयारी में दादा उनकी मदद लेने लगे थे। उसी दौरान ज़ोहरा और कामेश्वर को ज़्यादा समय साथ बिताने को मिला और धीरे-धीरे दोस्ती प्यार में बदल गई। पर शादी को लेकर उनके बीच कई दिक़्क़तें थीं, जैसे- पहला अध्यापिका और छात्र का रिश्ता, दूसरा कामेश्वर का उनसे उम्र में आठ साल छोटा होना और हिंदू धर्म का होना। लेकिन कामेश्वर की ज़िद के आगे सब हार गए। अब्बाजान की नामंज़ूरी के चलते उनकी शादी बड़ी बहन हाज़रा के कहने पर इलाहाबाद में हुई। 14 अगस्त 1942 की दोपहर को रजिस्ट्रार के यहां शादी की क़ानूनी कार्यवाही पूरी हुई। एक व्यक्ति को छोड़कर कामेश्वर के परिवार से कोई भी नहीं आ सका। कर्फ़्यू के चलते अगले दिन रॉयल होटल में होने वाली बड़ी दावत का कार्यक्रम भी फीका ही रहा।

कामेश्वर का हाथ थामे लाहौर से बॉम्बे

एक महीने बाद वे दोनों अल्मोड़ा लौटे। सांस्कृतिक केंद्र में विवाहित जोड़ों के रहने के लिए कोई इंतज़ाम न होने के चलते वे पहले-पहल सफ़ेदी पुतवाकर कोयले के एक ख़ाली गोदाम में रहे। कामेश्वर की कला ने उस बेकार-सी जगह को भी अपनी रचनात्मकता से सुंदर बना दिया। अगले ही साल अपनी सहूलियत के साथ उन्होंने लाहौर में किराए का मकान लेकर जोरेश डांस इंस्टीट्यूट शुरू किया जिसने जल्द ही शहर का दिल जीत लिया। ये उन दोनों के जीवन के सुनहरे दिन थे और इसी दौरान 17 नवंबर 1944 को उनकी बेटी किरण का जन्म हुआ। अपने एक दोस्त की सलाह पर दोनों ने मार्च 1945 में देशभर में एक दौरे की शुरुआत की। चार महीने के इस दौरे में उन्होंने कई शहरों में शो किए। अंतिम शो कलकत्ता के उसी न्यू एंपायर थियेटर में हुआ, जहां ज़ोहरा पहली बार मंच पर उतरी थीं। शो हिट रहा, लेकिन आर्थिक नुक़सान हुआ। लाहौर वापस आते ही देश में बंटवारे की संभावना के चलते माहौल बिगड़ने लगा था, ऐसे में दोनों ने लाहौर छोड़कर बॉम्बे जाने का फ़ैसला किया।

पृथ्वी को सौंपे जीवन के चौदह साल

उनकी छोटी बहन उज़रा जो पृथ्वी थियेटर में अभिनेत्री थीं, अपने पति हामिद बट के साथ बांद्रा में चेतन आनंद के साथ एक फ्लैट में रह रही थीं। उस छोटे-से फ्लैट में चेतन आनंद के परिवार के साथ ही उनके भाई देवानंद, विजय आनंद और उनकी बहन का बड़ा परिवार भी रह रहा था। कुछ महीनों बाद उज़रा मरीन ड्राइव पर अपने घर चली गईं और ज़ोहरा को नीचे वाला फ्लैट किराए पर मिल गया। इस बीच उन्हें पृथ्वी थियेटर के नाटक 'दीवार' का प्रीमियर देखने का मौक़ा मिला। वे इस नाटक और थियेटर कंपनी की दीवानी हो गईं। दीवार (जो कि आम आदमी की ज़ुबान में ज़मीनी हक़ीक़त पर आधारित मौलिक नाटक था) ने उनमें थियेटर करने की ललक फिर पैदा की। वे पापाजी (पृथ्वीराज कपूर को सब इसी नाम से पुकारते थे) से मिलने जा पहुंचीं और अपनी कंपनी में भर्ती करने की गुज़ारिश की। पहले वे संकोच में थे लेकिन ज़ोहरा की ज़िद के आगे उन्हें मजबूरन कहना पड़ा कि जब तक तुम्हारे लिए अभिनय का कोई मौक़ा नहीं निकलता, तब तक तुम कंपनी



में डांस डायरेक्टर का काम कर सकती हो। इस तरह उन्होंने अक्टूबर 1945 से पृथ्वी थियेटर में काम शुरू किया। वे इस कंपनी में 14 साल के लंबे समय तक रहीं। दीवार के सफल मंचन के बाद कंपनी ने प्रदर्शन के लिए देशभर के दौरे शुरू किए।

पूरी कंपनी में 60 से ज़्यादा लोगों का स्टाफ था, और वे तीसरे दर्जे में सफ़र करते थे। जिस शहर में शो होते, वहां किराए पर घर लेकर पूरी टीम रहती। टीम में ख़ानसामे और बर्तन से लेकर बच्चे तक शामिल होते। पूरा मजमा एक सर्कस की तरह होता था, जिसमें रहना-खाना मुफ़्त। और तो और जो बच्चे छुट्टियों में टूर के साथ होते उन्हें भी 1 रुपये माहवार दिया जाता।

कभी राजकुमारी की तरह रहीं ज़ोहरा इन दौरों के चलते कैंप-सी ज़िंदगी जीते-जीते अब एक सामान्य ज़िंदगी जीने लगी थीं। पृथ्वी थियेटर के साथ रहते हुए उन्होंने पूरा देश घूमा। उन्होंने 112 शहरों में पृथ्वी के नाटकों शकुंतला और दीवार के बाद छह नाटकों- पठान, ग़द्दार, आहुति, कलाकार, पैसा और किसान जो कि उनका और पृथ्वी थियेटर का भी अंतिम नाटक था, में अभिनय, कॉस्ट्यूम और नृत्य निर्देशन किया। सौ लोगों के स्टाफ के साथ 16 सालों में पृथ्वी थियेटर ने 2,262 शो किए जो अपने आप में एक विश्व रिकॉर्ड है। मई 1960 में पृथ्वी थियेटर बंद हो गया। पृथ्वी थियेटर में काम करते हुए ज़ोहरा-कामेश्वर की दूसरी संतान पुत्र पवन (20 मई, 1953) का जन्म हुआ।

वो सहारा जिसके साथ देखा हर सपना

इस बीच उनके पति कामेश्वर ने विभिन्न कला माध्यमों में अपना हाथ आज़माया। फिल्म निर्देशन, पटकथा लेखन, अपनी पेंटिंग्स और मूर्तियों की प्रदर्शनी। सहगल बैले कंपनी के अलावा उन्होंने होम्योपैथी की दवाइयों का वितरण भी किया। लेकिन सफलता उन्हें मानो क़िस्तों में बहुत कम समय के लिए मिलती। किसी भी हुनरमंद कलाकार के लिए यह स्थिति दिल तोड़ने वाली होती है। नाउम्मीदी के चलते वे धीरे-धीरे सबसे अलग-थलग होते चले गए और शराब तथा अन्य नशों के नज़दीक पहुंचते चले गए। उन्होंने स्थानीय महुआरों से काला जादू भी सीखा, जिसके लिए वे घंटों दरवाज़ा बंद करके बैठे रहते। 11 मई 1959 की एक रात को कुछ ऐसा हुआ कि सुबह ज़ोहरा उठीं तो उन्होंने कामेश्वर के कमरे के बाहर लगी पर्ची देखी जिस पर लिखा था, 'परेशान मत करना, मैं छिप रहा हूं।' दोपहर जब वे रिहर्सल के बाद घर वापस आईं तब कमरा बंद था। उन्हें चिंता तब हुई जब शाम को वे एक नाटक देखकर लौटीं और उनका कमरा तब भी बंद पाया। कमरे की लाइट जल रही थी। उनकी बेटी किरण ने लैवेटरी की खिड़की से उतरकर दरवाज़ा खोला तो कामेश्वर बिस्तर पर ऐसे पड़े थे जैसे शांति से सो रहे हों। वे दुनिया छोड़ चुके थे।

जारी... ज़िंदगी की किताब

जब नेहरू जी हुए नाराज़

जब ज़ोहरा सहगल गणतंत्र दिवस पर लोकनर्तकों की प्रस्तुतियां तैयार कर रही थीं, तब एक बार टोलियों को इनाम देने के लिए प्रधानमंत्री के घर पर हो रहे कार्यक्रम में पहुंचीं। उद्घोषक की अनुपस्थिति में उनके हाथों में जीतने वालों की एक सूची थमा दी गई और माइक के आगे खड़ा कर दिया गया। बहरहाल, अपनी घबराहट को जितना मुमकिन था छिपाते हुए उन्होंने ऊंची और साफ़ आवाज़ में अंग्रेजी में बनावटी लहजे में पहले पुरस्कार की घोषणा की। नेहरू जी तुरंत ग़ुस्से से आगबबूला हो गए! टोली में आगे खड़ी एक हंसती हुई देहाती लड़की को उनके आगे किया और बोले- 'तुम कैसे सोच सकती हो कि यह बच्ची तुम्हारी अंग्रेज़ी में कही बात समझ पाएगी?' सूची में अगले इनाम 'रनर्स अप' यानी दूसरे-तीसरे स्थान पर आई टीमों के लिए थे। वे 'रनर्स अप' का हिंदी शब्द सोच ही नहीं पा रही थीं। यह शायद उनके कॅरियर का सबसे शर्मिंदगी भरा लम्हा था, लेकिन उन्होंने हिम्मत दिखाते हुए ख़ुद पंडित जी से ही पूछ लिया, 'रनर्स अप के लिए हिंदी में क्या कहा जाएगा?' अब अटकने की बारी पंडित जी की थी। 'रनर्स अप? रनर्स अप?' चहलक़दमी करते हुए वे शब्द दोहराते हुए सोचने लगे और बोले, 'फ़िलहाल इसके लिए रनर्स अप ही इस्तेमाल करो, लेकिन बाक़ी घोषणा हिंदी में करना!'

कभी डरकर- हंसकर वो बस परदे पर ही नहीं, उसके पीछे असल ज़िंदगी में भी किरदार बदलकर कड़वे इम्तहानों से दो-चार होती रहीं। उनके क़िस्से जीने को दो पल भी पर्याप्त है और उम्र के दो सौ भी कम।

प्रिंसिपल से ड्रेसर तक के किरदार में

अपने साथी से बिछड़ने के सदमे से उबरने के लिए उन्होंने बांद्रा का फ्लैट छोड़ उज़रा के मरीन ड्राइव वाले घर में रहना शुरू किया। बेटी किरण अपनी पढ़ाई पूरी करने अलीगढ़ यूनिवर्सिटी चली गई और बेटे पवन को ममेरी बहन हामीदा की मदद से आगे की पढ़ाई के लिए देहरादून के वेलहम स्कूल में भेजा। उन्होंने भी ज़िंदगी को फिर से पटरी पर लाने की चार महीनों की विफल कोशिश के बाद अक्टूबर 1959 में पृथ्वी थियेटर छोड़ दिया।

एक बार फिर नृत्य से अदाकारी की ओर

दिल्ली में किसी काम के सिलसिले में कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने उनकी सहायता की और वहां शीघ्र ही खुलने वाली डांस एवं ड्रामा अकादमी का काम उन्हें सौंपा। संघ की अध्यक्ष बेगम ज़ैदी ने उन्हें हिंदुस्तानी थियेटर के कलाकारों को प्रशिक्षण देने का काम भी सौंप दिया। नाट्य प्रशिक्षण की विधिवत शिक्षा न लेने के कारण, असमंजस की स्थिति में वे इसका पाठ्यक्रम तैयार करने, एक महीने के लिए बॉम्बे गईं और इब्राहिम अल्काज़ी से मिलीं। अल्काज़ी ने बहुत मेहनत के साथ उन्हें थियेटर की दुनिया का पूरा ख़ाका समझाया। दिल्ली लौटकर उनकी ज़िंदगी फिर सामान्य होने लगी। 1960 में अकादमी की शुरुआत हुई और दो ही सालों में उनके छात्रों की संख्या 60 तक पहुंच गई। लेकिन दिल्ली नाट्य संघ के सदस्य उनकी शैक्षिक योग्यता की कमी से नाराज़ थे। ऐसे में उनके सबसे बड़े सहारे बेगम ज़ैदी की दिल के दौरे से हुई मौत ने उन्हें और तोड़ दिया। अब वे दूरदर्शन पर काम करने लगीं और शंकर्स वीकली पत्रिका के लिए नाट्य समीक्षा लिखने लगीं। साथ ही रक्षा मंत्रालय द्वारा गणतंत्र दिवस पर होने वाले लोकनृत्यों को तय करने और उन्हें प्रस्तुत करने का काम भी उन्हें मिला। जीजाजी ज़ेड ए. अहमद के कहने पर उन्होंने यूरोप में भारतीय नृत्य और नाटक पर अपने लेक्चर के लिए कई दूतावासों में अर्ज़ी डाली और मंज़ूर होने पर वे एक बार फिर तीन महीने की यूरोप यात्रा पर निकल गईं। दिल्ली नाट्य संघ से तीन महीने की छुट्टी लेकर वे 16 मार्च 1962 को मॉस्को पहुंचीं। वहां होटल तक प्रख्यात लेखक भीष्म साहनी उनके साथ थे। वे मॉस्को के अलावा बाकू, बर्लिन, ड्रेसडेन और प्राग गईं।

झुर्रियों भरे चेहरे से जीता सबका दिल

18 अप्रैल 1962 को वे लंदन पहुंचीं। यहां उन्हें ब्रिटिश ड्रामा लीग के दस हफ़्तों के एक कोर्स में दाख़िला मिला जो कलाकारों और नाटककारों के लिए था। इस कोर्स के दौरान उनमें फिर से जीने की उम्मीद जगी। उन्होंने कुछ दिन और लंदन रहने का निर्णय लिया। पर साथ ही लकीरों में लिखीं परेशानियों ने उन्हें कभी प्रिंसिपल, कभी ड्रेसर, सेल्सवर्कर तो कभी टी सेंटर के कार्यकर्ता के किरदारों से भी मिलवा दिया। हां, बीच-बीच में वे रेडियो और टेलीविजन के लिए छोटे-मोटे कार्यक्रम करती रहीं। पर असली काम उन्हें मिला फिल्म 'द लॉन्ग डुअल' से, जिसमें युल ब्रायनर और ट्रेवर होवार्ड काम कर रहे थे। यह फिल्म भारत के मशहूर डाकू सुल्ताना पर थी। इसके बाद वे कई धारावाहिकों और फिल्मों में उम्दा अदाकार की भूमिका निभाती नज़र आईं। रावलपिंडी में अपने बहनोई हामिद बट के इंतकाल के समय 'द गुरु' की शूटिंग पूरी करते ही, वे उज़रा के साथ पहली बार पाकिस्तान गईं और वहां अपने दो भाइयों और बहनों से मिलीं। बेटी किरण ने इस बीच एक स्विस लड़के वॉल्टर बॉशी से 1970 में शादी कर ली थी और 13 जून 1972 को उनकी एक बेटी सुजाता का जन्म हुआ। पवन भी पढ़ाई पूरी कर आर्ट के एक स्कूल में पढ़ने लगा था।

33 साल बाद दोनों बहनें आईं साथ

ज़ोहरा और उनकी छोटी बहन उज़रा के बीच काफ़ी घनिष्ठ और भावनात्मक संबंध थे क्योंकि दोनों साथ पढ़ी तो थीं ही, उदय शंकर डांस ग्रुप और पृथ्वी थियेटर में भी दोनों ने वर्षों साथ काम भी किया था। आर्थिक रूप से मदद के लिए भी वे हमेशा उज़रा और उनके पति पर ही निर्भर रहीं। पृथ्वी थियेटर बंद होने पर उज़रा अपने पति के साथ पाकिस्तान रहने चली गई थीं। काफ़ी लंबे समय के बाद एक नाटक 'एक थी नानी' में ये दोनों बहनें 33 साल बाद एक साथ काम कर पाईं। इस नाटक को एक पाकिस्तानी लेखक शाहिद नदीम ने लिखा था। अजोका थियेटर के साथ 1995, 1996 में लाहौर, कराची और इस्लामाबाद में इसके शो हुए। इसकी कहानी इन दो बहनों की ज़िंदगी से प्रेरित थी। बाद में इसका शो लंदन में भी हुआ।

लंदन से दिल्ली और फिर लंदन

सितंबर 1973 में दिल्ली आने पर मशहूर कत्थक डांसर माया राव ने उन्हें अपने डांस स्कूल के छात्रों से मिलने को आमंत्रित किया। सारे बच्चों में उनकी विदेश यात्राओं को लेकर कौतूहल था। वहां उपस्थित तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सामाजिक सचिव उषा भगत और बाल भवन की निदेशक शांता गांधी ने उनसे भारत लौट आने की बात कही। दरअसल उस समय एक लोकनृत्य इकाई के गठन की तैयारी चल रही थी और उसके डायरेक्टर की तलाश भी जारी थी। उषा भगत ने श्रीमती गांधी को उनका नाम सुझाया तो वे तुरंत मान गईं। ज़ोहरा भी अपने घर वापस लौटना चाहती ही थीं। इस प्रयास ने उन्हें एक अवसर दिया, लेकिन लाख सभी की कोशिशों के बावजूद यह प्रयास दम नहीं भर पाया और दिल में खीज लिए वे फिर 2 मई 1976 को लंदन लौट गईं। लंदन आकर उन्होंने बुढ़ापे में मिलने वाले भत्ते के लिए अर्ज़ी दी। वहीं उन्हें बीबीसी की सीरीज़ 'पड़ोसी' में काम करने का अवसर मिला। अक्टूबर 1977 में प्रसारित यह सीरीज़ बहुत लोकप्रिय हुई और उन्हें व्यापक पहचान मिली। इसमें उनके साथी कलाकार रोशन सेठ, इंदिरा जोशी और सोनी राज़दान थे। लेकिन उनकी क़िस्मत चमकी 'ज्वेल इन द क्राउन' सीरीज़ से, जिसमें उन्होंने लेडी लिली चटर्जी की भूमिका निभाई। इसका प्रीमियर 9 जनवरी 1984 को टेलीविज़न पर हुआ। अब उन्हें बिना मांगे काम मिलने लगे और अच्छा मेहनताना भी। ज्वेल के बाद उनका अभिनय और थियेटर दोनों जारी रहे।

वतन वापसी के बाद भी जारी काम

लंदन की आबो-हवा में रच-बस जाने के बाद भी सितंबर 1987 में उन्होंने भारत लौटने का निर्णय लिया। उनके दोनों बच्चे अपने परिवार के साथ दिल्ली में ही रह रहे थे। यहां आकर भी उन्होंने अपना काम जारी रखा। भारत में रहते हुए उन्होंने विदेश और देश के 14 नाटकों, 8 विदेशी फिल्मों और 18 भारतीय फिल्मों तथा चार विदेशी टेलीविज़न सीरीज़ और 8 भारतीय टीवी शृंखलाओं में काम किया। क़रीब आठ दशक तक अपने सक्रिय और विविधता से भरे कॅरियर से दर्शकों को लुभाने वाली ज़ोहरा सहगल को 1988 में पद्मश्री, 2001 में कालिदास सम्मान, 2004 में संगीत नाटक अकादेमी की फैलोशिप और 2010 में देश के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान पद्मविभूषण से नवाज़ा गया। 10 जुलाई 2014 को दिल का दौरा पड़ने से वे 102 साल की उम्र में इस दुनिया को अलविदा कह गईं।

ज़ोहरा की बहुचर्चित फिल्में...

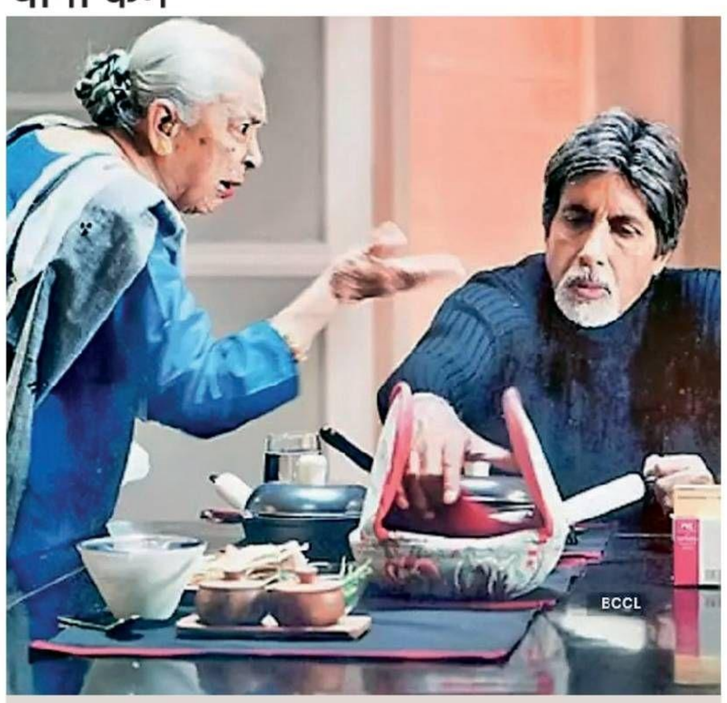
सांवरिया



दिल से



चीनी कम



कविताओं से प्यार...

बचपन में ज़ोहरा सहगल को कविताओं से कोई ख़ास लगाव नहीं था लेकिन बाद में ख़ासतौर पर 8 दिसंबर 1983 को पंडित रविशंकर द्वारा उदय शंकर की याद में आयोजित एक समारोह में उन्होंने एक कविता 'अभी तो मैं जवान हूं' सुनाई जिसे सभी ने बहुत पसंद किया। फिर तो वे लंबे समय तक कविताओं को पढ़ने के स्पेशल शो अलग से करती रहीं।

मिलनसार होना, दूसरों की परवाह करना अच्छी बात है। भारतीय समाज के आईने में तो ये और भी महत्वपूर्ण है। लेकिन इसके लिए...

हर एक की रज़ा में राज़ी होना...

...बिलकुल ज़रूरी नहीं होता। क्योंकि अच्छा होने का मतलब अपने जीवन, अपनी राय, अपनी इच्छाओं के साथ समझौता करना क़तई नहीं है।

सोरिना लालुका बबाऊ

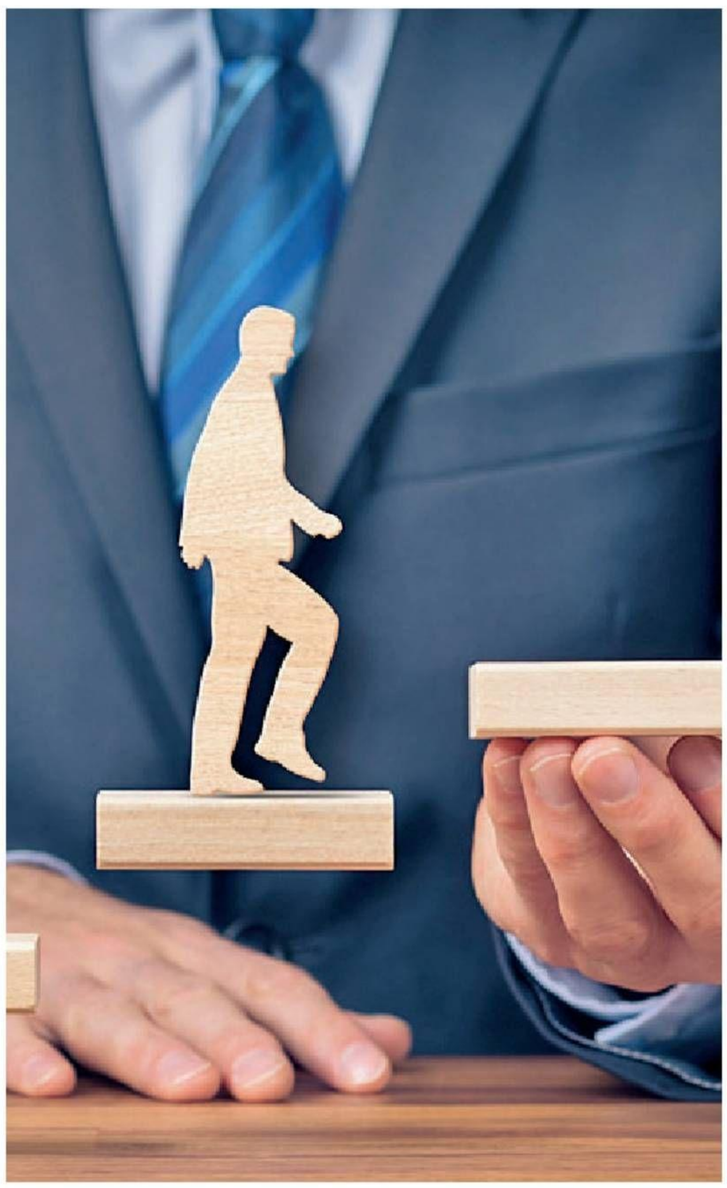
मनोचिकित्सक बनने के दौरान मुझे एक महिला मिली। उन्होंने मुझे यह आभास कराया कि मैं लोगों को ख़ुश करने के प्रयास में लगी रहती हूं। जिसे 'पीपल प्लीज़र' भी कहा जाता है। उनके साथ हुए पहले ही परामर्श सत्र के दौरान मुझे यह महसूस हुआ कि वे बातों का नियंत्रण अपने हाथ में लेना चाहती हैं और बातचीत में हावी होना चाहती हैं। जैसे-जैसे सत्र आगे बढ़े, उनकी मांग और भी अधिक बढ़ती चली गई। चाहे मैंने कितनी भी कोशिश की हो, अपना सर्वश्रेष्ठ दिया हो, उनके अनुसार हमेशा कुछ और बेहतर करने की गुंजाइश रह ही जाती थी। फिर मुझे एहसास हुआ कि उनमें कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जो अवचेतन रूप से मुझे मेरी मां की याद दिलाती थीं। इसी कारण मैं अपनी मां को ख़ुश करने, उनका प्यार और स्वीकृति पाने की बाध्यकारी ज़रूरत को उनसे जोड़ रही थी। देर से ही सही, इस बात का एहसास होना ही पर्याप्त था। इस अंतर्दृष्टि ने चीज़ों के प्रति मेरा नज़रिया बदल दिया। इसने मुझे अपने रिश्तों को गहराई से देखने-परखने का मौक़ा दिया, साथ ही यह भी महसूस करवाया कि इतने सालों से दूसरों को पसंद आने के नाम पर मैं ख़ुद पर दबाव बनाते हुए एक अनचाहे बोझ में जीती चली आ रही थी।

औरों की ख़ुशियों में ख़ुशी तलाशना

अपनी ज़रूरतों या इच्छाओं की क़ीमत पर दूसरों को ख़ुश करने की भावनात्मक ज़रूरत महसूस करने वाले लोग अपनी सीमाओं से बाहर जाकर भी लोगों का मन रखने से नहीं चूकते- चाहे फिर इससे उनका क़ीमती समय, भावनाएं और आर्थिक स्थिति ही ख़राब क्यों न हो। इन्हें बातचीत करनी हो या कोई कार्याभ्यास, परफेक्शन के नाम पर ज़रूरत से अधिक समय देना इनकी आदत होती है और कारण होता है बस औरों की नज़र में ऊंचा उठना। दरअसल, यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति स्वयं के महत्व को दूसरों की नज़रों से देखने की कोशिश करने लगता है। लगातार दूसरों को सहज महसूस कराने की कोशिश से उसे स्वयं की अहमियत बढ़ती हुई नज़र आती है, जो कि धीरे-धीरे आदत बन जाती है। कुछ हद तक इसे ठीक भी मानें लेकिन जब ये स्थिति स्वयं को कष्ट पहुंचाने लगे तो यहां इस पर ध्यान देने की ज़रूरत है। फ़िक्रमंद इंसान होना, सामाजिक संबंधों को महत्व देना अच्छी बात है, पर अपनी ख़ुशियों और मन की शांति को दांव पर लगाकर इसका सौदा करना बिलकुल भी ठीक नहीं।

आप तो नहीं पीपल प्लीज़र?

- क्या आपके जीवन की श्रेष्ठता मुख्य रूप से किसी बाहरी व्यक्ति की स्वीकृति पर निर्भर करती है?
- अपनी राय रखने के स्थान पर क्या आप बहस से बचने के प्रयास में रहते हैं?
- मिलनसार बनने के नाम पर क्या आप स्वयं को दबाने का प्रयास करते हैं?
- क्या आप ख़ुद को कमतर आंककर, दूसरों को ऊंचा स्थान देने की कोशिश करते हैं ताकि वे ख़ुश रहें?
- क्या दूसरों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए आप ख़ुद पर अत्यधिक दबाव डालते हैं?
- क्या आपको लगता है कि लोगों द्वारा आपका फ़ायदा उठाया जाता है?
- क्या आप वहां भी झुकने का प्रयास करते हैं जहां आपकी ग़लती न हो?
- क्या आप दूसरों की भावनाओं के लिए भी स्वयं को ज़िम्मेदार महसूस करते हैं?
- क्या आप दूसरों के सामने अपने असली व्यक्तित्व को खुलकर बाहर ला पाते हैं?
- क्या आप भी दूसरों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अपने मन और मूल्यों को दांव पर लगा देते हैं?
- क्या कभी किसी की बात पर हां करते ही आपका उससे मुकर जाने का मन करता है, पर आप ऐसा नहीं कर पाते?
- क्या आपको अपने निर्णयों के साथ अलगाव महसूस होता है?
- क्या कभी किसी और की बात मानते समय आपके आत्मसम्मान को ठेस पहुंची है?



कहां से जन्मती है यह भावना?

आमतौर पर इसकी जड़ें बचपन से जुड़ी होती हैं। हम छोटे बच्चों को अच्छा काम करने पर शाबाशी देते हैं और बुरा करने पर डांट लगाते हैं। ऐसे में अच्छे कार्य पर मिली सराहना उन्हें और अच्छे काम करने को प्रेरित करती है। कच्ची उम्र में सही-ग़लत का भान तो होता नहीं, बस अच्छे-बुरे के आधार पर वे उन कार्यों को करने लगते हैं जिससे उनके सामने वाले को ख़ुशी मिलती दिखे। परवरिश में पालकों की भावनात्मक अनुपलब्धता, उनसे मिला असुरक्षा का भाव या लाड़-प्यार में मिलने वाली कमी, ध्यान आकर्षित करने के नाम पर उन्हें अपने पालकों के पसंद का व्यवहार करने पर विवश कर देती है। ये माहौल घर ही नहीं बाहरी परिवेश से भी मिले तो व्यक्ति प्रभावित हो सकता है। एक और कारण किसी ग़लत रिश्ते में फंसना भी हो सकता है, जिसमें भावनात्मक या किसी अन्य प्रकार से आप पर दबाव बनाते हुए आपकी इस कमज़ोरी का फ़ायदा उठाया जा रहा हो। ऐसे में अपेक्षाओं पर काम करने वाले को और अधिक से अधिक काम करते हुए और स्वयं को थकाते हुए सामने वाले को संतुष्ट करने की इच्छा होती है, वहीं सामने वाले की इच्छाएं लगातार बढ़ती ही जाती हैं।

इस समस्या के निराकरण पर कार्य करते समय शुरू में थोड़ी परेशानी हो सकती है। हो सकता है इसके चलते पहले जो लोग आपका फ़ायदा उठा रहे थे उनके रवैये में भी अंतर देखने को मिले। आपका मन भी विचलित हो सकता है कि दूसरों को प्राथमिकता देने में आख़िर हर्ज ही क्या है! लेकिन यह ठीक नहीं। इसे सुधारें और अपने लिए जिएं। इस नए बदलाव को अपनाने में आपको और आपके अपनों को थोड़ा वक़्त लगेगा, पर निश्चित ही यह एक स्वस्थ और सुंदर क़दम होगा।

छह चरणों में सरल उपाय

- किसी भी बात पर तत्काल हामी भरने से पहले सोचने के लिए कुछ समय लें।
- -'मैं नहीं कर सकता/सकती' स्पष्ट उत्तर नहीं है। इससे सुनने वाला आपकी सीमाओं को मजबूरी समझ लेता है। स्पष्टता के साथ 'मैं नहीं करना चाहता/चाहती' कहें।
- मन से धारणाएं न बनाएं, जो भी बात हो स्पष्टता से उत्तर देने और जानने का प्रयास करें।
- अपने मूलभूत उद्देश्यों को जानें और दूसरों की ख़ुशी नहीं स्वयं की इच्छाओं पर कार्य करें।
- बाहरी बातों पर नहीं अपनी आंतरिक मान्यता को बढ़ाने पर ध्यान दें।
- इस तथ्य को स्वीकार कर लें कि आप सभी को ख़ुश/संतुष्ट नहीं कर सकते, और यह बिलकुल ठीक है।

यह व्यवहार आपको स्वार्थी नहीं बनाता, अपनी क़द्र करना सिखाता है।

('मीडियम' पर प्रकाशित लेख 'द साइकोलॉजी ऑफ पीपल प्लीज़िंग' के संपादित अंश, साभार)



हम **ब्रह्मांडीय खेल** के साक्षी मात्र हैं

चीज़ों में संतुष्टि तलाशने वाली सांसारिक बुद्धि को यह साधारण-सा तथ्य हैरान कर सकता है कि जीवन में जो कुछ भी सर्वाधिक संतुष्टिदायक है वह अमूर्त है, जैसे- कृतज्ञता, करुणा, भक्ति, आश्चर्य, वैराग्य और ध्यान।

श्रीमद्भगवद्गीता के ऐसे ही सूत्र उसे महज़ धर्मग्रंथ मानने या उसके ज्ञान को गूढ़ कहकर नकारने वालों की आंखें भी खोल सकते हैं।

श्रीकृष्ण में जो गूढ़ ज्ञानबुद्धि है वह हर प्राणी के भीतर है। बस यह हम पर है कि हम उस पर कितना ध्यान दे पाते हैं। गीता को हमें परमानंद और अनंत ऊर्जा के संवाहक के रूप में समझना चाहिए, ना कि केवल एक धार्मिक पुस्तक के रूप में। आपकी असली पहचान बाहरी मानवीय रूप से निर्मित 'लेबल' से न होकर भीतरी चेतना और ऊर्जा से अधिक होनी चाहिए।

— कृष्ण कहते हैं परिवर्तन के बीच शांत बने रहना आपके अंतःकरण को अधिक ऊर्जावान, शुद्ध, शक्तिशाली और गतिशील बनाता है। इससे परिस्थिति को स्पष्टता के साथ देखने-समझने और अपनी उच्चतम ऊर्जा को जाग्रत करके कार्य करने की क्षमता मिलती है।

— चीज़ों को यंत्रवत करने के बजाय जुनून के साथ करने में ही कार्य की उत्कृष्टता होती है। अपनी आतंरिक चेतना को जगाकर जैसे ही हम काम से भौतिकता से अलग होकर जुड़ने लगते हैं, वैसे ही उससे अधिक गुणवत्ता और उद्देश्य प्रकट होने लगते हैं।

— अतीत की चिंताओं को बार-बार याद करते रहने से व्यक्ति मानसिक रूप से कमज़ोर हो जाता है। अपने आप को अतीत से और मन को किसी नियंत्रण या प्रभाव के बोझ से मुक्त करके ही व्यक्ति अंतर्दृष्टि विकसित कर पाता है।

— परिस्थितियों के कारण तनाव में न आएं। तनाव लेकर आप अपने मन शरीर आत्मा की ऊर्जा के अनंत प्रवाह को बाधित करते हैं।

— जीवन को आरामदायक ढंग से जिएं, तनाव से लदकर नहीं। शांत मन संतुष्टिदायक परिणाम देता है। इसलिए मन ऐसा बना रहे जो सजग भी रहे और सजीव भी।

— आनंद सबसे बड़ी मानवीय क्षमता है। यही पूरे ब्रह्मांड की मौलिक विशेषता और आपके भीतर की मौलिक रचनात्मकता के रूप में विद्यमान है। इसे पाने का एकमात्र उपाय है शांतचित्त रहकर परम सुख और प्रसन्नता का अनुभव करना। यदि आप आनंदित रहेंगे तो बाक़ी लोग भी ख़ुशी-ख़ुशी आपके पीछे चले आएंगे, क्योंकि लोग केवल जीवंतता और आनंद की अनुभूति से ही आकर्षित होते हैं।

— आध्यात्मिकता का सार अपरिग्रह है। केवल अपरिग्रही कर्मों से ही सच्ची गतिशीलता आती है। जबकि परिग्रह और अधिकार की भावना सही मानसिक माहौल बनाने में मदद नहीं करती, उल्टा हमें भयभीत करती है। एक बार इससे छूटते ही आप अपने काम को लेकर गतिशील और जुनूनी हो जाते हैं।

— स्वयं को सभी कार्यों के कर्ता के रूप में देखना ही अहंकार की जड़ है। अस्तित्व के बहुत महत्वपूर्ण रूप में हम स्वयं को बहुत ही केंद्रीय भूमिका में रख लेते हैं। जबकि, श्रीकृष्ण कहते हैं कि हम तो ब्रह्मांडीय खेल के साक्षी मात्र हैं। मूर्खतापूर्ण अभिमान सदैव पतन की ओर ले जाता है। विनम्र, दयालु, स्वाभिमानी और मज़बूत बनें।

— कार्यों में पूर्णता हेतु साहस अत्यंत आवश्यक है। और साहस भी सहज पैदा होता है जब चेतना में पवित्रता होती है। इसलिए जीवन में प्रेम-भाव रखकर चेतना में पवित्रता लाएं। इससे आपको जीवन की सभी परिस्थितियों का सामना करने के लिए साहस मिलेगा।

— असली साहस के बिना न तो सच्ची भौतिक सफलता मिलती है न ही आध्यात्मिक संतुष्टि। सभी समस्याओं का खुलकर सामना करें। इससे आपकी उच्चतम मानवीय क्षमता जाग्रत होती है और तब दैवीय तत्व भी आपको और अधिक सुदृढ़ करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

— तत्परता और सजगता के साथ आगे बढ़ें और हर परिस्थिति के लिए तैयार रहें। सुख के बीच दुःख भी आ सकता है। समृद्धि और उछाल के बीच विनाश और निराशा भी। साथ ही कठिन समय में आशा की एक किरण भी झलक सकती है।

— विकसित होते रहें और अपने अस्तित्व के उज्ज्वल पक्ष की ओर बढ़ते रहें। आध्यात्मिक विकास पर ध्यान देने से आपको सभी बाधाओं को पार करके आगे निकलने में मदद मिलेगी।

— गूढ़ ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए हमें किसी मठ में नहीं जाना पड़ता। यह हमारे सभी कार्यों के बीच में उपलब्ध है। चाहे हम किसी युद्ध का नेतृत्व कर रहे हों या जीवन में किसी अन्य स्थिति का- हम चाहे जो भी कर रहे हों, परमशक्ति हमारे साथ सदा रहती है। इसके लिए हमें केवल ज्ञान की संभावना के प्रति जाग्रत रहना होगा। निष्कर्षतः हम चाहे कैसी भी गतिविधि में व्यस्त क्यों न हों, तब भी हृदय और मन को ध्यानपूर्ण, संतुलित, चिंतनशील और गतिशील स्थिति में पा सकते हैं।

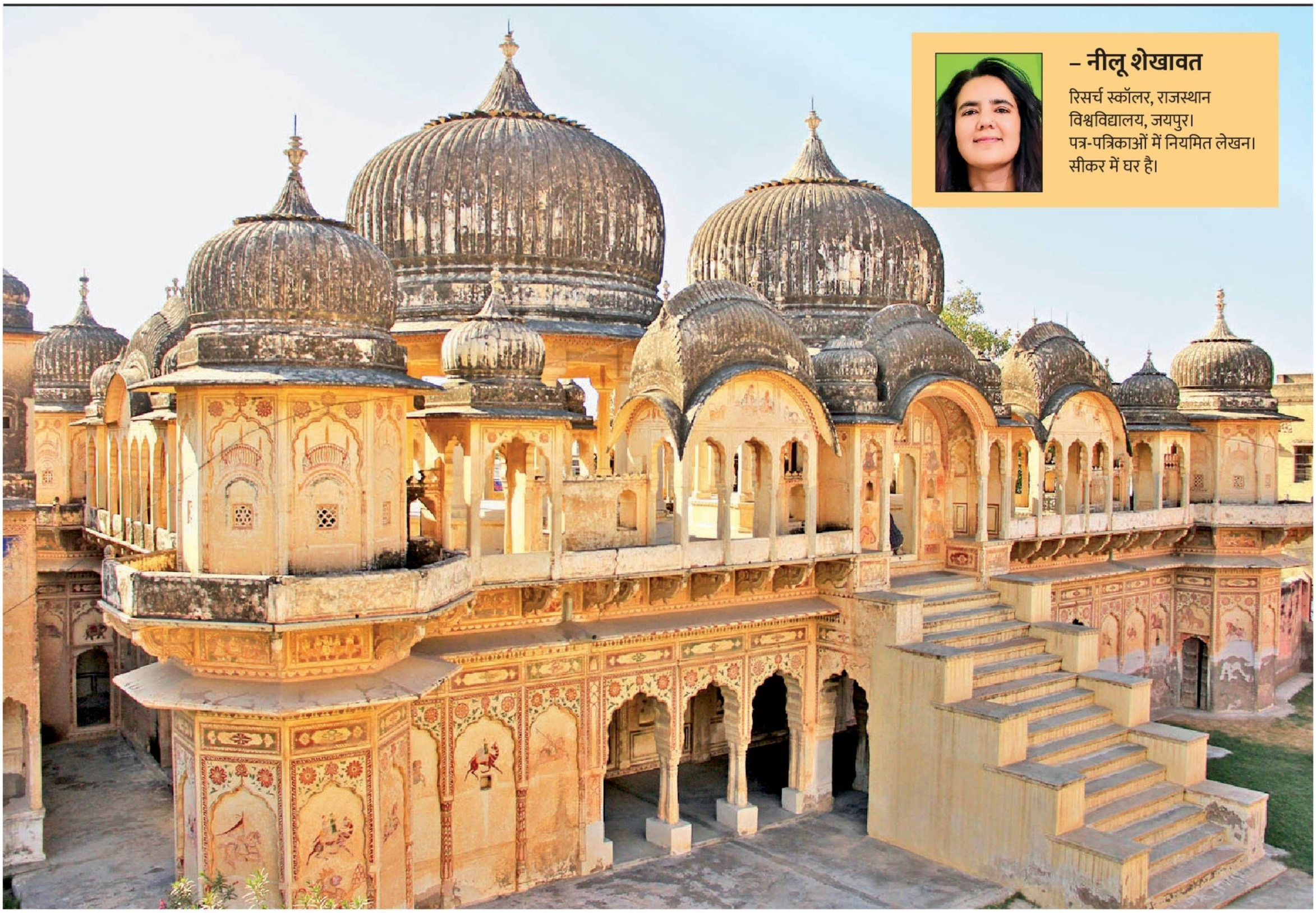
— एक बात जो महान अध्यात्मवादियों और महान नेतृत्वकर्ताओं की विशेषता है- उनकी विस्तृत और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि। कृष्ण इसी बोध को अर्जुन के आगे प्रकट करते हैं कि ब्रह्मांड के समस्त चर-अचर के निर्माता के प्रति उत्सुकता रखने से हमारी दृष्टि गहन होती है जो हमें बहुत अधिक चिंता या संदेह किए बिना महान उद्देश्यों को पाने के लिए सक्षम बनाती है।

— प्रभावी नेतृत्व का अर्थ ध्यान केंद्रित करने के साथ विचारों के खुलेपन को स्वीकारने वाले दृष्टिकोण से भी है। जहां लोगों को कुछ नया करने और सवाल करने की आज़ादी हो। यह एक व्यापक सिद्धांत है जो व्यवसाय, कला, विज्ञान जैसे सभी क्षेत्रों में काम करता है।

— जीवन में दिव्य संतुष्टि वस्तुओं से नहीं, बल्कि अस्तित्व को लेकर आती है और वास्तव में संतुष्टि उस पूर्ण आनंद से मिलती है, जिसमें मानसिक स्वास्थ्य और स्पष्टता झलकती है। जब मनोस्थिति या मनोविज्ञान स्पष्ट होता है, तो कर्म भी स्पष्ट होते हैं भावनाएं अनुभूतियां भी स्पष्ट हो जाती हैं। और सूक्ष्म या स्थूल स्तर पर आपको जो कुछ परेशान कर रहा होता है, उसका भी आप पर प्रभाव पड़ना बंद हो जाता है। सभी बंधनों से मुक्त होकर आप अपने सबसे गतिशील स्वरूप में आ जाते हैं।

— अपने भीतर की शांति और आनंद को तब भी नष्ट नहीं होने दें, जब ऐसा लगे कि बाहर की घटनाओं से दुनिया में भूचाल आ गया है। उस समय भी अपने भीतर संतुलन बनाए रखें। इससे स्वाभाविक रूप से आनंदमय उर्जा उत्पन्न होती है।

(विचारक प्रणय की पुस्तक 'गीता; नेतृत्व और सफलता के लिए अध्यात्म' से साभार)



– नीलू शेखावत

रिसर्च स्कॉलर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन।
सीकर में घर है।

शिखर है **सीकर**

सीकर ने कभी सिर नहीं झुकाया, सिर भले ही कटा लिया। अपने संगीत से सिर झुमाए भी। शिक्षा के मामले में भी शहर का सिर ऊंचा ही रहा।

सांस्कृतिक रूप से समृद्ध सीकर ने अपनी विरासत को संजोकर रखा है। उसमें अपने गौरव की स्मृति है और गौरवान्वित करने वालों के प्रति कृतज्ञता भी।

रिक्शा और गाड़ियों के शोरगुल से परेशान मैं अपनी हथेलियों से कान दबाकर नीची गर्दन किए बैठी हूं और इधर मेरी मित्र बार-बार कहती है- 'सुनो अपना सिर उठाओ।'

शोर जैसे आंखों के रास्ते घुस रहा हो, मैं ज़ोर से आंखें मींचकर गर्दन 'ना' में हिला देती हूं। वह फिर कहती है- 'सुनो तो अपना सिर उठाओ।' मैं उठाती हूं। 'थोड़ा और!' फिर उठाती हूं। 'थोड़ा और!' यह लड़की पीछे पड़ने पर बुरी है। नहीं-नहीं करते मेरी दृष्टि ने क़रीब 85 फीट की दूरी तय कर ली है। मित्र खिलखिलाकर हंस पड़ी।

'अब तक घड़ी देखी है, आज घड़ा देख।'

बाप रे! उसकी हंसी में मेरी भी साझेदारी हुई और बुलंदी ऐसी कि कनफोड़ू शोर में भी बहुत लोगों ने मुंडियां घुमाकर हमें देखा।

'समय के साथ चलना है तो सिर उठाना पड़ेगा,' लोगों के पलटकर देखने से झेंपते हुए वह बोली।

'नहीं, समय के साथ चलने वाले सिर उठाकर चलते हैं।' उसका वाक्य विन्यास हमेशा ऐसे ही गड़बड़ होता है।

'लेकिन तुम्हारे घड़े की गति बंद है। पौने पांच से आगे बढ़ता ही नहीं!'

अब यह बात पुरानी हो गई।

तब का घड़ा, अब का क्लॉक टॉवर और सबका घंटाघर। समझ बदली, संबोधन बदला पर समय वहीं का वहीं। कांटा वर्षों से नहीं हिला। जैसे ठहर गया हो। यह घंटाघर भी शायद 'उत्तरा फाल्गुनी के आसपास' है। एक उम्र के बाद ठहराव अच्छा लगता है। पर... इसमें ठहराव या सुकून कहां / ज़िंदगी इंक़लाब-ए-पैहम है।

कभी यह इस शहर का दिल था तो धड़कता भी था, अब बेदिल कैसा शहर और कैसा धड़कना!

सात दरवाज़ों का शहर, जिसके बीचों-बीच सिर उठाकर टंकार करता दीर्घकाय। संसार के आश्चर्य के रूप में लोग निहारते होंगे। इसका शब्द शहर की धमनियों में रक्त संचार करता होगा। कभी इसे भी ग़ौर से सुना जाता होगा। प्रभात के घंटे लोगों के पांवों को गणेश मंदिर की तरफ़ मोड़ देते होंगे तो सांझ के घंटे गोपीनाथ जी की तरफ़। कोई घंटा खेतों की ओर दौड़ाता होगा तो किसी को रसोई की ओर।

वैसे यह रामकहानी है किसकी? अरे एक शहर की। ओह! मैंने नाम तो बताया नहीं! घंटाघर की ऊंचाई से अनुमान कीजिए। शिखर, फिर सीकर।

जारी... शहरनामा

सतरंगी है यह शहर

शिखर से सीकर की यात्रा दिलचस्प है। आज से कोई तीन-चार सौ वर्ष पूर्व मालकेतु और रघुनाथगढ़ की क्रोड में अर्ध रेगिस्तान की दहलीज़ पर इस नवीन नगर की थरपना हुई। इसे शिखर (रघुनाथ गढ़ के ऊंचे शिखर के कारण), शिवकर (संस्थापक शिव सिंह के कारण) नाम मिला जो बाद में अपभ्रंश होते-होते सीकर बना। एक बंद दरवाज़ों का शहर जिसे हवाएं सदा से ही खुली ही रास आईं। खुलापन इसकी फ़ितरत में है जिससे कोई भी बंधे बग़ैर नहीं रहता।

वसीम बरेलवी के शब्दों में कुछ फेरफार करें तो- शहर मेरा चहकती गंगा सा / कोई भी आए और अपने आप / खो के जाता है, यहां का होके जाता है।

सुरक्षा के लिए परकोटा और वैभव की विनिर्मिति बने इसके उन्नत द्वार जिन्हें राजस्थान में पोळ कहा जाता है। चांद पोळ, सूरज पोळ के अलावा अन्य पांच दरवाज़े जो इसकी शोभा को बहुगुणित करते हैं, समय की आहट से खुले रहे। इसके दरवाज़े और चौपड़ गैस लाइटों से रोशन रहे और हवेलियों के झरोखों से झिलमिल दीपशिखा इठलाई। परकोटे को जल नहरों ने महफ़ूज़ रखा तो खुले अहातों की आली-गीली, रंग-बिरंगी चटक चित्रशालाओं ने कला को जीवंत रखा।

पीले, पोमचे और लाख की चूड़ियों जितना ही सतरंगी है यह शहर। बंधेज की ओढ़नी जैसा ही बंधा-बंधा और खुला-खुला। शहर तो क्या इसे एक बड़ा-सा गांव ही कहिए, क्योंकि विकास की तमाम उंचाइयों को छूने के बाद भी यह शहराती न हो सका। अपनी बोली, अपना पहनावा, अपना जीवन और अपनी ज़िद। प्राचीन से प्रेम, अर्वाचीन से स्नेह, यही जमा जोड़ है इस शहर का।

घंटाघर की घड़ियां इसे बार-बार चेताती रही होंगी। समय के साथ चलना, अन्यथा पीछे रह जाओगे।

सिर झुमाने वाला सीकर

सीकर कभी पीछे नहीं रहा, फिर चाहे सिर कटाना हो या गिनाना। सिर झुमाने वाले सीकर से तो अधिसंख्य जन अनभिज्ञ हैं।

संगीत के सीकर घराने से कितने लोग वाक़िफ़ होंगे? दरअसल, सीकर के अंतिम शासक राव कल्याण सिंह के मशहूर दरबारी, सारंगी व सितार वादक उस्ताद अजीम ख़ान से चला सीकर घराना संगीत की दुनिया में अपना एक अलग ही मुक़ाम रखता है। इस घराने की तीसरी पीढ़ी के सुल्तान ख़ान जिन्हें देश में सारंगी को पुनर्जीवित करने का श्रेय दिया जाता है, ने 'पिया बसंती रे' तथा 'अलबेला सजन आयो रे' सरीखे गीतों को अपनी आवाज़ देकर हिंदी संगीत को ऊंचाइयों तक पहुंचाया। सुल्तान ख़ान भारत में फ़्यूजन संगीत समूह 'तबला बीट साइंस' के सदस्य रहे थे। इसके साथ ही पंडित रविशंकर और मशहूर बैंड 'द बीटल्स' के साथ भी उन्होंने अंतरराष्ट्रीय संगीत कार्यक्रमों में हिस्सा लिया। पॉप क्वीन मैडोना के एल्बम के लिए भी उन्होंने सारंगी बजाई। ऑस्कर विजेता रिचर्ड एटनबरो की फ़िल्म 'गांधी' में भी पद्मभूषण सुल्तान ख़ान की सारंगी सुनाई दी थी।

देशभक्त दूरदर्शी रावराजा

राव कल्याण सिंह दूरदर्शी व्यक्ति थे। विकास के क्षेत्र में तो वे सीकर के 'कमाल पाशा' बनकर उभरे। सीकर नगर पालिका की स्थापना, वर्षा जल संरक्षण, पक्की सड़कें, नहरों का निर्माण, स्वच्छता हेतु सैनेटरी इंस्पेक्टर की नियुक्ति, पेयजल कुएं, गैस



सप्लाई लाइंस, प्लांट और बंदूक़ फैक्टरी से लेकर अपना हवाई जहाज़ तक, सबकुछ आधुनिक। हवाई जहाज़ की एक फैक्ट्री भी, जहां ख़राब व क्रैश विमान पहुंचते थे।

वे स्वयं अधिक पढ़े-लिखे न थे किंतु शिक्षा का महत्व भलीभांति समझते थे। इसके लिए अपने महल, बाग़, कोठियां और ज़मीनें देने में उन्होंने कोई कसर न रखी। ढेर संस्थान आज इसके साक्षी हैं जिनके नाम में श्री कल्याण जुड़ा है। अल्पसंख्यक बालकों हेतु इस्लामिया स्कूल तथा बालिकाओं हेतु इस्लामिया गर्ल्स स्कूल तथा विभिन्न जाति समाजों के लिए बोर्डिंग्स भी उन्हीं की देन है। अपने जन्मदिवस या अन्य शुभ अवसरों पर वे विद्यालयों में जाकर प्रत्येक बालक से मिलते, उपहार देते और घर-परिवार के हालचाल जानते।

स्वतंत्रता आंदोलन से उनका जुड़ाव भी चर्चा में रहा। वे कांग्रेस कोष में मोटा चंदा देते और अकसर कहते- कांग्रेस कोई बिनज करे है के? अर्थात सामाजिक संस्थाओं का उत्तरदायित्व तो समाज को ही वहन करना होगा। ज्ञात रहे कि सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी जमनालाल बजाज यहीं से निकले थे। उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों से अंग्रेज़ काफ़ी ख़फ़ा थे बावजूद इसके उन्हें या उनकी संपत्ति पर कभी रावराजा ने आंच न आने दी। अंग्रेज़ों की नाराज़गी के परिणाम स्वरूप उन्हें अपने राज्य से कई वर्षों के लिए निर्वासित भी होना पड़ा।

नगर के नाथ गोपीनाथ

राजा यहां कोई भी रहा हो, पर असल नाथ तो गोपीनाथ ही रहे। शहर के चौक में स्थापित भव्य महल मंदिर यहां के स्थापत्य और चित्रकला का प्रतिरूप है। दुर्दांत मूर्तिभंजक आक्रांता काला पहाड़ के आतंक से त्रस्त होकर बंगाल के गोसाईं जब अपने देव विग्रहों को लेकर यहां-वहां भटक रहे थे तब सीकर के राजकुमार शिव सिंह ने उन्हें आश्वासन देकर रोका। यद्यपि इसकी क़ीमत उन्हें मुस्लिम आक्रमण झेलकर चुकानी पड़ी, किंतु वे अपने निर्णय पर अटल रहे। इधर जयपुर नरेश जयसिंह का मुग़ल दरबार में दख़ल बढ़ने से मुग़ल फौजों को भी पीछे हटना पड़ा। नगर स्थापना के साथ ही गोपीनाथ जी के लिए भव्य मंदिर बना और वही इस राज्य के राजा घोषित हुए। रावराजा मात्र उनके अनुचर के रूप में ही शासन करते रहे। यहां का अभिवादन भी 'जै गोपीनाथ जी की सा' हुआ। मंदिर की सेवा-पूजा आज भी गोसाइंयों के वंशज ही करते आ रहे हैं। दिन में छह बार आरती, भोग तथा ऋतु अनुकूल दिनचर्या से मंदिर के वैभव का अनुमान लगाया जा सकता है।



पुरुष नर्तक, स्त्रियां दर्शक

वैसे सीकर की बात हो और रंग, चंग और गिंदड़ का ज़िक्र न हो यह संभव नहीं। मरुस्थल के कठिन जीवन में लोकरंजन का निमित्त बना यह सामूहिक नृत्य होली से एक माह पूर्व (जिसे डांडा रोपना कहते हैं) आरंभ होकर होली तक चलता है। इस नृत्य प्रक्रिया को शेखावाटी लोक जीवन में गिंदड़ घालना कहते हैं जिसमें प्रतिभागी सिर्फ़ पुरुष ही होते हैं। आपको पीला ओढ़े कोई जनानी झुमकती दिखाई दे तो विस्मित न होइए, घूंघट की आड़ में पुरुष ही हैं। स्त्रियां दर्शक होती हैं।

या रसियां की टोली देखो ढोलक चंग बजावे रे
घूमर घाले साहेबो यो लुळ लुळ नाचे रे
चालो देखण ने बाईसा थारो बीरो नाचे रे
चालो देखण ने

हाथों में आदमक़द डांडिए लेकर विभिन्न भाव-भंगिमाओं में वलयाकार नृत्य एक प्रकार का सम्मोहन संचरित करता है। राजपूताना का संपूर्ण क्षेत्र सदैव युद्ध एवं उसकी आशंका के साये में ही रहा, अतः यहां गीत, नृत्य, हास-परिहास जैसे ललित अवसरों पर भी शस्त्र की उपस्थिति अनिवार्य रही। फिर वह चाहे तलवार, खांडा या उसका प्रतीक रूप काष्ट दंड ही क्यों न हो। इसमें नगाड़ची और नर्तकों की जुगलबंदी दर्शनीय है।

विसर्जन की ओर विरासत

कला, इतिहास और संस्कृति की गौरवमय त्रिधार से अभिसिक्त यह नगर अब सुनहरे भविष्य की ओर अग्रसर है। शिक्षा, विज्ञान और तकनीक का पर्याय बना यह शहर आज भी वक़्त के साथ क़दम मिलाकर चल रहा है, मगर कुछ सवाल इस गति में अवरोध हैं। कहिए कि सवालों के ढेर पर खड़ा है। सवाल स्थापत्य और कला के धूमिल होने का, सवाल ऐतिहासिक धरोहरों के घुट-घुटकर दम तोड़ने का। शहर का परकोटा जर्जर है। दरवाज़े अतिक्रमण की दाढ़ों में दबे सिसक रहे, तालाब और बावड़ियां कूड़े से अटी हुईं, महल और छतरियां खंडहर में तब्दील होती जा रही हैं। घंटाघर की घड़ियां बेसुध, श्री कल्याण संस्कृत कॉलेज स्थित मांजीसा का कुआं और विष्णु मंदिर अब परिदृश्य से ग़ायब हैं। कॉलेज का मुख्य द्वार सूनी सराय से भी बदतर अवस्था में है। विरासत का विसर्जन यूं तो न होना था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा- 'मैं ऐसा नहीं मानता कि जो कुछ पुराना और विशेष है उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का मोह सब समय वांछनीय नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाकर रखने वाली बंदरिया मनुष्यता का आदर्श नहीं हो सकती, पर मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें।'

ख़ैर, अब शहर बढ़ रहा है- किसी लंबी बहस की तरह।



जड़, जन, ज़मीनी हक़ीक़त की कहानियां

सेतु प्रकाशन/ वांग छी/ मनीष वैद्य/ 275रुपये

मनीष वैद्य की कहानियां जड़, जन और ज़मीनी हक़ीक़त से जुड़ी होती हैं। 'वांग छी' कहानी संग्रह भी इस लेखकीय कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरता है। इन कहानियों के सभी मुख्य पात्र ग्रामीण परिवेश से हैं। या तो बिलकुल सामान्य कोई लड़की, कोई किसान या सिपाही, या फिर कोई सामान्य धंधा करने वाला आदमी। इन कहानियों का केंद्रबिंदु है- जीवन संघर्ष। हर कहानी के अलग विषय-बिंदु पर टिके होने के बाद भी, ये किताब वर्तमान भौतिकतावाद के युग में छीजते हुए रिश्तों को, घटनाक्रम के साथ अत्यंत मार्मिक ढंग से सामने लाती है। शीर्षक कथा एक चीनी सिपाही की मार्मिक कहानी है जो भटककर भारत की सीमा में दाख़िल हो जाता है। यह जानना रोचक होगा कि फिर ज़िंदगी की घटनाएं उसके साथ क्या-क्या गुल खिलाती हैं। इस कहानी को लिखते समय लेखक ने चीनी परिवेश और भूगोल का गहन अध्ययन किया है। मनीष की कहानियों की ख़ूबी है प्रवाहमान कहनशैली और आगे क्या हुआ की उत्सुकता को बनाए रखना। इनकी हर कहानी में घटित घटनाओं के पीछे भी पाठकों में मानवीय संवेदना जगा देने वाली एक कहानी छिपी होती है और यही लेखन की सफलता भी है।

– जयश्री पुरवार

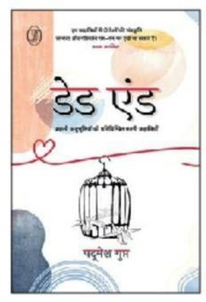


अनछुए पहलुओं की की दर्जनभर कथाएं

रामकमल प्रकाशन/ प्रतिरूप/ मनोज कुमार पांडेय/ 250 रुपये

दर्जनभर कहानियों का संग्रह है, 'प्रतिरूप' और सभी कहानियां अपना अलग रूप लिए हुए हैं। भावनाओं के चित्रण पर लेखक की जितनी पकड़ है, राजनीतिक दांवपेचों की भी उन्हें उतनी ही समझ है। समाज की जितनी बूझ है, व्यंग्य की बू भी उतनी ही है। पहली कहानी 'खेल' में समय काटने को शुरू किया गया बेटे का खेल न केवल पिता-पुत्र के रिश्ते में बदलाव लाता है, बल्कि परिवार का जीवन भी बदल देता है। 'बिच्छू' कहानी में स्मृति की गली की एक साधारण लगने वाली असाधारण घटना की पड़ताल है। जेबकतरे की संवेदना व्यक्त करती कहानियां हैं, 'जेबकतरे का बयान' और 'तितलियां' जो एक अलग तबक़े को समझने की कोशिश है। ऐसी ही कोशिश 'उमस भरी जुलाई में एक इलाहाबादी डाकिया' है। 'झपकी' कहानी में समाज के बदले मिज़ाज की झलक है। 'पैर' में प्रेम की अलग अनुभूति है तो अंतिम कहानी 'प्रतिरूप' राजनीति का तिलिस्म बांधती हुई अपने अंत से चौंका जाती है। भिन्न कथ्य की अलग कहानियां लेखक की बहुमुखी प्रतिभा दिखाती हैं। संकलन रोचक और प्रभावी है। लेखक के पास अलग सोच है और उसके कथन को सटीक भाषा भी।

– लखी बरनवाल



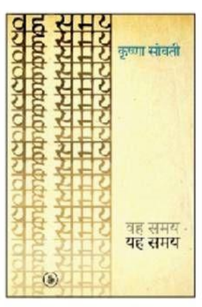
प्रवास के अनुभवों से परिपक्व है क़लम

वाणी प्रकाशन/ डेड एंड/ पद्मेश गुप्त/ 295 रुपये

पद्मेश गुप्त का यह पहला कहानी संग्रह उनके प्रवास के अनुभवों का संकलन है। उनकी कहानियां समाज, संबंध, सांस्कृतिक विविधता, और राजनीतिक दलों से लेकर धर्म और नैतिकता तक, अनेक आयामों को स्पष्ट करती हैं। हृदय विदारक कहानी 'डेड एंड' का गतिरोधक अंत पाठक को दुविधा में डाल देता है। 'कशमकश' कहानी प्रेम और रिश्तों में खुलेपन को लेकर है जो अंत तक आते-आते पारंपरिक सिद्धांत में तब्दील हो जाती है। अंत सुखद है। 'इंतज़ार' कहानी का ट्रीटमेंट अलग है किंतु अंत 'डेड एंड' जैसा ही है। एक छोटी किंतु महत्वपूर्ण कहानी है 'तुम्हारी शिवानी'- पैसे के बल पर अपनी पुस्तकें छपवाने और संपर्क के सहारे पुरस्कार पाने वालों की दुनिया में पंडित दीनदयाल जैसे लोगों का साहित्य आज तक अप्रकाशित और अंधकार में क्यों है- जैसे सामयिक प्रश्नों से जूझती लेखिका की दुविधा से हम सब वाक़िफ़ हैं। 'यात्रा' एक डिसलेक्सिक और फ्लैट फुटेड बच्चे के संघर्ष की गाथा है, जिसका पुनर्जन्म होने जा रहा है। पद्मेश की कहानियां समाज और संबंधों की गहनता और जटिलता की व्याख्या करने का काम करती हैं। उनके लेखन में कहीं भी कथ्य या भाषा का आडंबर नहीं है।

– दिव्या माथुर

शाह जी और राबयां के क़िस्से को आगे बढ़ाती किताब



कृष्णा सोबती की मशहूर कृति रही 'ज़िंदगीनामा'। शाह जी और राबयां के क़िस्से को आगे बढ़ना था। 'वह समय' उसका अगला हिस्सा था, जिसे लेखिका पूरा ना कर सकीं। अब उसके अन्यत्र प्रकाशित अंशों की पुस्तक रूप में प्रस्तुति स्वागतयोग्य है। जिसने ज़िंदगीनामा ना भी पढ़ा हो, वह शाह जी के घर-परिवार, उनके रुतबे, उनकी सामाजिक स्थिति और राबयां से उनके राब्ते को 'वह समय, यह समय' को पढ़कर समझ सकता है। वह दौर कोई भी हो, कृष्णा सोबती उसे जिस तरह बयान करती हैं, उससे हर किरदार की शख़्सियत, सामाजिक, पारिवारिक सीमाएं, पाठक को स्वीकार्य लगती हैं। एक सुखद बयार-सी है यह किताब। **– रचना समंदर**

राजकमल पेपरबैक्स / वह समय, यह समय /
कृष्णा सोबती/ 250 रुपये

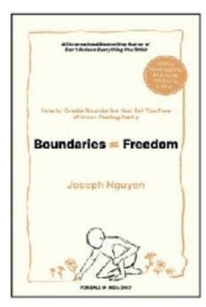
जीवन में अतीत के दंश से रिहाई पर लिखा उपन्यास



जीवन पर अतीत की छाया से इंसान चाहकर भी बच नहीं सकता, इसी तथ्य को उजागर करती है- 'नीली दीवार की परछाइयां'। शीर्षक जैसा रूमानी है, उपन्यास भी वैसी ही रूमानियत लिए है। हालांकि इसमें तक़लीफ़ भी शामिल है। तीन पीढ़ियों के अपने अलग दु:ख और उसमें जीने की विवशता है इसमें। रौशन बी ने न वो जीवन चुना, न राहिला ने। चुना तो अमू ने भी नहीं। राहिला की डांवाडोल हो चुकी ज़िंदगी जब ढर्रे पर लगती, तभी वो कैंसर की गिरफ़्त में आ गई। पर कैंसर होने के बाद ही वह अपने बनाए दु:ख के कोकून से बाहर आकर बेटे के सामने मन खोल पाई। भावनाओं को मुख्य रख ही कथा चलती है। **- लखी बरनवाल**

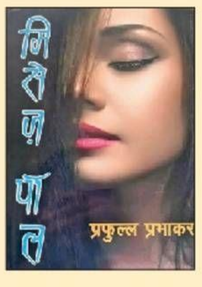
राजकमल प्रकाशन / नीली दीवार की परछाइयां/
अनघ शर्मा/ 199 रुपये

आप-सा अनुभव किसे मिला, वैसा जीवन किसने जिया?



वियतनामी लेखक जोसेफ न्यएन की यह किताब बहुत छोटी-सी है, यानी कम पृष्ठों की, लेकिन इसमें निहित संदेश जो अपना ले, उसका जीवन आमूल-चूल बदल सकता है। आप अपने जीवन के बारे में दूसरों से क्यों पूछते हैं, जब इसे आप ही बदल सकते हैं? यहां लेखक चंद सीमाओं की बात करते हैं, जो दरअसल, व्यक्ति को अपने जीवन को बेहतर ढंग से समझने और प्रबंधित करने में मदद करती हैं। वे कहते हैं- 'सीमाएं वे ज़रिया हैं, जिनसे जीवन की नदी से आप अपनी आत्मा को पोषित करने वाले भोजन को छानकर हासिल कर सकते हैं और अवांछनीय वस्तुओं को नदी में ही छोड़ सकते हैं।' कम पृष्ठों की, गहरे मायनों वाली किताब। **- रचना**

अमेरेलिस / बाउंड्रीज़ = फ्रीडम /
जोसेफ न्यूएन/ 299 रुपये



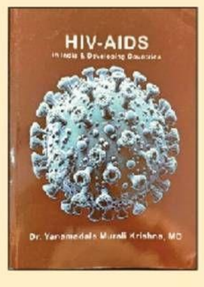
यह अस्सी पृष्ठों का एक लघु सामाजिक उपन्यास है। प्रेम और आकर्षण के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल करता है और साथ ही एक उचित राह भी दिखाता है जो कि समाज के हित में है।

दीपक प्रकाशन / मिसेज़ पॉल/
प्रफुल्ल प्रभाकर/ 225 रुपये



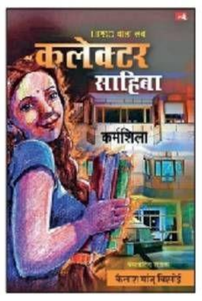
इन कविताओं के माध्यम से कवि ने आज के बच्चों की अकेलेपन की कुंठा पर चिंता व्यक्त की है। साथ ही बच्चों के साथ मधुर व्यवहार करने और संवेदनशीलता बरतने पर ज़ोर दिया है।

साहित्यागार / दें बच्चों को प्यार/
सुरेश चंद्र 'सर्वहारा' / 200 रुपये



एड्स जैसे गंभीर विषय पर अपने 25 साल के अनुभव का ज़िम्मेदारी से विवेचन किया है डॉ. यानामाडाला ने इस पुस्तक में। स्वास्थ्य क्षेत्र के अध्येताओं के साथ ही आम पाठकों के लिए भी एक उपयोगी पुस्तक।

स्वरचित / एचआईवी- एड्स/
डॉ. यानामाडाला मुरलीकृष्ण राव / 155 रुपये

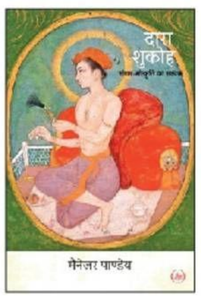


संघर्ष और उसके बाद का भी जीवन

मंजुल पब्लिशिंग/ कलेक्टर साहिबा/ कैलाश मांजू बिश्नोई/ 299 रुपये

यह रचना एक युवा लड़की के जीवन के सपनों की कहानी कहती है और साथ ही उस सपने के रास्ते में आती अड़चनों को भी सुलझाती है। आईएएस बनना आज कई युवाओं का सपना है, और उससे भी अधिक यह एक ऐसी यात्रा है जो आपको हार और जीत दोनों ही पक्षों में जीवन के प्रति विजयी बनाती है- बस इसी यात्रा का चित्रण है यह किताब। जिस परीक्षा को पार करना आज सबसे बड़ा लक्ष्य समझा जाता है, उसके बाद की परीक्षाओं को भी इसमें बख़ूबी दिखाया गया है। जैसे- आईएएस में चयनित होने के बाद मसूरी के लबासना में ट्रेनिंग का माहौल। दोस्ती, प्यार, उम्मीदें, आंसू, हर एक भाव को बड़ी ही ख़ूबसूरती के साथ माला में मोती-सा पिरोया गया है। लक्ष्य प्राप्ति की अंधी दौड़ के इस युग में कैसे हम सभी अपने जीवन के अन्य हिस्सों को भी साथ में लेकर चलना जानते हैं उसका जीवंत उदाहरण है- एंजल और गिरीश की ये प्रेम कहानी। इसके साथ ही प्रशासनिक भ्रष्टाचार को भी लेखक ने खुलकर रखा है। आज की समस्याओं और उनके उचित समाधानों के साथ यह उपन्यास ना केवल बड़ी परीक्षाओं की तैयारी करने वालों के लिए, बल्कि हर उस व्यक्ति के लिए पठनीय है, जो युवा है और ज़िंदादिल है।

– अरुंधती आनंद

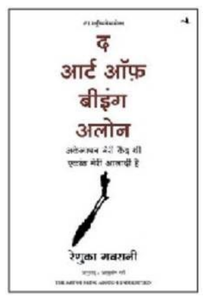


दारा के बहाने सौहार्द धारा के दर्शन

राजकमल पेपरबैक्स/ दारा शुकोह.../ मैनेजर पाण्डेय/ 299 रुपये

'दारा शुकोह: संगम संस्कृति का साधक' भारतीय इतिहास में दो बड़े धर्मों के अनुयायियों के मध्य प्रेम, समन्वय, सहयोग (लेखक के शब्दों में संगम संस्कृति) के साथ आपके मन-मस्तिष्क की मधुर, आनंदित यात्रा है। सबसे ख़ास बात यह है कि लेखक आपको इस यात्रा में केवल दारा से संबंधित घटनाओं, व्यक्तियों तथा दाराकृत ग्रंथों और दारा के बारे में मध्य-आधुनिक काल की पद्य-गद्य कृतियों के शीर्षकों मात्र से रूबरू ही नहीं करवाता, अपितु इन सभी रचनाओं, घटनाओं से दृष्टांतों, अंशों के माध्यम से आपकी आत्मा को, दारा शुकोह के बहाने भारतीय दर्शन, विचारशीलता से गहराई तक स्पर्श करवाता है। मिसाल के तौर पर, बाबा लालदास से दारा का लंबा वार्तालाप और नृसिंह गोस्वामी को दारा द्वारा संस्कृत में लिखा गया विस्तृत पत्र, हमें दारा की भारतीय दर्शन से 'संवाद' की अनुभूति करवाते हैं। यह कोरा जीवन वृत्तांत नहीं है, इसमें दारा से पूर्व और पश्चात 'संगम संस्कृति' के नक्षत्रों, वाहक हिंदू-मुस्लिम महानुभावों की लेखनियों की अमृत बूंदें पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर, दृढ़ता से स्थापित किया गया है कि भारतवर्ष में आपसी सौहार्द, प्रेम के सागर सांप्रदायिक विष को उदासीन करते रहे हैं!

– शिवेंद्र सिंह



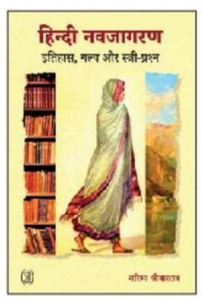
अकेलेपन में आनंद के साथ रहने की कला

मंजुल पब्लिशिंग/ द आर्ट ऑफ बीइंग अलोन / रेणुका गवरानी / 250 रुपये

दो हिस्सों में विभाजित किताब 'द आर्ट ऑफ बीइंग अलोन' पहले भाग में जहां अकेलेपन को एकांत में बदलने पर बात करती है, वहीं दूसरे भाग में इसी एकांत को विकास की दिशा में मोड़ने को लेकर। लेखिका के अनुसार अपने दिल से पूछें कि आप क्या करना चाहते हैं और अपने दिमाग़ से पूछें कि उसे करना कैसे है? अकेलेपन से बीमारी का चेहरा हटाकर उसे कला के रूप में बाहर लाना, आपकी आज की वास्तविकता को आदर्श जीवन की ओर मोड़ सकता है। सुंदर पहलू कि लेखिका ने अपनी इस कृति को निखारने के लिए तथ्यों से कहीं अधिक महत्व भावनाओं को दिया है, जिसके चलते यह कृति एक निबंधात्मक रूप में समस्या या उसके निवारण पर काम करने से पहले, सीधे पाठक की भावनाओं का स्पर्श करती है। डिजिटल युग की समस्या 'अकेले पीछे रह जाने' पर भी इसमें बात की गई है और इलाज के नाम पर किसी के साथ के स्थान पर ख़ुद को शीशे में पहचान पाने पर भी। सेल्फ़-हेल्प के क्षेत्र में पठनीय कदम। अनुवादक आशुतोष गर्ग ने कोरे अनुवाद के बजाय भावों की सहज अभिव्यक्ति पर बल दिया है, जिससे इसे हिंदी में पढ़ना भी मूल किताब जैसी अनुभूति देता है।

– दीक्षिता मेहता

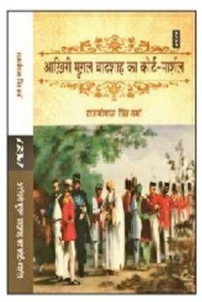
साहित्य और समय दोनों के बीच स्त्री प्रश्नों से साक्षात्कार



पुराने साहित्य को संकलित, विश्लेषित-पुनर्व्याख्यायित करना साहित्येतिहास को समृद्ध करने का काम है जो लैंगिक शोध अध्ययन करने के लिए अनिवार्य है। इस क्रम में गरिमा श्रीवास्तव की यह कृति हिंदी पट्टी में नवजागरण के साहित्यिक रुझानों की जानकारी और समझ देती है। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था ने एक नव-पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जन्म देकर कैसे साहित्य को नया आकार दिया, जानने योग्य है। उस समय साहित्य ने समाज में स्त्री की स्थिति और महत्व को कैसे प्रस्तुत और प्रभावित करने की कोशिश की, ऐसे कई प्रश्नों के तार्किक उत्तर इसमें नए प्रश्नों के साथ मौजूद हैं। **-अनामिका अनु**

वाणी प्रकाशन / हिंदी नवजागरण: इतिहास, गल्प और स्त्री-प्रश्न / गरिमा श्रीवास्तव / 795 रुपये

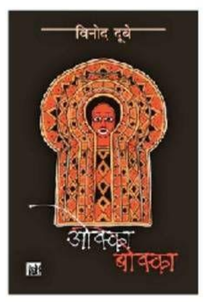
फ़र्ज़ी मुक़दमे में फंसा हिंदुस्तान का आख़िरी मुग़ल बादशाह



यह किताब इस भेद को खोल रही है कि कैसे एक विदेशी ट्रेडिंग कंपनी के कारिंदों ने हिंदुस्तान के बादशाह पर राजद्रोह का फ़र्ज़ी मुक़दमा चलाकर उन्हें मनचाही सज़ा दी। बहादुर शाह ज़फ़र पर उनके राजमहल- लालक़िले में ही मुक़दमा चलाकर ब्रिटिश पक्ष भारतीय जनमानस के मन में यह बिठाने में कामयाब रहा था कि अब वे ही देश के क़ानूनी शासक हैं और उन्हीं के अनुसार देश चलेगा। किताब के 'दो शब्द' में राजगोपाल सिंह वर्मा ने अपनी तहक़ीक़ के हवाले से लिखा है कि यह पूरा मुक़दमा कैसे फ़र्ज़ी था। इस कोर्ट मार्शल की पूरी सुनवाई का हिंदी रूपांतरण किताब के दो परिशिष्टों में शामिल किया गया है। **-डॉ. सुहेल वहीद अंसारी**

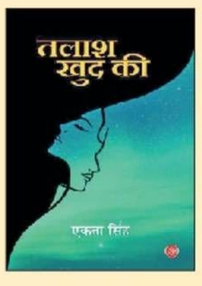
सेतु प्रकाशन / आख़िरी मुग़ल बादशाह का कोर्ट-मार्शल/ राजगोपाल सिंह वर्मा / 339 रुपये

ज़िंदगी के खेल में दोस्ती का गीत गाती 'ओक्का-बोक्का'



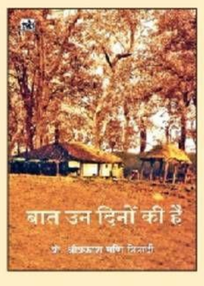
'ओक्का-बोक्का' बच्चों के खेलने के एक गीत से निकला शब्द है। एक गोल घेरे में बैठकर बच्चे एक-दूसरे की उंगलियों को छूने वाला मज़ेदार खेल खेलते हैं- यह गाते हुए -ओक्का-बोक्का, तीन-तिरोक्का, लोहा-लाठी, चंदन-काठी....। मर्चेंट नेवी के कैप्टन रहे विनोद दूबे ने अपने उपन्यास में इसी शब्द की मासूमियत को तीन दोस्तों की सच्ची दोस्ती से ज़ाहिर किया है। ये 10 अध्याय में पिरोयी मप्र के जबलपुर शहर की पृष्ठभूमि की एक फ्लैश-बैक कथा है। उपन्यास शैली है, पर पढ़ने में फिल्म की पटकथा-सी लगेगी। बचपन, दोस्ती, स्कूल, कॉलेज, प्यार, शादी, नौकरी, बच्चे, ओहदा और आख़िर में ख़ुद की तलाश की एक यात्रा जो आपके अंर्तमन को हल्के से जगा जाती है। - **कमलेश माहेश्वरी**

लोक भारती पेपरबैक्स / ओक्का बोक्का / विनोद दूबे /299 रुपये



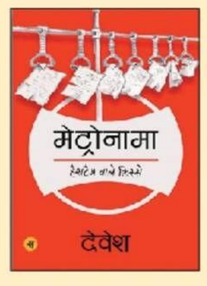
दैनंदिन के जीवन और चिकित्सा कार्यों के दौरान आए विचारों को पिरोकर एक पठनीय किताब रची गई है, जो दूसरों को सुधारने से पहले आत्म-अवलोकन और आत्म-सुधार करने का महत्व बताती है।

राजकमल पेपरबैक्स/ तलाश ख़ुद की/ एकता सिंह/ 399 रुपये



पुस्तक संस्मरण भी है और आत्मीय ग्रामबोध का आख्यान भी। इसमें ग्रामीण जीवन की सहज, सरल और मुक्त प्रकृति का चित्र खींचा गया है। ये शब्दचित्र छोटे-छोटे प्रसंगों में बांध कर रचे गए हैं।

लोकभारती प्रकाशन / बात उन दिनों की है/ प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी/ 600 रुपये



जैसी दिल्ली है, वैसी ही परतदार हैं ये कहानियां। लेखक की निगाहें इन परतों को प्यार, चुहल, हसरत और बारीकी से देखती हैं। यह मेट्रो के भीतर और बाहर बदलते शहर, रिश्तों और ज़िंदगी का आईना है।

सार्थक /मेट्रोनामा; हैशटैग वाले क़िस्से/ देवेश/ 250 रुपये

मशरूम लेडी की महती सोच

विपरीत सामाजिक परिवेश के बावजूद अन्नू कानावत ने एमबीए तक पढ़ाई की और फिर 'मशरूम लेडी' के रूप में विशिष्ट पहचान बनाई। उनका लक्ष्य है कि ग्रामीण महिलाएं भी उन्हीं की तरह आत्मनिर्भर बनें। प्रस्तुत है अन्नू की कहानी, उन्हीं की जुबानी।



– डॉ. महेंद्र मधुप

वरिष्ठ कृषि पत्रकार। किसान वैज्ञानिकों के जीवन, संघर्ष और शोध पर 4 पुस्तकें प्रकाशित। मिशन फ़ार्मर साइंटिस्ट परिवार और मिशन पर्यावरण योद्धा परिवार के प्रणेता।







राजस्थान के भीलवाड़ा ज़िले (वर्तमान में शाहपुरा ज़िला) की जहाजपुर तहसील के आमल्दा गांव में 1990 की 11 सितंबर को मेरा जन्म हुआ। दादाजी जसवंत सिंह के साथ पिताजी भंवर सिंह खेती आदि का काम संभालते। दादीजी सुशीला कंवर और मां रतन कंवर गृहस्थी के मोर्चे के साथ हमें बेहतर बनने के लिए संस्कार देतीं। स्त्रियों को घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी, फिर भी मैं ज़िद करके दादाजी के साथ खेतों में जाती और कृषि का पाठ पढ़ती। जैसे-तैसे 9 साल की उम्र में स्कूल जाने लगी। उन दिनों सब्ज़ी वाला खेल बहुत भाता। बड़े पापा विक्रम सिंह और बड़ी मां मुन्ना कंवर ने मुझे आगे पढ़ाने की ठान ली। बड़ी मां ने पढ़ाई का ख़र्चा दिया।

पढ़ाई के लिए नाना-नानी के पास चित्तौड़गढ़ ज़िले के सिंघोला गांव जाना पड़ा। बारहवीं कृषि संकाय से की। वहां मास्टरजी भंवरलाल कुम्हार ने कृषि में आगे पढ़ने को प्रेरित किया। 2011 में उदयपुर के कृषि विश्वविद्यालय से बीएससी कृषि की उपाधि प्राप्त की। वहां खेलकूद में राष्ट्रीय स्तर तक पहुंची। 2014 में गुजरात के पालनपुर से एमबीए कृषि की पढ़ाई पूरी की। उपाधि मिलते ही जयपुर के सुरेश ज्ञान विहार विश्वविद्यालय से शिक्षण कार्य से संबद्ध हो गई। इसके चेयरमैन सुनील शर्मा और चीफ मेंटर डॉ. सुधांशु ने मेरी कृषि शोध प्रवृत्ति को पंख लगाए। 2016 में पराक्रमसिंह राठौड़ से विवाह हुआ। वे एडवोकेट हैं। उनका प्रोत्साहन सदैव मेरी कार्य ऊर्जा रहा।

कृषि क्षेत्र में पढ़ाई के साथ, दादाजी से घुड़सवारी और शूटिंग विरासत में मिले। खेलकूद में अव्वल रहने की सोच कृषि में भी काम आई। मुझे समझ आया कि खेती उत्पादन तक ही सीमित नहीं है। कृषि उत्पाद के मूल्य संवर्धन और बिक्री में पारंगत होने से ही वास्तविक लाभ मिलता है।

सफ़र मशरूम नवाचारों का

मशरूम की खेती कम लागत में ज़्यादा मुनाफ़ा देने वाली है। इसमें पानी की ज़रूरत कम होती है। यह रेगिस्तान जैसे सूखे इलाक़ों के लिए बहुत फ़ायदेमंद है। राजस्थान के किसान कम बारिश और सूखे के कारण परेशान होते हैं। इसलिए मशरूम की खेती में उनकी रुचि बढ़ने लगी है।

विवाह पूर्व 2016 में जन्मभूमि आमल्दा गांव में, आमल्दा ऑर्गेनिक फूड्स एंड रिसर्च सेंटर की शुरुआत की। विवाह के बाद जयपुर रहने लगी, तब प्रतापनगर में इसकी दूसरी लघु इकाई अस्तित्व में आई। इसमें मशरूम उत्पादन, उससे दवाइयां बनाने और अनुसंधान के साथ ही समय-समय पर आमल्दा की अनुसंधान इकाई में जाकर वहां भी ये कार्य आगे बढ़ाती। मेरे विवाह के बाद आमल्दा के अनुसंधान केंद्र को मां संभालती हैं। लघु भ्राता गजेन्द्र सिंह मेरे हर नवाचारी क़दम में साथ रहे।

हम मशरूम की नई क़िस्मों पर शोध करते हैं, उन्नत तकनीकें विकसित करते हैं। मशरूम से उपचार के लिए दवाइयां विकसित करके, उन्हें मरीज़ों को उपलब्ध करवाना हमारी प्राथमिकता है। मशरूम की खेती के लिए अनुसंधान केंद्र ग्रामीणों को प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उन्हें इस क्षेत्र में बाज़ार से जोड़ने में मदद करता है। स्वरोज़गार के लिए, प्रशिक्षण कार्यक्रमों में ग्रामीण महिलाओं की रुचि अधिक देखी गई है। गांवों में महिला स्वयं सहायता समूहों के साथ मिलकर भी काम करती हूं। इससे मशरूम उत्पादन में महिलाओं की संख्या बढ़ी है। इन कोशिशों से विशिष्ट पहचान मिली। 2020 में भारत सरकार ने स्टार्टअप के रूप में हमारी संस्था को 15 लाख रुपये की सहायता दी। 2022 में एमएसएमई ने जयपुर में सम्मानित किया। हाल ही 'इंडिया टुडे कॉन्क्लेव' में मुझे मशरूम नवाचारों के सफ़र को राष्ट्रीय स्तर पर साझा करने का अवसर मिला। और हां, इन सबसे मैं आत्मनिर्भर हो गई। हर माह औसत आय 50 हज़ार रुपये से अधिक हो जाती है।

ग्रामीण स्त्रियों की परवाह

कीड़ा जड़ी (कॉर्डिसेप्स) मशरूम विश्व बाज़ार में क़रीब 2 लाख रुपये क़ीमत में मिलता है। इसके उत्पादन के अत्यंत लघु प्रयासों के साथ, इससे मधुमेह और कैंसर की दवाइयां बनाने में प्रारंभिक सफलता नज़र आई है। ऑयस्टर मशरूम का उत्पादन और इससे साइटिका की दवाई बनाने का काम जारी है। हमारे द्वारा उत्पादित बटन मशरूम को क्रेता उत्पादन स्थल से ही ले जाते हैं। मशरूम उत्पाद और इनसे निर्मित दवाइयां अनेक प्रदेशों में जा रही हैं। इन्हें विदेशी बाज़ारों में पहुंचाने के लिए यथासंभव प्रयास करूंगी। अन्य मशरूमों का उत्पादन शुरू करने के साथ, मेरा जीवन लक्ष्य है कि ग्रामीण महिलाएं भी मेरी तरह आत्मनिर्भर बनें। मैंने उनकी विकट स्थितियां अपने बचपन से देखी हैं। उनकी बेहतरी के लिए कुछ कर पाई, तभी मैं अपने मिनख जीवन को सार्थक समझूंगी।



पर्यावरण संरक्षण के कार्य

राजसमंद ज़िले के पिपलांत्री मॉडल की वैश्विक पहचान है। पद्मश्री श्यामसुंदर पालीवाल का पिपलांत्री मॉडल देखने गई तो उन्होंने पर्यावरण संरक्षण के लिए मार्गदर्शन किया। उनकी प्रेरणा से आमल्दा गांव में खनन कार्य रुकवाने में सहभागी बनी। वहां पानी के खराबे को रोककर पौधे लगवाने शुरू किए। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में जल्द ही बहुत कुछ करने पर मंथन जारी है।

संपर्क कर सकते हैं

अन्नू कानावत, 263/931, सेक्टर-26, प्रताप नगर, जयपुर-302033 (राजस्थान), मुख्य अनुसंधान केंद्र: गांव आमल्दा-311605, तहसील जहाजपुर, ज़िला शाहपुरा (राजस्थान)

ईमेल : aamldaorganic@gmail.com

मोबाइल: 9982720599

यात्रीगण कृपया ध्यान दें

– **देवयानी शुक्ला 'श्रद्धा',** रायपुर, छत्तीसगढ़



भीड़- भाड़ भरे रेलवे स्टेशन में नीता अपने बेटे के साथ एक बेंच पर खोई-खोई सी बैठी थी। अपने पति से हुए झगड़े को याद करके बार-बार उसकी आंखें नम हो रही थीं। पहली बार उसने ग़ुस्से में आकर घर छोड़ने का फ़ैसला लिया था। बेमन से फोन उठाकर वह वॉट्सएप पर चैट्स पढ़ने लगी और सहसा रुक गई। उसने सॉरी लिखकर नीता के एक पुराने ख़त का स्क्रीनशॉट भेजा था,

'रवि! चाहे जो हो, राह सरल हो या कठिन, हम सदा साथ रहेंगे जीवन की इस यात्रा में...'

और अचानक एक आवाज़ ने उसकी तंद्रा भंग कर दी। 'यात्रीगण कृपया ध्यान दें!' और एकाएक रवि के साथ इन 11 सालों की यात्रा उसकी आंखों के आगे घूम गई। कभी-कभी हमारे अतीत के छोटे-छोटे सुख भी हमें वर्तमान के दु:खों की तुच्छता और महत्वहीनता का अनुभव करा देते हैं। 'मम्मा...मम्मा!' बेटे के बुलाने पर फिर उसका ध्यान टूटा।

'...कृपया सावधानी से चढ़ें और उतरें, धन्यवाद।'

मन में निर्णय लेती हुई वह उठ खड़ी हुई। जैसे ही पलटी तो दूर से रवि बेहाल-सा दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया। नीता को देख उसकी गति और बढ़ गई। गाड़ी धीरे-धीरे स्टेशन पर आ पहुंची। नीता ने अपने बेटे को गोद में उठाया और रवि ने उसका सामान...। दोनों बिना कुछ कहे, भीगी-सी मुस्कान लिए स्टेशन के गेट की ओर चल पड़े।

गाड़ी चलने लगी तो बेटे ने कहा, 'पापा! पर हमारी गाड़ी तो छूट गई।' रवि बोला, 'नहीं बेटा, छूटने से पहले हमने पकड़ ली।' नीता मुस्कराकर सोचने लगी कि कैसे एक छोटी-सी उद्घोषणा ने उसके जीवन की उलझन को सुलझा दिया।

खलासी

– **मानसी मिश्रा,** बालाघाट, मध्यप्रदेश

सुबह के सात बजे रहे थे। पहली मालगाड़ी पहुंचने वाली थी। रामलाल खलासी ड्यूटी पर मुस्तैद था। माल लोड करना, उतारना और उसे दूसरे प्लेटफॉर्म या गोदाम तक पहुंचाना ही उसकी दिनचर्या थी। ईमानदार, सबका चहेता, लोग उसे रामू बुलाते थे। उसे बड़ा अच्छा लगता। हां साहब कहता, झट हाज़िर हो जाता। बीस सालों में रामू कभी अपने काम में अनुपस्थित नहीं रहा। घर पर मां से कहता, तू चिंता मत कर, तेरा बेटा सरकारी नौकर है, खलासी!

बस उसे एक बात अच्छी नहीं लगती थी कि कोई उसे कुली कहे।

'पिछले पांच दिनों से रामू ड्यूटी पर नहीं आ रहा है, दो दिन की छुट्टी ली थी। ज़रा पता तो करो।' सुपरवाइज़र ने गुड्स क्लर्क से कहा।

क्लर्क के हामी भरने पर भी सुपरवाइज़र साहब से रहा नहीं गया। वे अगले ही दिन ख़ुद रामू के घर पहुंच गए, देखा तो रामू उदास बैठा है। 'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं साहब! वो नए एकाउंटेंट साहब मुझे कुली बुलाते हैं, पर मैं तो सरकारी खलासी हूं न!'

सुपरवाइज़र मुस्कराए, बोले, 'कल डयूटी पर आ जाना, सर को समझा दूंगा।'

अगले दिन लेखाधिकारी, रामू से बोले, 'भाई ग़लती हो गई। किसी से उसकी पहचान नहीं छीनना चाहिए।'

रामू ने उत्तर दिया, 'हां साहब कभी नहीं! नौकरी ख़त्म होने पर हम सभी एक ही प्लेटफॉर्म पर आ जाते हैं न!' लेखाधिकारी निरुत्तर थे।

ज़िंदगी की रेल

– **विकास कुमार शर्मा,**
सवाई माधोपुर, राजस्थान

किसी शहर के
प्लेटफॉर्म पर
आती-जाती रेल
शायद यह समझाने आती है,
यात्रीगण कृपया ध्यान दें।
इस ज़िंदगी रूपी स्टेशन
के प्लेटफॉर्म पर
रोज़ चल रही है
आती-जाती सांसों की रेल
हम सब उसके यात्री हैं।
जैसे रेल में
मिलते-बिछुड़ते हैं
वैसे ही इस जीवन में।
कोई बीच में ही कर लेता है
अपनी यात्रा पूरी
कोई गंतव्य तक पहुंच जाता है।
सफ़र में किसी से लड़ना-झगड़ना नहीं
हमें सिखाती है यह,
न जाने कौन कब बिछड़ जाए
इस जीवन रूपी रेल का साथी।

गाड़ी लाती है संदेश

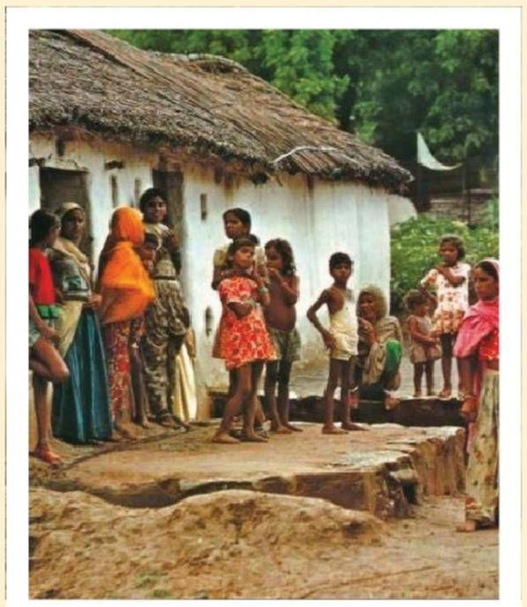
– **सुधीर कुमार सोमानी,**
देवास, मध्यप्रदेश

दिन-रात इधर से उधर
आती-जाती रेलगाड़ियां,
स्टेशन पर जब तक खड़ी रहतीं...
ख़ूब चहल-पहल
बहुत भागम-भाग
ख़ासा शोर-शराबा
और जब हो जातीं गंतव्य को रवाना
सन्नाटा धीमे-धीमे ले लेता आकार
फिर अगली गाड़ी का इंतज़ार।

एक गाड़ी लाती ढेर सारे संदेश
जीवन के अनेक रंगों का प्रसार,
कहीं विदाई के भावुकता भरे पल
तो कहीं होता ख़ुशियों का संचार।

पटरियां वही, प्लेटफॉर्म वही
दुकानें वही, रोशनियां वही
बस बदलती रहती हैं गाड़ियां
और बदलते रहते हैं मुसाफ़िर
इसमें समाहित एक बड़ा संदेश
सृष्टि का चक्र सतत चलता रहता
जीवन का क्रम सदैव यही रहता
सब कुछ यहीं पर जाता है छूट
सिर्फ़ सुनाई देती कर्मों की गूंज।

संगी-साथी



इस चित्र पर अधिकतम 200 शब्दों में कुछ लिख भेजें– कविता, लघुकथा या कैप्शन।

प्रकाशित प्रविष्टि पर 500 रुपये का पुरस्कार...

–प्रविष्टि **ahazindagi@dbcorp.in** पर भेजें। –प्रविष्टि शीर्षक पर आधारित हो, ज़रूरी नहीं, लेकिन उसे चित्र भाव पर आधारित होना ज़रूरी है। –प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि **25 जुलाई 2024** है।

सराहनीय प्रविष्टियां

- **संदीप सोनारे,** बैतूल, मध्यप्रदेश
- **शेर सिंह,** मेरूपा, हिमाचल प्रदेश
- **बजरंगी भारत,** बराढ़ी, बक्सर, बिहार
- **सुनीता यादव,** रेवाड़ी, हरियाणा
- **विजयानंद विजय,** नालंदा, बिहार
- **नितिन सादेले,** करैरा, शिवपुरी, मध्यप्रदेश
- **अंकुर श्रीवास्तव,** सूरतगढ़, राजस्थान
- **कुलदीप सिंह भाटी,** सूरसागर, जोधपुर
- **रुचिका,** सीवान, बिहार
- **सुकेश्वनी ठोसरे,** सौंसर, छिंदवाड़ा
- **हरीश कुमार,** गुरुग्राम, हरियाणा
- **मीना पाठक,** जबलपुर, मध्यप्रदेश
- **डॉ. मयूरी वर्मा,** पुणे, महाराष्ट्र
- **चंद्रशेखर दिघे,** इंदौर, मध्यप्रदेश
- **स्नेह श्रीवास्तव,** इंदौर, मध्यप्रदेश
- **शैलेन्द्र सरस्वती,** बीकानेर, राजस्थान
- **डॉ. सतीश जोशी नगरा,** रतलाम, मध्यप्रदेश
- **प्रकाश हेमावत,** रतलाम, मध्यप्रदेश
- **रचना नौडियाल,** ग्रेटर फरीदाबाद, हरियाणा
- **राम मूरत 'राही',** इंदौर, मध्यप्रदेश
- **देवेन्द्रराज सुथार,** जालोर, राजस्थान
- **तरुण कुमार दाधीच,** उदयपुर, राजस्थान
- **अलका 'सोनी',** बर्नपुर, पश्चिम बंगाल
- **विनय कुमार पाठक,** गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
- **ललित सोनी,** खरगोन, मध्यप्रदेश
- **व्यग्र पाण्डे,** गंगापुर सिटी, राजस्थान
- **विकास कुमार शर्मा,** गंगापुर सिटी, राजस्थान
- **अलका 'सोनी',** बर्नपुर, पश्चिम बंगाल
- **रीतेश ओमप्रकाश जोशी,** देवास, मध्यप्रदेश



ख़ुशी और धक्का

एक युवक पीहू से मिलने हॉस्टल में गया
लड़कों का हॉस्टल में प्रवेश निषिध्द था तो उसने मीठी-मीठी बातें करके अंदर प्रवेश पाने की सोची।
अंदर जाकर उसने इधर-उधर देखा तो रिसेप्शन में सोफे पर एक मध्यम आयु की महिला को बैठे हुए देखा।
लड़का बोला- मैडम प्लीज मुझे अंदर जाने दीजिए। मुझे पीहू से मिलना है।
महिला बोली- अरे पर लड़कों का अंदर जाना मना है ना!
लड़का - हां वैसे तो मना है लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं कि मुझे अंदर जाने दीजिए।
महिला- लेकिन क्यों, क्या कारण है?
लड़का- दरअसल मैं उसका भाई हूं और मैं उसे सरप्राइज देना चाहता हूं। सोचिए तो उसे कितनी ख़ुशी मिलेगी।
महिला- मुझे कितना बड़ा धक्का लगा है वो तो सोचो पहले...
लड़का (आश्चर्य से)- आपको क्यों धक्का लगा है मैडम?
महिला- मैं भी आज पीहू से मिलने आई थी, मां हूं ना उसकी..

ख़ुद देखने आ रहा

गोविंदराम अपने बारह बच्चों और बीवी सहित चिड़ियाघर गए। वहां उन्होंने गाइड से पूछा- हम वह गैंडा देखना चाहते हैं जिसने हाल ही में आठ बच्चों को जन्म दिया है।
गाइड बोला- आप यहीं ठहरिए साहब, गैंडा आपको ही देखने आ रहा है।

हमने कुछ कहा?

आज स्कूल से मैडम का फोन आया, बोली आप स्कूल आ जाइए आपका बेटा बहुत शरारत करता है।
मैंने कहा- जी, वो तो घर पर भी बहुत शरारत करता है पर हमने आपको कभी घर बुलाया?
टीचर ने फोन ही काट दिया।

काम की बात

मास्टर जी- कछुए और ख़रगोश की दौड़ की कहानी से हमें क्या सीख मिलती है?
एक लड़का झट से खड़ा होकर बोला- दौड़ भले ही हार जाओ, पर नींद पूरी होनी चाहिए।

गुनाह है गुनाह

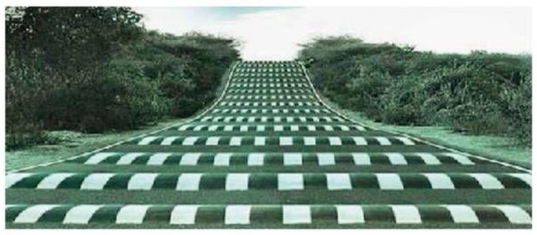
अच्छा फोटो न खींचने पर पहला कसूर मोबाइल का, दूसरा बैकग्राउंड का और तीसरा खींचने वाले का होता है।
शक्ल पर शक करना तो गुनाह है गुनाह!



इसे कहते हैं समझदारी



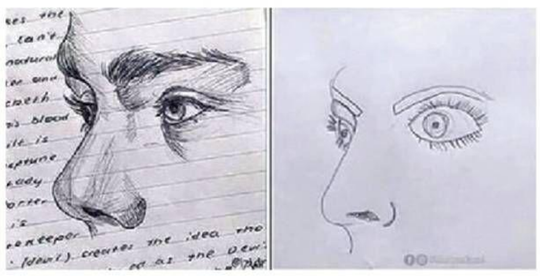
एकांत सड़क



सड़क जब मैं पानी पीने लगूं



अलग से बनाई जाएं सीढ़ियां



एक बोरिंग क्लास आर्ट क्लास



खा गए ना धोखा



मजबूरी है साहब

जो मैं बोलता हूं वो मैं करता हूं और जो मैं नहीं बोलता वो भी मुझे ही करना पड़ता है। घर का छोटा बेटा जो हूं।

नए ज़माने की बहू

पढ़ी-लिखी बहू पूजा करने बैठी, तभी सास ने पूछा कि बहू ये पान पर लाल-लाल चिकना पदार्थ क्या रखा है?
बहू बोली- अरे मम्मी जी पूजा के लिए पांच फल नहीं मिल पाए थे इसीलिए मिक्स फ्रूट जैम चढ़ा दिया है प्रसाद में।
सास अभी तक सदमे में हैं।

गर्मी का क़हर

रात को रूम में दो तीन मच्छर घूमते हुए दिखाई दिए मैं उठा और मच्छर की अगरबत्ती जलाने लगा। इतने में उधर से एक मच्छर आया और बोला भैया क़सम खाकर कहता हूं...
पक्का नहीं काटूंगा, बस थोड़ी देर एसी में रहने दो।

संघर्षपूर्ण बचपन

मेरा बचपन बड़ा संघर्षपूर्ण बीता।
घर वाले स्कूल भेजते थे और स्कूलवाले घर।
मजबूरी में मुझे बाग़ीचे में दिन गुज़ारने पड़ते थे।

बड़े होते-होते

कक्षा 6- डॉक्टर बनूंगा।
कक्षा 10- इंजीनियर बनूंगा।
कक्षा 12- बस कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जाए।
स्नातक के बाद- भाई मैंने तुझे एक लिंक भेजा है उसे डाउनलोड कर ले, 20 रुपये तुझे मिल जाएंगे और 30 मुझे।

सालगिरह कब है?

मैंने अपने दोस्त को फोन किया और पूछा- तेरी शादी की सालगिरह कब है?
उसने कहा- बर्तन ही साफ़ कर रहा हूं, लोटे पर तारीख़ लिखी है देखकर बताता हूं।

डर लगता है

लोन के लिए इतने फोन आते हैं कि डर-सा लगा
रहता है, कहीं घर का गेट खुला रह जाए तो ये लोग पैसे घर में ही न फेंक कर चले जाए।



सुख

आप अपेक्षाएं करते हैं तो सुख के बजाय दुःख की संभावनाएं पचास प्रतिशत बढ़ जाती हैं।

अपेक्षाविहीन होना सुख की गारंटी है। इस गारंटी को आप हासिल कर सकते हैं।

— अहा! नेटवर्क

एक घंटे की ख़ुशी के लिए - **झपकी लें।**
एक दिन की ख़ुशी के लिए - **पिकनिक पर जाएं।**
एक महीने की ख़ुशी के लिए - **शादी कर लें।**
एक साल की ख़ुशी के लिए - **विरासत में संपत्ति पाएं।**
ज़िंदगी भर की ख़ुशी के लिए - **अनजान की मदद कीजिए।**
-चीनी कहावत

जीवन में ख़ुशियों के बिखरे रंगों का पूरा संसार इस चीनी कहावत में है। दरअसल ख़ुशी एक ऐसा भाव है जिसके कई रूप हैं। शांति से लेकर उल्लास तक और आनंद से लेकर अध्यात्म तक। इसे नापा नहीं जा सकता और ना ही इसकी कोई सीमा है। अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग समय पर अलग-अलग चीज़ों से ख़ुश होते हैं। किसी को नई कार ख़रीदने से ख़ुशी मिलती है, तो किसी को नौकरी में प्रमोशन मिलने से। एक बच्चा मनचाहा खिलौना पाकर इतना खुश हो जाता है जैसे उसे पूरा संसार मिल गया हो। वहीं किसी को पानी में डूबती चींटी को बचाकर ही खुशी मिल जाती है।

हमारी भावनाएं हर पल हर दिन बदलती रहती हैं। यदि एक ऐसे यंत्र का प्रयोग किया जाए, जिससे संवेदनाओं को नापा जा सके, तो हम पाएंगे कि पूरे हफ़्ते में हम कभी 20, 40, 60 या 80 प्रतिशत खुश रहे। यानी ख़ुशी कभी स्थिर नहीं रहती। किस व्यक्ति के ख़ुशी के स्तर को वैज्ञानिक तरीक़े से नापा नहीं जा सकता। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि ख़ुश रहने के पीछे कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। वैज्ञानिकों के अनुसार न्यूरोट्रांसमीटर डोपामीन जो दिमाग़ के मेजोलिंबिक पाथवे और न्यूक्लियस एक्यूबेस हिस्से में काम करता है, वह इंसान में ख़ुशी के उत्पादन का कारण होता है। यदि मनुष्य के दिमाग़ में उत्पन्न डोपामीन के स्तर को एकदम सही नापा जा सके, तो व्यक्ति के ख़ुशी के स्तर को भी नापा जा सकता है। ख़ुशी को कृत्रिम तरीक़े से ड्रग्स की मदद से भी कुछ समय के लिए उत्पन्न किया जा सकता है, जैसे मॉर्फिन और हेरोइन ड्रग जो डोपामीन निरोधकों को रोकते हैं और उसके स्तर को कम नहीं होने देते।

सुख, आनंद, उल्लास सभी ख़ुशी के अलग-अलग भाव हैं। सच्ची ख़ुशी के अलग-अलग भाव हैं। सच्ची ख़ुशी एक ऐसी भावना है, जिसे ख़ुद चुना जा सकता है। एक ऐसी स्थिति जिसे व्यक्ति को स्वयं उत्पन्न करना होता है। सच्ची ख़ुशी पाना एक बहुत ही व्यक्तिगत यात्रा है, लेकिन फिर भी वैज्ञानिकों ने पाया है कि जीवन में कुछ बदलाव लाने से आप अपने जीवन को बदल सकते हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ इलीनोएस के शोधकर्ता और मनोवैज्ञानिक एड डेनियर कहते हैं कि प्रसन्नता का अर्थ है, आप कितनी बार ख़ुश होते हैं, न कि कितने ज़्यादा ख़ुशी होते हैं। मार्टिन सेलिगमेन ने अपनी किताब ऑथेंटिक हैपीनैस में लिखा है कि ख़ुशी सिर्फ़ जींस और क़िस्मत का खेल नहीं, इसे बनाया भी जा सकता है। अमीर देशों में भी लोग उतने ही दुःखी हैं, जितने कि ग़रीब देशों में। दो चीज़ें जो ख़ुशी पर सबसे ज़्यादा अपना असर डालती हैं वे हैं विवाह और धर्म। ऑस्ट्रेलिया के शोधकर्ताओं का मानना है कि आम धारणा के विपरीत शादी दोनों लोगों को ख़ुशी देती है। पहले हुए अध्ययनों से यह माना जाता था कि शादी से महिलाओं में तनाव बढ़ जाता है इसलिए शादी उनके लिए दुःख का कारण है।

कई बार किसी एक व्यक्ति का सुख, दूसरे व्यक्ति का दुःख बन जाता है। असल में ख़ुशी (सुख) एक ऐसी स्थिति है जो हर व्यक्ति के लिए अलग होती है। अरस्तू का मानना था कि हम जो कुछ भी करते हैं, उसके पीछे वजह ख़ुशी पाना होता है, चाहे वह किसी भी प्रकार से मिले। अरस्तू मानते थे कि व्यक्ति को वही करना चाहिए जो वह चाहता है। उसे सारे निर्णय ख़ुद लेने चाहिए चाहे वो सही हों या ग़लत क्योंकि उसे ख़ुशी इसी से मिलेगी।

कार्नेगी मैलन यूनिवर्सिटी, पिट्सबर्ग द्वारा किए गए एक शोध के मुताबिक जिन लोगों का व्यवहार सकारात्मक और भावनात्मक होता है, वे सर्दी-ज़ुकाम से कम संक्रमित होते हैं। वैज्ञानिक डॉ. की कोहेन के मुताबिक ऊर्जावान, ख़ुशमिज़ाज व्यक्तियों की प्रतिरोधक क्षमता बेहतर होती है, क्योंकि जब हम ख़ुश रहते हैं, तो दिमाग़ में कुछ ऐसे हार्मोन उत्पन्न होते हैं, जो ज़ुकाम से उत्पन्न रसायनों को नियंत्रित करते हैं।

अब तक माना जाता था कि ख़ुश रहने के लिए आपके पास अधिक आत्मविश्वास होना चाहिए। हालांकि यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया के शोधकर्ताओं के मुताबिक ख़ुश रहने के लिए ज़रूरी नहीं आपका आत्मविश्वास अधिक हो, क्योंकि कई बार आत्मविश्वास लोगों के मन में यह भावना ला देता है कि वे जीवन में बहुत कुछ कर सकते थे, लेकिन नहीं कर पाए। वहीं एक कमज़ोर आत्मविश्वास वाला व्यक्ति अपने जीवन से संतुष्ट महसूस करके ख़ुश रह सकता है।

आधुनिक संसार में हमें लगता है कि ख़ुशियां बाहरी चीज़ों से आती हैं जैसे पैसा, सफलता, प्रसिद्धि आदि। हम पाएंगे कि अधिकतर ख़ुशियां स्थिर नहीं हैं। इनमें से कोई कुछ घंटों के लिए होती हैं, कोई कुछ दिन के लिए और कोई अन्य कुछ सालों तक रहती हैं। एक अध्ययन के अनुसार लॉटरी जीतने वाला व्यक्ति भी एक साल के भीतर अपने पुराने ख़ुशी के स्तर पर वापस आ जाता है। एक ही प्रकार की खुशियां धीरे-धीरे हमें खुशी देना कम कर देती हैं। असल में इन सभी ख़ुशियों का स्रोत बाहरी चीज़ें हैं जिनका सुख अस्थायी होता है, लेकिन क्या सच्ची ख़ुशियां जो हमेशा हमारे साथ रहें कोई भी नहीं? गीता में लिखा है कि वह व्यक्ति जो इस दुनिया में है और मृत्यु से पहले ही उसमें चाह और ग़ुस्से का आवेग समाप्त हो गया है, तो वही सच्चा योगी है, वही व्यक्ति ख़ुश है।

(अहा! ज़िंदगी विशेष वार्षिक अंक 2006 से)

गुरुदयाल मलिक
1896-1970



पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) के डेरा इस्माइल खां में जन्मे गुरदयाल मलिक 1920 में शांतिनिकेतन आए और यहां अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ाना शुरू किया। उन्हें उर्दू, पश्तो, सिंधी, गुजराती, मराठी, हिंदी और थोड़ी-बहुत फ़ारसी आती थी।

अध्यात्म निष्ठ जीवन जीने वाले मलिक ने कुछ वर्षों तक विश्वभारती त्रैमासिक का संपादन भी किया। उनकी साहित्यिक प्रतिभा गीत एवं गद्य-लेखन में अभिव्यक्त हुई।

फिर दोराहे पर खड़ा है मनुष्य

हमेशा की तरह मानव के सामने एक दोराहा है- एक रास्ता अहंकार का है और दूसरा सहकार का। एक में क़ब्रें हैं और दूसरे में सुंदरता। विधाता को मनुष्य की चयन-बुद्धि पर पूरा भरोसा है।

इतिहास विधाता ने हर युग में मनुष्य को ठीक उसी जगह लाकर खड़ा कर दिया है, जहां से दो पथ दोनों ओर से निकल गए हैं- 'मनुष्य, इनमें से सही पथ के चुनाव की ज़िम्मेदारी तुम्हीं पर है।'

एक ओर मनुष्य के अहंकार का रास्ता है, जिसके किनारे जगह-जगह वे समाधियां बनी हैं, जिनमें अखिल विश्व की आशा-आकांक्षाओं को दफ़ना दिया गया है। यहां दिनदहाड़े प्रेत घूमते है। मनुष्य का दंभ यहां कीड़ों की तरह क़ब्र के भीतर के आशाकुसुमों को खाया करता है, हवा स्वार्थ की सांसों से दूषित है, क्योंकि अपनी शुद्धि कोई नहीं करना चाहता। सभी अपनी ही सांसों को सबसे महत्वपूर्ण समझते हैं। यहां मनुष्य का मन दर्प और अहंकार से ओत-प्रोत है।

दूसरी ओर का रास्ता इससे निराला है। यहां मनुष्य के मन ने अपनी आत्मा के फूलों की ख़ुशबू बिखराई है- आत्मा, जो एक है, जो सबमें समान भाव से परिव्याप्त है। यहां अहंकार अपने को निखिल के चरणों तले सौंपता है। अखिल विश्व के देवता के मंदिरों से इस पथ का परिवेश स्निग्ध और सुंदर है। प्रसन्नता का प्रकाश यहां सभी ओर फैला है। यहां सभी के लिए निवेदित हैं, समर्पित हैं।

आज फिर इतिहास-विधाता ने यही प्रश्न मनुष्य से किया है। ज़ोर-ज़बर्दस्ती का सवाल ही नहीं है।

विधाता मनुष्य की मनुष्यता पर अपना विश्वास छोड़ नहीं पाते- उसकी हज़ार बेवक़ूफ़ियों से भी निराश नहीं होते।

वे मानते है कि मनुष्य को स्वाधीन पथ-निर्वाचन का सदा अधिकार है, उसकी निर्णायिका बुद्धि सदा स्वतंत्र है- इसीलिए कि वह अब पशु नहीं रहा, मनुष्य हो गया है।

दैनिक भास्कर समूह की प्रस्तुति
अहा! ज़िंदगी
नया युग... नया विश्वास... नई ज़िंदगी

